आत्मज्ञान और विज्ञान

विनोबा

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक : मन्त्री, सर्व-सेवा-संघ,
राजघाट, वाराणसी
संस्करण : तीसरा
प्रतियाँ : ५,०००; फरवरी, १९६४
कुल प्रतियाँ : १५,०००
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) ६२२५–२०
मूल्य : रु० १.५० नये पैसे

[संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण]

Title : ATMAJNANA AUR VIJNANA
Author : Vinoba
Subject : Adhyatma
Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi
Edition : Third
Copies : 5,000; February, '64
Total Copies: 15,000
Price : Re. 1.50 n. P.

प्रकाशकीय

६ अगस्त १९४५ को हीरोशिमा (जापान) में अणुबम का विस्फोट हुआ, तब दुनिया के दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, विचारकों और शासकों का ध्यान जिस ओर आकृष्ट हुआ, उस चिन्तन का निर्णय विनोबाजी सिवनी जेल (सन् १९४२ से १९४५) में ही कर चुके थे। जेल से बाहर आये, तब देश में राजनैतिक आन्दोलन जारी था। भारत आजाद नहीं हुआ था। २५ जून १९४५ को उन्होंने अपने सार्वजनिक भाषण में विचार व्यक्त किया कि "राजनीति और धर्म के दिन लद गये हैं और अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का युग आया है। अध्यात्म और विज्ञान का संयोग होगा, तभी हमारा आगे का काम विश्वानुकूल होगा।" उन्हींकी तरह श्री जवाहरलालजी नेहरू ने भी पिछले कुछ वर्षों से यह कहकर कि "मैं यद्यपि राजनीति में हूँ, तो भी मैं मानता हूँ कि आज राजनीति समयबाह्य है। राजनीति जायगी, धर्म जायेंगे और बदले में विज्ञान और अध्यात्म आयेंगे" इस विचार का काफी प्रचार किया है। इससे भारत के साधकों, विचारकों तथा वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट हुआ और इस दिशा में सक्रिय होने का विचार सामने आया। परिणाम-स्वरूप सर्व-सेवा-संघ और विश्व-संघ (World Union) के संयुक्त तत्त्वावधान में स्व० डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी की अध्यक्षता में २८ दिसम्बर '६२ से १ जनवरी '६३ तक सदाकत आश्रम, पटना में एक परिसंवाद हुआ। उसमें स्वीकृत निवेदन आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक डॉ० रेनर सी० जानसन ने भारत के कुछ विश्वविद्यालयों तथा धार्मिक संस्थाओं में भेजा। विनोबा के सान्निध्य में, जब कि वे शान्तिनिकेतन के आसपास थे, १४ जनवरी '६३ को एक परिसंवाद हुआ। फिर विश्व-संघ की कार्यकारिणी ने आध्यात्मिक स्रोतों को एकत्र लाने और गतिशील

बनाने का अभियान शुरू किया। सर्व-सेवा-संघ ने भी प्रबन्ध-समिति की अगस्त '६३ की सेवाग्राम-बैठक में इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने के लिए एक प्रस्ताव किया और विस्तार से विचार करने के लिए एक समिति का गठन किया। रायपुर में सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर उस समिति की पहली सभा हुई। उसमें विनोबाजी ने जो कुछ कहा, उसे प्रास्ताविक के रूप में प्रस्तुत पुस्तक के तीसरे संस्करण में दिया गया है।

इस प्रकार आत्मज्ञान और विज्ञान का यह नया संस्करण जिज्ञासु पाठकों के हाथ में कुछ वर्धमान रूप में आ रहा है। इसमें विचार का भी विकास हुआ है और पुस्तक का आकार भी बढ़ा है। गत संस्करण की सामग्री का चयन विनोबाजी के सन् १९६१ के आरम्भ तक के प्रवचनों से किया गया था, अब सन् १९६३ के अन्त तक के प्रवचनों से सामग्री ली गयी है। विषयों का भी विभिन्न अध्यायों में विभाजन कर दिया गया है। आत्मज्ञान से सीधा सम्बन्ध न रखनेवाले धर्म-सम्बन्धी तीन प्रवचनों को परिशिष्ट में दिया है। उसी प्रकार अध्यात्म और विज्ञान-सम्बन्धी विनोबा के विचारों का 'गागर में सागर' एक स्वतन्त्र अध्याय भी जोड़ा गया है और पटना-परिसंवाद, निवेदन, प्रबन्ध-समिति, प्रस्ताव और विनोबाजी के सुझावों को परिशिष्ट में दिया है। इन सबके कारण विषय की विविधता, रोचकता और स्पष्टता बढ़ी है।

जिस तरह इस विषय के स्वागत के लिए दुनिया तैयार हो रही है, उसे देखते हुए ऐसा लगता है कि निकट भविष्य आत्मज्ञान और विज्ञान के मेल से ही सुरभित होगा।

अनुक्रम

परिशिष्ट :

आत्मज्ञान और विज्ञान

प्रास्ताविक

आप सब लोगों से मिलना हुआ, इससे बहुत खुशी होती है। कोई अठारह-उन्नीस साल पहले की बात है, जब कि हम सिवनी-जेल में थे। अभी मेरे पास काकासाहब बैठे हैं। हम दोनों दो-तीन साल साथ रहे थे। सिवनी-जेल में तो हम एक ही कोठरी में रहते थे और हमारी बहुत चर्चाएँ चलती थीं। वहाँ हमको चिन्तन के लिए अच्छा मौका मिलता था। अध्यात्म और विज्ञान का संयोग होना चाहिए और तभी हमारा आगे का काम विश्वानुकूल होगा, इस प्रकार की चर्चा वहाँ कई दफा होती रही। जेल से भी हम दोनों एक ही दिन छूटे। मुझे प्रसन्नता होती है कि वे भी आज यहाँ मौजूद हैं। जेल से आने के बाद मैंने एक बात की, उसका भी निर्णय जेल के अन्दर ही हुआ था। जब बापू से मिलना हुआ, तो प्रथम दर्शन में ही कुछ बातें हुईं। जैसा कि उनका रिवाज था, थोड़ा स्वास्थ्य आदि का प्रश्न पूछने के बाद उन्होंने तुरन्त कह दिया कि "शायद हमको दुबारा जेल जाना होगा; एक और तपस्या हमको करनी होगी, ऐसा अन्दाज है।" तो मैंने कहा कि "ठीक है, उसके लिए हमारी मानसिक तैयारी है, लेकिन मैं महसूस कर रहा हूँ कि शायद ऐसा प्रसंग कभी नहीं आयेगा।" उन्होंने पूछा कि "यह किस पर से कहते हो?" तो मैंने जवाब दिया कि "जेल में हम लोग लगभग तीन साल यानी पैंतीस महीने रहे। तीन साल जेल में रहने के बाद मैंने यह देखा कि हम लोग आध्यात्मिक दृष्टि से कमजोर नहीं हुए हैं, इसलिए महसूस होता है कि शायद ऐसा प्रसंग फिर से न आये। अगर हम लोग कमजोर होकर बाहर आये होते, तो ईश्वर और कसौटी करना चाहता। लेकिन हम कमजोर नहीं हुए हैं, तो यह प्रसंग दुबारा शायद नहीं आयेगा"—ऐसा मैंने कहा था। खैर, लेकिन वह ख्याल हमारे चित्त

में था ही, जो उन्होंने कहा । जेल में जाने का प्रसंग आ सकता था । उसके लिए हमारा चित्त तैयार था । फिर काम की बातें चलीं, तो हमने उनसे एक इजाजत माँगी । उन दिनों हम तालीमी संघ आदि कई संस्थाओं में सदस्य थे और वह उन्हींके आग्रह से और उन्हींकी योजना से थे । तो मैंने उनसे कहा कि "मैंने सोचा है कि आप अगर इजाजत देते हैं, तो मैं किसी संस्था में नहीं रहूँगा ।" तो उन्होंने पूछा कि "ऐसा क्यों कहते हो ?" तो हमने उत्तर दिया कि "मुझे भास हुआ कि संस्था में रहकर अगर चिन्तन करना है, तो चिन्तन सीमित हो जाता है और शायद अहिंसा की खोज के लिए वह सीमित चिंतन काम नहीं आयेगा । आज अहिंसा की जितनी खोज हो चुकी है, उसके अमल के लिए तो कोई बाधा नहीं है, लेकिन यदि आगे खोज करनी हो, तो चित्त खुला रहना चाहिए । इसलिए हम संस्थाओं से मुक्ति चाहते हैं ।" मेरा यह जवाब सुनकर उन्होंने 'हाँ' कह दिया । और जैसा उनका रिवाज था, मनुष्य को प्रेम से बाँध लेने का, उन्होंने कहा कि "यह संस्थाओं की सेवा तो करेगा, लेकिन संस्थाओं में अधिकार नहीं रखेगा ऐसा इसका अर्थ होता है; तो अच्छा है ।" फिर संस्थाओं से मुक्ति पाना कठिन नहीं हुआ । जब उनकी इजाजत पहले से मिल गयी, वह इजाजत पाने के लिए ज्यादा बातचीत करने की जरूरत नहीं पड़ी । मेरे एक वाक्य से एकदम वे सहमत हो गये कि अहिंसा की खोज के लिए संस्था-मुक्त मन चाहिए । मैं समझता हूँ कि इस विचार में एक विज्ञान भी है और कुछ अध्यात्म भी है । उसके बाद मेरे जो सार्वजनिक भाषण हुए थे, उनमें उस विचार का उच्चारण मैंने सार्वजनिक तौर पर किया कि इन दिनों मैं सोचता हूँ, तो मुझे लगता है कि विज्ञान के साथ अहिंसा और अहिंसा के साथ विज्ञान को जोड़ना होगा । इसके बिना दुनिया का भला नहीं होगा । दुनिया ही रहेगी नहीं । अब उसी विचार से प्रेरित होकर दो साल से सोचा जा रहा है और इस मण्डल में उसका उच्चारण होता है । लेकिन उसका प्रथम उच्चारण मैंने सन् १९४५ में किया था । उसके बाद काम करने के एक-दो मौके मिले ।

अहिंसा कसौटी पर

बापू की मृत्यु के बाद हमको एकदम से एक भार मालूम हुआ; लेकिन उस भार का बोझ महसूस नहीं हुआ, क्योंकि 'संस्था-मुक्ति' और 'विज्ञान और अध्यात्म एक होना चाहिए', यह विचार चित्त पर आरूढ़ था, तो हमको बोझ महसूस नहीं हुआ, यद्यपि बापू के जाने से भार महसूस हुआ। जब तक बापू थे, तब तक मैं देहात के भंगी-काम में लगा रहा। उनके जाने के बाद मुझे बाहर जाना पड़ा और मेरा देश में घूमना हुआ। हिन्दू-मुसलमानों के दंगे हुए थे; शरणार्थियों का सवाल खड़ा हुआ। उस वक्त मानवता की गिरावट, लड़ाइयों में जितनी होती है, उससे कम नहीं हुई। हमने जो आजादी हासिल की, वह अहिंसा के तरीके से की—ऐसा कहा जाता है और वह ठीक ही कहा जाता है। लेकिन जहाँ बड़ी लड़ाई होती है और हिंसा होती है, वहाँ जैसी बुराई की बात सुनते हैं, पढ़ते हैं, उसी किस्म की बुराई यहाँ हुई और वह भी छोटे पैमाने पर नहीं, बड़े पैमाने पर हुई। तब हमको सोचने का बहुत मौका मिला कि "यह क्या हुआ, जब कि हमने अहिंसा का नाम लेकर काम किया और हमें आजादी हासिल हुई, वह भी अहिंसा की मर्यादा में ही हासिल हुई, हम उत्तम-से-उत्तम कामों में अहिंसा की मर्यादा रखते थे, वह अहिंसा की मर्यादा कहाँ टूट गयी ? वह अहिंसा का विचार कहाँ गया ? इतने नीचे के स्तर तक चित्त कैसे गिरा ?" यह सोचने पर मालूम हुआ कि हमने जो अहिंसा का प्रयोग किया था, वह बहुत कच्चा था। यह तो बहुत सारे लोग महसूस करते ही हैं। लेकिन इसके साथ मुझे यह लगा कि वह अहिंसा का प्रयोग शायद उतना वैज्ञानिक नहीं था। अगर वह वैज्ञानिक होता, तो जो गलतियाँ सन् '४२ के आन्दोलन में हुईं, वे न होतीं और हममें विश्व का दर्शन अच्छा रहता। उस विश्व-दर्शन के अभाव में वे गलतियाँ हुईं और भारत को महाभारत होना था, जिसके बदले में भारत के दो टुकड़े हो गये, ऐसा हमारे चित्त पर असर हुआ।

विश्व-सन्दर्भ

हम सत्याग्रह के बारे में भी सतत सोचते रहे और हमें कई बातें सत्याग्रह-विचार की दृष्टि से सूझीं और उनका जगह-जगह विभिन्न मौकों पर उच्चारण भी हुआ। फिर आप जानते हैं कि भूदान-आन्दोलन निकला, तो उसको हमने विश्व-सन्दर्भ में देखा। जिस दिन हमको प्रथम भूदान मिला, उस दिन हमने हिसाब तो भारत का किया कि इतने बड़े पैमाने पर काम होगा तब काम सफल होगा, लेकिन हमारे चिन्तन का सन्दर्भ विश्व का सन्दर्भ था। यह एक ऐसी चीज हाथ में आयी है, जिसको अगर हम ठीक ढंग से पकड़ते हैं और ठीक ढंग से उसको चलाते हैं, तो इसमें से विश्व-शांति और विश्व-कल्याण का रास्ता निकलेगा, ऐसा हमें लगा। इसी लिए हमने उस कार्यक्रम को भगवत्प्रेरणा समझकर उठा लिया। पाँच-छह साल के अनुभव आये। उसके बाद हमें लगा कि काम तो अच्छा है और लोगों का सहयोग भी है। लोगों के चित्त के अन्दर जो अच्छाई है, वह इससे बाहर आती है। अच्छाई को बाहर आने का मौका मिलता है, यह ठीक है; लेकिन इसको और किसी चीज की जरूरत है कि जिससे इसको वेग मिले, इसमें गति आये। यों सोचकर हमने पाँच-छह आश्रमों की स्थापना की।

आश्रमों की भूमिका

अभी एक बहन ने हमसे एक सवाल पूछा कि "आपके विचार संस्था के अनुकूल नहीं थे, तो फिर ये पाँच-छह संस्थाएँ आपने कैसे बनायीं?" तो मैं उसका उत्तर देता हूँ कि दुनिया की भाषा में जो संस्था होती है, वैसी ये संस्थाएँ नहीं हैं, लेकिन यह तो व्यवस्था बनायी है, शिक्षण-योजना बनायी है, जहाँ कुछ शिक्षण होगा। हमारी सब संस्थाओं के मूल में यह विचार रहा कि विज्ञान और आत्मज्ञान के समन्वय का शिक्षण चित्त को मिले। और ये संस्थाएँ ऐसी स्थिति में हैं कि उसका समाज पर या चित्त पर कोई भार नहीं है। नौ साल पहले समन्वय-आश्रम की स्थापना हुई और काफी

अनुभव आये । किसीने पूछा कि आप आश्रम की व्यवस्था के लिए क्या सोचते हैं ? वहाँ के काम को देखने के लिए एक समिति बनायी है । मैंने कहा कि मुझे उसकी चिन्ता नहीं है, क्योंकि मुझे तो वह दान मिला है और मैं आशा करता हूँ कि उस आश्रम की स्थापना का परिणाम यह आयेगा कि दाता का चित्त भी विकसित होगा । उनका शांकर मठ आश्रम के सामने है, तो उन्हीं महंतजी को मैं जमीन वापस दे दूँगा और उनसे कहूँगा कि आप ही आश्रम चलाइये । तो इस बात का मुझ पर भार नहीं है । जिस अर्थ में संस्था का अर्थ करते हैं, उस अर्थ में वह नहीं है । समन्वय आश्रम जब बना, उस समय काका शायद जापान में थे । उनको उस कल्पना का और समन्वय-विचार का बहुत आकर्षण हुआ । आखिर में हमारी जो कल्पना हुई, उस आश्रम को हमने मैत्री-आश्रम नाम दे दिया । एक आश्रम को ब्रह्म-विद्या-मंदिर नाम दिया, एक को विश्वनीडम्, एक को विसर्जन-आश्रम और एक को प्रस्थान-आश्रम नाम दिया । ये भिन्न-भिन्न नामकरण विचार के भिन्न पहलू हैं । विसर्जन भी इसका एक पहलू है । "हम पुराने कन्वेन्शन को, कल्पनाओं को चित्त पर आरूढ़ करना नहीं चाहते हैं । उनका हम विसर्जन चाहते हैं और नयी कल्पना का विशेष सर्जन हो, जो मुक्त-चित्त में से ही पैदा होता है" ऐसा हमने वहाँ समझाया था । प्रस्थान-आश्रम की संस्थापना के समय हमने कहा था कि "हम यहाँ से खोज के लिए निकले हैं । खोज हो, इसलिए हम यहाँ से प्रस्थान कर रहे हैं ।" वह आश्रम पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की सीमा पर है और कश्मीर के नजदीक है । विश्व-चित्त एक बने, इस कल्पना पर हमने एक आश्रम को विश्वनीडम् नाम दिया और आशा रखी कि कुल विश्व एक घोंसला बने । नीडम् का अर्थ घोंसला होता है । अन्त में मैंने मैत्री-आश्रम की स्थापना की । इस वक्त मेरा आखिरी शब्द मैत्री है । मैं इसको ईश्वर की एक घटना मानता हूँ । डेढ़-पौने दो साल हुए, मैत्री-आश्रम की स्थापना हुए । ५ मार्च १९६१ को स्थापना हुई । हम विश्व के साथ मैत्री का सम्पर्क करेंगे, ऐसी कल्पना के साथ उसकी स्थापना हुई । उधर चीन है

और इधर हम हैं, तो कभी भी संघर्ष का मौका है। वैसे यह पहले बाहर प्रकट नहीं हुआ था, परन्तु हमको जो कभी विचार नहीं आ सकता था, वह विचार आया और पैदल यात्रा करनेवाला मनुष्य हवाई जहाज की, एअरपोर्ट की अपेक्षा नहीं करता है, लेकिन जहाँ मैत्री-आश्रम की स्थापना हुई है, वहाँ मिलिटरी का कैंप है, एअरपोर्ट भी है, जहाँ से हम दुनिया के साथ सम्बन्ध रख सकते हैं। हमारा दुनिया के लिए 'मैत्री' स्थान हो सकता है। ऐसा सोचकर हमारे साथ जो लड़की आठ साल से लगातार घूम रही थी, उसको हमने वहाँ रहने के लिए कहा। उसको हमारा विरह बहुत ही खला कि बाबा से अलग रहना पड़ेगा। लेकिन उसने वह माना। उसके कुछ दिनों बाद, करीब एक साल बाद मैत्री-यात्रा शुरू हुई। भारत और चीन को जोड़ने के लिए और उस निमित्त से विश्व को जोड़ने के लिए दिल्ली से पीकिंग के लिए वह यात्रा निकली। असम पहुँची और वहाँ से आगे जाने का उनको मौका नहीं मिला। तो सब लोगों को लगा कि हम जरा चिंतन के लिए बैठ जायेंगे और चीन से इजाजत माँगने की कोशिश करेंगे। उस यात्रा में दुनिया के पाँच देशों के नागरिक हैं। बीच में तीन-चार महीना वे आश्रम में ठहरेंगे। उनको ठहराने के लिए वहाँ कोई खास मकान नहीं था। जीर्ण-शीर्ण झोपड़ी थी। उसको वे खुद दुरुस्त कर रहे हैं। असम में पानी की कमी नहीं है, लेकिन अच्छा पानी नहीं है। इसलिए उन्होंने फिल्टर की योजना बनायी तो खोदना भी शुरू किया और उसको मैत्री-यात्रा का एक प्रोजेक्ट माना। वे एकत्र बैठते हैं। तरकारी-भाजी काटना रसोई बनाना, लकड़ी चीरना, बर्तन मांजना आदि काम पेश करते हैं। दुनिया के योगी वहाँ एकत्र काम कर रहे हैं। शंकररावजी ने मुझे लिखा था कि 'एक अद्भुत ईश्वरी योग लगता है कि मैत्री-यात्रा निकली और उसको मैत्री आश्रम का अन्तिम सहारा मिला। मैत्री-यात्रा के स्वागत के लिए पहले से यह योजना हुई ऐसा लगता है।'

तो यह सारा लंबा इतिहास मैंने इसलिए रखा कि हम अभी जो सोचना चाहते हैं उसकी पूर्व-भूमिका कहाँ बनी यह ध्यान में आये।

विश्व-पुरुषों का चिन्तन

उसके साथ-साथ दूसरी भी ताकतें इसी दृष्टि से काम करती थीं, वे भी प्रकट हुईं। श्री अरविन्द के आश्रम में रहनेवाले भाई मि० स्मिथ यहाँ उपस्थित हैं। आप सब जानते हैं कि श्री अरविन्द में पूर्व और पश्चिम दोनों जुड़े हुए हैं। इतना पूर्व-पश्चिम-संयोग बिरलों में ही होता है। ऐसा मौका बहुत थोड़े लोगों को ही मिलता है। श्री अरविन्द में योग की भूमिका और वैज्ञानिक दृष्टि दोनों थीं। फिर और एक संयोग की बात। गये साल २५ दिसम्बर के दिन पण्डित नेहरू से हमारी मुलाकात हुई। डेढ़-पौने दो घण्टे हमारी एकान्त में, तात्कालिक स्थिति के विषय में दिल खोलकर चर्चा हुई। बहुतों की माँग थी कि मुझे हवाई जहाज से फौरन दिल्ली जाना चाहिए। मैंने पण्डितजी को पत्र लिखा था कि आज की परिस्थिति को मैं इस प्रकार समझता हूँ। अगर उस विषय में कोई मतभेद दीखे, तो हमने अपनी मानसिक तैयारी दिल्ली जाने की की थी। हम पद-यात्रा तोड़कर हवाई जहाज से जाते, ऐसा गांभीर्य चीन-भारत के संघर्ष के परिणामस्वरूप प्रकट हुआ था। पण्डितजी का उत्तर मुझे मिला कि आपने जितना सारा लिखा है, वह मुझे सम्मत है। और भी बातें उन्होंने लिखी थीं। तो मैंने जरूरत नहीं समझी कि मैं दिल्ली जाऊँ। वे शान्ति-निकेतन के कानवोकेशन के लिए आये थे। वे वर्षों से इसके प्रमुख हैं। तो वहाँ पर उन्होंने शान्ति का ही विचार प्रकट किया। दुःख की बात है कि इस वक्त दुनिया में एक तनाव है और वह हमेशा रहनेवाला नहीं है। उसके लिए तैयारी करनी पड़ेगी। लेकिन हर हालत में जो सन्देश गांधी-जी और रवीन्द्रनाथ टैगोर ने दिया था, उसको हम कभी नहीं भूल सकते। मेरा अपना ख्याल है कि आधुनिक भारत बनाने में कई लोगों ने योग दिया। उन सबके बिना आधुनिक भारत न बनता। लेकिन उन सबमें दो नाम ऐसे हैं, जिनमें बाकी के सब नामों का समावेश हो सकता है। एक गांधी और दूसरा टैगोर। टैगोर ने जो काव्य लिखे हैं, उनमें लेशमात्र संकोच नहीं दीखता है। हमको अभी बंगाल-यात्रा में उनके गीतों का अध्ययन

करने का मौका मिला। और जिस विषय की हमारी चर्चा हुई, उस विषय के आवाहन के लिए काव्य जनमा हो, ऐसा लगा। तो पण्डितजी से हमारी चर्चाएँ हुईं। मैं मानता हूँ कि शान्ति की शक्तियाँ ही दुनिया के लिए कल्याणकारी हैं। हमको किसी भी हालत में यह नहीं होना चाहिए कि भारत में द्वेष फैले। यह मैं अपनी ओर से कह रहा था, और बातों का मैं जिक्र नहीं करता हूँ। उनका मन भी विज्ञान और अध्यात्म की एकता में विश्वास रखता है, यह हम समझें। इस विचार का जितना मैंने प्रचार किया, उससे ज्यादा उन्होंने किया और उसको उन्होंने मेरा नाम लेकर भी जगह-जगह कहा। अभी उन्होंने एक जगह पर कहा कि यद्यपि मैं पॉलिटिक्स में पड़ा हूँ, तो भी मैं मानता हूँ कि पॉलिटिक्स आउट-डेटेड है। पॉलिटिक्स जायगा, रिलिजन जायेगा, बदले में विज्ञान और अध्यात्म आयेगा।

विश्व-भूमिका तैयार है

इस प्रकार की सारी भूमिका हमने इसलिए रखी कि इस विषय के स्वागत के लिए भारत के साथ दुनिया तैयार हो रही है। इसलिए अभी जो रूस और अमेरिका के बीच संधि हुई है, वह बहुत ही शुभ आरम्भ है। उसमें विश्व-शान्ति के बीज पड़े हैं। हमको खुशी होती है कि सन १९६५ का साल इण्टर नेशनल को-आपरेशन का माना गया है। अब सन् '६५ में क्या बाकी रहा है? इसका मतलब यह है कि उन लोगों ने शायद आशा की हो कि सन् '६५ तक बहुत सारे मानसिक झगड़े शान्त हो जायेंगे। ऐसी अपेक्षा रखकर बीच का समय छोड़ दिया और दुनिया का संकल्प हुआ कि सन् '६५ का साल अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का वर्ष माना जाय। यह अद्भुत वस्तु है। ऐसा कभी सुना नहीं था, जब कि दुनिया के विचारक तय करते हैं कि फलाने साल दुनिया में यह होगा; जब कि जगह-जगह दंगे चलते हैं, लड़ाइयाँ होती हैं, फिर भी सन् '६५ में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग होगा। चाहे तब तक सारे राष्ट्रों का मन तैयार न भी हो, लेकिन माना जाता है कि इस

वक्त शुभारम्भ करना चाहिए । कहने में खुशी होती है कि इस वक्त हमारे राष्ट्रपति राधाकृष्णन् ने जाहिर किया कि कुल दुनिया में शान्ति होनी चाहिए और होगी । इसलिए हर राष्ट्र को अपनी आजादी का थोड़ा हिस्सा समर्पण करना होगा । यह एक बहुत बड़ी बात है । राष्ट्र का एक जिम्मेदार नेता इस प्रकार बोल रहा है कि हरएक को अपनी आजादी का हिस्सा समर्पण करना होगा । अभी एक मौका आया है । ऐसे मौके पर आप सब लोग चिंतन करने के लिए इकट्ठा हुए हैं तो खुशी की बात है । आशा करते हैं कि हमारे सबके चित्त में जो भाव हैं, वह भाव सुफलित हों ।

२६-१२-'६३

रायपुर-सम्मेलन के अवसर पर 'आत्मज्ञान और विज्ञान' सम्बन्धी बैठक में दिया गया प्रवचन ।

गागर में सागर

: १ :

बीजावाप

मेरे पिताजी वैज्ञानिक थे और माता आध्यात्मिक वृत्ति की थी। मैं अपने शिक्षा-काल में विज्ञान का अध्ययन सबसे अधिक पसन्द करता था। वह मेरे लिए प्रिय विषय था, लेकिन आध्यात्मिक साहित्य के प्रति मेरा विशेष आकर्षण और झुकाव था। इस प्रकार मेरे मन में अध्यात्म और विज्ञान दोनों मिल गये और मिलकर एक हो गये। मेरी दृष्टि में दोनों समान हैं और दोनों का एक ही अर्थ है। एक का विषय विशेष रूप से सृष्टि का बाह्य पहलू है, तो दूसरे का विषय आतंरिक। ये दोनों मिलकर हमारे अन्दर समग्र विश्व प्रस्तुत करते हैं।

जब मैं सन् १९४२ में जेल के अन्दर था, तब भारत की स्वतन्त्रता के लिए किये गये आन्दोलनों का गहराई से चिन्तन करता था—हम किस-किस प्रकार के सामाजिक सुधार करते गये और अन्त में इस नतीजे पर पहुँचे कि अंग्रेजी हुकूमत हटा देनी चाहिए। गांधीजी स्वतन्त्रता-आन्दोलन में आये और उन्होंने कहा कि उसके लिए हमें आध्यात्मिक साधन काम में लेने चाहिए। इस सम्बन्ध में हमने गांधीजी के साथ बहुत चर्चा की कि आध्यात्मिक साधनों का उपयोग कैसे हो।

अँखुआ फूटा

इस चिंतन के परिणामस्वरूप मैंने अनुभव किया कि विज्ञान और आत्मज्ञान को एक हो जाना चाहिए। केवल भारत की ही नहीं, सारे विश्व की मुक्ति का यही एकमात्र मार्ग है। लेकिन मन की मुक्ति के बिना राष्ट्र की मुक्ति का कोई अर्थ नहीं है। पहले मन को बंधन-मुक्त करना चाहिए और यह काम है आत्मज्ञान का। बाइबिल में हम पढ़ते हैं कि स्वर्ग

का राज्य तुम्हारे अन्दर है और उसे धरती पर लाना है। मैं स्वर्ग के राज्य के सम्बन्ध में सोचता रहा और मुझे लगा कि विज्ञान और आत्मज्ञान का मेल होता है, तो धरती पर स्वर्ग लाया जा सकता है। अन्यथा विज्ञान हिंसा के साथ जुड़ा रहा, तो दोनों मिलकर विश्व का संहार कर देंगे। जेल में रहते हुए इस निर्णय पर पहुँचा और जेल से बाहर निकला, तो यही बोलने लगा।

मैं कहता हूँ कि हिंसा के दिन अब समाप्त हो गये हैं। विज्ञान आ रहा है और उसकी प्रगति कोई रोक नहीं सकता है। बल्कि रोकने की आवश्यकता भी नहीं है। लेकिन विज्ञान को सही प्रगति करनी है, तो उसे ठीक मार्गदर्शन मिलना चाहिए और वह मार्गदर्शन आत्मज्ञान ही दे सकता है।

सार्वभौम विज्ञान

विज्ञान के दायरे में एक प्रकार से सारी दुनिया आ जाती है। विज्ञान शब्द का प्रचलित संकुचित अर्थ न लें, उसे विशाल अर्थ में लें, तो आत्मा भी उसके ही अन्तर्गत आता है। इन दिनों विज्ञान का अर्थ सृष्टि के बाहरी गुण-धर्मों से ही माना जाता है, लेकिन आन्तरिक वस्तुएँ भी उसके क्षेत्र में आ सकती हैं। विज्ञान नीति-निरपेक्ष है; न वह नैतिक है, न अनैतिक ही। इसीलिए उसको मूल्यों की आवश्यकता है। इस स्थिति में उसे गलत मार्ग-दर्शन मिलता है, तो वह नरक का मार्ग बन जाता है और सही मार्गदर्शन मिलता है, तो स्वर्ग में ले जा सकता है। सही मार्गदर्शन आत्मज्ञान से ही मिल सकता है। यह सारा विचार मेरे मन में चलता रहा।

आत्मवाद और प्रेतविद्या

बचपन से ही इससे सम्बन्ध रखनेवाला जो भी साहित्य मिलता, मैं पढ़ लेता था। उन दिनों एक पत्रिका निकलती थी—'रिव्यू ऑफ रिव्यूज।' उसके सम्पादक को आत्मवाद (स्पिरिच्युआलिज्म) में रुचि थी। वह आज की आत्मविद्या (स्पिरिच्युआलिटी) नहीं था, आत्मवाद (स्पिरिच्युआलिज्म) था। उसका सम्बन्ध मृत्यु के बाद के जीवन से

अधिक था, इस जीवन से नहीं । उस पत्रिका में महान् वैज्ञानिक सर आलिवर लाज के वे पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुए थे, जो उन्होंने मृत आत्माओं के साथ किया था । चूँकि वे सब एक वैज्ञानिक के द्वारा प्रस्तुत किये गये थे, इसलिए उन्हें भ्रम या निर्मूल कहकर टाल नहीं सकते थे, उनका कुछ महत्त्व अवश्य था; लेकिन वह आध्यात्मिक विचार नहीं था, इसलिए मुझे उसका आकर्षण नहीं रहा । मुझे लगा कि जिस प्रकार विज्ञान बाह्य विश्व की ही खोज में लगा है, उसी प्रकार यह आत्मवाद दूसरे ही विश्व की खोज करनेवाला है । दोनों में किसीका सम्बन्ध आन्तरिक जीवन से नहीं था और इसीलिए उनमें मेरी रुचि नहीं रही ।

कुछ समय के बाद मैंने देखा कि यह आत्मवाद (स्पिरिच्युआलिज्म) प्रेतविद्या (स्पिरिटिज्म) में बदल गया । अंग्रेजी में अब यह नया शब्द स्पिरिच्युआलिटी चला है । लेकिन यह शब्द भी अक्सर चैतसिक (साइ-किक) प्रयोगों और शोधों से सम्बद्ध रहता है और इसमें कुछ गूढ़ता और रहस्यात्मकता रहती है ।

तीन निष्ठाएँ

मुझसे एक बार अध्यात्म की व्याख्या करने को कहा गया और मैंने अध्यात्म की तीन अनिवार्य निष्ठाएँ बतायी थीं । उनमें से पहली निष्ठा यह है कि हममें निरपेक्ष नैतिक मूल्यों पर आस्था होनी चाहिए । कभी सच तो कभी झूठ—इस प्रकार की अवसरवादी मनोवृत्ति और दाम्भिक विचार नहीं चलेगा । मानव-जीवन के प्रति अध्यात्म का दृष्टिकोण ऐसा नहीं हो सकता । जीवन को कुछ बुनियादी सिद्धान्तों और मूल्यों पर आधारित होना चाहिए, जो अपरिवर्तनीय हों, निरपेक्ष हों । दूसरी निष्ठा यह है कि जीवमात्र की एकता और पवित्रता में हमारा विश्वास होना चाहिए । जीवन की एकता और पवित्रता पर विश्वास होना बड़ी और कठिन बात है, लेकिन वह आवश्यक है । तीसरी बात है, मृत्यु के बाद भी जीवन की अखण्डता का स्वीकार । आत्मज्ञान में ये तीनों बातें अनिवार्य

हैं, इनके अलावा और भी कई बातें जोड़ी जा सकती हैं, परन्तु इनमें से एक भी घटायी नहीं जा सकती।

× × ×

जगद्गुरुओं की अनुभूति

आज सभी धर्म विकृत हो गये हैं। वे लोगों को जोड़ने के बजाय तोड़ने लगे हैं। लेकिन मेरा विश्वास है कि आध्यात्मिक अनुभूति और उसका नैतिकता के रूप में प्रयोग विश्व के सभी धर्मों का आधार रहा है। नैतिकता का अर्थ ही नियोजित ब्रह्म-विद्या (मिस्टिसिज्म अप्लाइड) है। ब्रह्म-विद्या का आधार न हो, तो फिर नैतिकता की कोई बुनियाद ही न रहे। जब भी हम गीता, उपनिषद्, बुद्ध के, ईसा के, सेंट पाल के या मुहम्मद पैगम्बर के वचनों को पढ़ते हैं, तो ऐसा लगता है कि आज तक लोगों ने उनको गलत समझा है। क्योंकि ऐसा दीखता है कि उन लोगों ने शब्दों के माध्यम से जो कुछ व्यक्त किया है, उससे भी कुछ अधिक गहरी अनुभूति उन्हें हुई है और शब्दों में वह ठीक-ठीक प्रकट नहीं की जा सकी है। बात यह नहीं कि अपनी अनुभूति को व्यक्त करने की उनमें क्षमता नहीं थी, बल्कि वे अनुभूतियाँ ही ऐसी थीं कि जो शब्दों में व्यक्त ही नहीं हो सकती थीं। हालाँकि ये अनुभूतियाँ एक ही वास्तविकता को इंगित करती हैं, फिर भी उनमें विविधता कम नहीं है।

मुझे लगता है कि इन जगद्गुरुओं को ब्रह्मविद्या में बहुत गहराई तक उतरना पड़ा होगा और मनोराज्य की देहरी पार करके जाना पड़ा होगा। तब उन्हें जो दर्शन हुआ, उसे अपने चित्त पर अंकित करके वे जनता के बीच लौट आये और उस दर्शन को कार्यरूप में परिणत करने में यत्नशील रहे। वे कहते हैं कि इस प्रक्रिया में वे लोगों पर प्रभाव डालते थे और साथ ही लोगों से प्रभावित भी होते थे। यह ऐसा कथन है, जो वैज्ञानिक खोज के लिए अस्पष्ट है। इसका तो अनुभव ही किया जा सकता है।

सत्य अनिर्वचनीय

ईसा ने कहा : "इब्राहीम के पहले से मैं हूँ ।" यह सुनते ही लोगों ने उस पर पत्थर बरसाना शुरू कर दिया । ईसा के वेदान्त का उत्तर यह मिला । ईसा ने यह नहीं कहा कि "इब्राहीम के पहले मैं था", बल्कि यह कहा कि "मैं हूँ ।" यह जो "मैं हूँ" है, यह कोई शाश्वत तत्त्व होना चाहिए, जो कि इब्राहीम के पहले भी था, भविष्य में भी रहेगा और अब वर्तमान में भी है । तो उस तत्त्व के कारण 'मैं' का लोप हो जाता है । यद्यपि वाक्य तो 'मैं हूँ' है, फिर भी सही वाक्य 'हूँ' यही है । लेकिन लोगों ने गलत समझा । आज संसार काफी प्रगति कर चुका है, फिर भी शब्द पहले की ही तरह शक्ति-हीन हैं ।

विज्ञान की देन

अब विज्ञान की प्रगति हुई है, तो आध्यात्मिक अनुभूतियों को शायद पहले से अंधिक स्पष्टतया व्यक्त किया जा सके । आशा है कि विज्ञान जैसे-जैसे प्रगति करता जायगा, वह हमें स्पष्ट अभिव्यक्ति की अधिकाधिक शक्ति प्रदान करेगा ।

विज्ञान की विशेषता है, उसकी नम्रता । वैज्ञानिक लोग हमेशा बहुत विनम्र होते हैं और कबूल करते हैं कि अभी अज्ञात तत्त्व बहुत हैं । मुझे कई बार लगता है कि यह नम्रता इन तथाकथित तत्त्वज्ञानियों में नहीं है । वैज्ञानिकों की यह नम्रता आत्मज्ञान का भी एक अनिवार्य लक्षण होना चाहिए ।

शोध की सम्भावनाएँ

विज्ञान और आत्मज्ञान के बीच समान तत्त्व यही है कि दोनों सत्य की खोज में लगे हैं । सत्य पूर्ण है, इसमें शंका नहीं । लेकिन उसके दो पहलू हैं; एक उसका स्थूल रूप है और दूसरा उसका सूक्ष्म तत्त्व है । विज्ञान आज स्थूल स्वरूप की खोज में लगा है, तो यह करते-करते

क्रमशः उस सूक्ष्म तत्त्व की ओर भी बढ़ेगा और उसका भी अनुसन्धान करने लगेगा।

जेम्स जीन्स की एक सुन्दर पुस्तक है—'दी मिस्टीरियस युनिवर्स।' उसमें उसने बताया है कि ईश्वर एक पक्का गणितशास्त्री है। हम हिसाब लगाकर देखते हैं कि अमुक ग्रह की अमुक गति है और वह अमुक समय पर अमुक स्थान में रहेगा; और फिर देखते हैं तो वह वहीं मिलता है। तो इस सारी सृष्टि में एक प्रकार का गणित काम कर रहा है, इसलिए ईश्वर महान् गणितशास्त्री है।

द्रव्य और चित्त भिन्न नहीं

आज विज्ञान ने यद्यपि सृष्टि के बाहरी बाजू से काम प्रारम्भ किया है, फिर भी अन्दर की ओर भी वह धीरे-धीरे जाने का प्रयत्न करेगा। तब उसे अनुभूति और प्रयोग की कुछ नयी पद्धतियाँ भी खोजनी पड़ेंगी। इन्द्रियों पर आधारित प्रचलित पद्धतियों और ऐंद्रियिक अनुभूतियों से तब काम नहीं चलेगा। यह सही है कि हम इंद्रियों के द्वारा जो कुछ देखते हैं, सुनते हैं, सूँघते हैं, स्पर्श करते हैं, यह सब उस तत्त्व के बिना नहीं होता है; फिर भी यही वह तत्त्व नहीं है। मैं कहूँगा कि वह तत्त्व द्रव्यनिरपेक्ष (इम्मेटीरियल) नहीं है, परन्तु द्रव्य से भिन्न जरूर है। इस अर्थ में द्रव्य (मेटीरियल) भी तात्त्विक (सब्स्टेंशियल) हो जाता है। इस तरह द्रव्य (मैटर) और चित्त (माइण्ड) दोनों दो नहीं रह जाते। चित्त पर द्रव्य का प्रभाव पड़ता है या द्रव्य पर चित्त का प्रभाव पड़ता है, इनमें कौन प्रमुख है और कौन गौण है आदि सारी चर्चाएँ बिलकुल निम्नस्तरीय हो जाती हैं। कोई एक तत्त्व है, जो चित्त और द्रव्य दोनों से परे है; और उस ऊँचाई से देखने पर चित्त, द्रव्य आदि सभी लगभग एक ही श्रेणी में दीखने लगते हैं।

प्रक्रिया-विचार

··पूछते हैं कि साक्षात्कार (रीयलाइजेशन) की कोई प्रक्रिया

(प्रोसेस) है ? इसका उत्तर होगा : है भी, नहीं भी । प्रक्रिया से हमारा आशय यह हो कि उसके द्वारा सीधे हम साक्षात्कार तक पहुँच जायें, तो वैसी कोई प्रक्रिया नहीं है । लेकिन एक प्रक्रिया है, जो परोक्ष रूप से इसमें सहायक होती है, यानी साक्षात्कार के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर करती है । और वह चित्त की अवस्था, परिस्थिति और ग्रहण-शक्ति के अनुसार बदलती रहनेवाली है ।

कल्पना सीमित

शक्ति (पावर) और शक्तिमान् (पावरफुल) दोनों समान हैं, बल्कि एक ही हैं । अतः हमें उस शक्तिमान् को पहचानना है । वह क्या चित्त है, द्रव्य है, या क्या है ? लेकिन शक्तिमान् का साक्षात्कार तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि शक्ति का स्रोत पकड़ में नहीं आता । हम तत्त्व और उसके गुण-धर्म को केवल कल्पना में ही अलग कर सकते हैं । तत्त्व को उसके गुण से अलग करते ही, तत्त्व भले मिट न जाय, पर बेस्वाद जरूर हो जाता है । सत्य और प्रेम से भिन्न ईश्वरत्व की कल्पना करने का प्रयत्न किया जा सकता है, लेकिन मुझे लगता है कि जहाँ तक मानव की कल्पना-शक्ति आज पहुँची है, उससे ऐसी कल्पना करना भी संभव नहीं है ।

कल्पना की एक तरंग में हम कह सकते हैं कि ईश्वरत्व सत्य, असत्य, और प्रेम आदि से भिन्न है । यह केवल कह ही सकते हैं, परन्तु साक्षात्कार की दृष्टि से यह कोरी कल्पना ही रहेगी । ईश्वर प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है । गांधीजी शुरू में कहते थे कि ईश्वर सत्य है । लेकिन बाद में कहने लगे कि अब मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सत्य ही ईश्वर है । इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है । प्रेम आदि ये सारी कल्पनाएँ ईश्वरत्व का अंशमात्र हैं । यदि अंधकार नहीं है, तो प्रकाश भी (जैसा कुछ आज हम उसे जानते हैं) नहीं है । इस अर्थ में प्रेम, करुणा आदि सारी बातें मानव-कल्पित हैं, पूर्ण ईश्वरीय नहीं ।

नया चित्त : नया मनुष्य

भाषा में ईश्वरत्व का वर्णन करना संभव नहीं है । वह तो अनुभव ही किया जा सकता है । लेकिन चूँकि वह मनुष्य है, इसलिए अपना अनुभव शब्दों के द्वारा या ऐसे ही किसी माध्यम से व्यक्त करने का प्रयत्न करता है । समाधि में हम ईश्वर को देख सकते हैं, सुन सकते हैं, सूँघ सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं; फिर भी यह समाधि का अनुभव इन सबसे भी कुछ परे है । जब हम समाधि से जगते हैं और बाहर आते हैं, तब अपने को कुछ बदले हुए पाते हैं, एकदम परिवर्तित । पहले की किसी वस्तु से हम जकड़े नहीं रहते । सेंट पाल के शब्दों में चित्त नया हुआ कि मनुष्य नया बन जाता है । उसने रीन्यूइंग (पुनर्नवता) शब्द प्रयोग किया है; वह अच्छा शब्द है । उस अनुभूति का प्रभाव हमारे चरित्र पर स्थायी हो जाता है । एक बार वह अनुभूति पाकर मनुष्य धरती पर आता है, तो वह दूसरे मनुष्यों की तरह व्यवहार नहीं कर सकता; उसकी भावनाएँ दूसरों जैसी ही नहीं रहतीं; वैसा रहना संभव भी नहीं ।

सामाजिक समाधि

मैंने सामाजिक समाधि (कलेक्टिव समाधि) शब्द का प्रयोग किया है । कुछ को यह बड़ा साहसपूर्ण लगा है । वे इसे बड़ी हिम्मत की बात बतलाते हैं । समाधि की अवस्था में हमारा आत्मा—उसे आत्मा कहें, जीव कहें या अहं—वह खो जाता है । यों उसे खोने पर भी वह पूर्णतया नष्ट नहीं हो जाता । पूर्ण रूप से नष्ट हो गया होता, तो हम ही खत्म हो जाते, लौटकर न आते । लेकिन हम लौट आते हैं, इसका अर्थ ही है कि हम पूरे नष्ट नहीं हो जाते । उस अनुभूति की अवस्था में हम एक व्यक्ति (इंडिविज्युअल) के नाते नष्ट हो जाते हैं । फिर जब पूर्ण जाग्रति में लौट आते हैं, तो इस शरीर से सीमित होते हैं; फिर भी प्रायः कुछ असीमित हो जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं । तब बड़े सहज भाव से, हमारे विशेष प्रयत्न

के बिना ही, स्पर्शमात्र से फैलनेवाले सांक्रामक रोगों की तरह वह अनुभूति में फैलती जाती है और इस क्रम से विश्व का परिवर्तन होता जाता है।

'मैं' से मुक्त 'हूँ'

मेरी दृष्टि में व्यक्तिगत मुक्ति जैसी कोई चीज है ही नहीं; बल्कि विश्व का कुल का कुल समूह परिवर्तित होना चाहिए। प्रत्येक को परिवर्तित होना चाहिए। मुक्ति तो नयी चीज नहीं है। वह तो पहले से ही है, बाद में भी है; लेकिन वह हमारे अनुभव में नहीं है। इसलिए हमें वह हूँ पुनः प्राप्त करना है और मैं को हटाकर करना है। भाषा इतनी सीमित है कि हूँ कहते ही मैं साथ में जुड़कर ही चला आता है; लेकिन यह व्याकरण की सीमा है, यह अलग बात है।

जब तक मानवमात्र उस समाधि की अवस्था को प्राप्त नहीं करता है, तब तक हमें संतोष नहीं है। मैं आम खाता हूँ, तो उसका रस मुझे मिलता है। आपके साथ बाँटे बिना मैं अकेला वह खाना नहीं चाहता।

× × ×

अपौरुषेय व्यक्ति

चाहे कृष्ण हो या ईसा, मेरे लिए वे अपौरुषेय व्यक्ति हैं—यदि ऐसा कहा जा सके, तो। भले वे ऐतिहासिक पुरुष रहे होंगे, लेकिन अब इतिहास से परे हो गये हैं।

सेंट पाल ने यह नहीं कहा कि हम ईसा का संदेश फैलाते हैं, बल्कि यह कहा कि "हम उस ईसा का संदेश फैलाते हैं, जो सूली पर चढ़ाया गया (क्रूसिफाइड)। यहूदी लोग चमत्कार चाहते हैं; ग्रीक लोगों को ज्ञान चाहिए; हम प्राणमुक्त ईसा (Christ crusified) का संदेश फैलाते हैं।" यहाँ 'ईसा' से 'क्रास पर चढ़ा ईसा' बिलकुल भिन्न है। सूली पर चढ़ा ईसा जीवित ईसा था, जो आज भी है और आगे भी रहेगा।

इसलिए मैं उसे अपौरुषेय कहता हूँ। इम्पर्सनल मानता हूँ। भारत में श्रीकृष्ण की भी यही स्थिति है। उस कृष्ण के कई दिव्य (ईश्वरीय) अनुभवों का वर्णन हमारे वैष्णव संतों ने किया है। हाँ, उनमें कुछ मतांतर जरूर मिलेंगे।

भारत में ऐसे भक्त और संत हो गये हैं, जिन्होंने ईश्वर को मानो प्रत्यक्ष देखा है। हम मन्दिर में जाते हैं, तो वहाँ एक भव्य वातावरण देखने को मिलता है, जैसे वहाँ भगवान् प्रत्यक्ष सामने है। वह दीख रहा है, हम देख रहे हैं, उसके स्पर्श कर रहे हैं, उसके चरण छू रहे हैं और जैसे बच्चे को सुलाते समय लोरी गाते हैं, उसी प्रकार का नाटक हम मंदिरों में करते हैं और सारा बहुत आनन्ददायक लगता है।

मानव-सेवा और भूतदया

सभ्य ईसाई-समाज की प्रार्थना में पूर्ण शान्ति और पवित्रता का दर्शन होता है। वहाँ न संगीत चलता है, न ही कोई चित्र रहता है; केवल सादी पूजा चलती है। और मंदिरों में ऐसा लगता है कि वे मानो मानवता (ह्यूमैनिटी) में तथा मानवता की सेवा में ईश्वर का दर्शन करने का प्रयत्न करते हों—[मानवता (ह्यूमैनिटी) की यह एक ऊँची श्रेणी है; वह कभी-कभी संकुचित भी होती है।] संस्कृत में इस तरह का शब्द नहीं है; इस शब्द का भाषांतर नहीं हो सकता। हमारे यहाँ भूतदया शब्द चलता है। उसका अर्थ है, प्राणिमात्र की सेवा। यहाँ के लोगों से पूछा जाय कि प्राणिमात्र की सेवा कैसी होती है, तो उसके उत्तर में उन्हें कुछ विवरण प्रस्तुत करना पड़ेगा, जो आधुनिक परिभाषा में मानव-सेवा और प्राणि-सेवा आदि से मिलती-जुलती बात ही होगी। तफसील में उतरने पर यही सब होता है। लेकिन यहाँ जो शब्द चलता है, वह है—भूतदया या प्राणिमात्र की सेवा, और उधर इन दिनों शब्द चलने लगा है—सेवा। ईसाई लोग ईसा को साकार या मूर्त ईश्वर ही मानते हैं। लेकिन ईसा ने यह कहा था : हे ईश्वर, मुझे क्यों भुला दिया ? हो सके, तो मेरा दुःख

दूर करो। लेकिन यदि संभव न हुआ, तो जो तुम्हारी मर्जी हो, सो होने दो। इससे स्पष्ट दीखता है कि ईसा निपट मानव था। मेरी दृष्टि में उसके मानव बने रहने में ही मधुरता है। लेकिन इससे उसकी आध्यात्मिक अनुभूतियों की सीमा आ जाती है।

आत्म-निरीक्षण

प्रश्न : ज्ञान की ऐसी उच्च स्थिति में जब आप बोलते हैं, तब क्या आप समाधिस्थ रहते हैं ?

विनोबा : शायद मुझे समाधि की अनुभूति हुई है। मैं शायद इसलिए कह रहा हूँ कि मैं यह नहीं जानता कि वह वास्तविक है या अवास्तविक। यह विज्ञान के परखने की बात है।

जीने की कला

प्रश्न : क्या सामाजिक समाधि के लिए हम कुछ कर सकते हैं ? संभवत: वैसा जीवन जीना और लोगों से प्रेम करना ही एक उपाय है। लेकिन विकास की यह प्रक्रिया बहुत मन्द गति से चलती होगी।

विनोबा : आपने जीवन जीने की बात की—यह बड़ी चीज है। शब्द छोटा है, लेकिन उसमें बहुत अर्थ निहित है। हमें ऐसा जीवन जीना है, जो स्थायी है, अपरिवर्तनीय है। अखण्ड और असीम स्थिति में जीते हुए, पड़ोसियों की सेवा करते हुए 'पड़ोसियों पर अपने जैसा प्रेम करो'—इस वचन का चिंतन करते-करते जब हमें स्वयं वैसी अनुभूति होने लगेगी, तब हम पड़ोसियों पर प्रेम करेंगे। ईसा ने यही नहीं कहा कि 'पड़ोसियों पर प्रेम करो', यद्यपि वही काफी था। ईसा को लगा कि हमें यह जो अनुभव करना है, उसका कुछ आधार होना चाहिए। तब उसने जोड़ दिया—'अपने जैसा'। केवल प्रेम करना काफी नहीं है। हम अपने बच्चों से प्रेम करते हैं, लेकिन माँ भी यह दावे के साथ नहीं कह सकती कि वह अपने बच्चे से वैसा ही प्रेम करती है, जो खुद से करती है। यह कहना माता

के लिए बहुत बड़ा दावा होगा। हाँ, कुछ माताएँ ऐसा प्रेम करती हैं। अपने जैसे ही पड़ोसी से प्रेम करना बहुत गहरी बात है।

इसमें मेरे और मेरे पड़ोसी के बीच कोई भेद नहीं रह जाता। यह दोनों को एक सत्त्व (एन्टीटी) में मिला देता है। जब तक हम उस सत्त्व का अनुभव नहीं कर लेते, दोनों में कुछ अंतर महसूस करते रहेंगे, तब तक हम प्रेम करने का प्रयत्न करते रहेंगे। वह प्रेम नहीं है, प्रेम करने का प्रयत्न है।

राजनीति का गलत आधार

अगर यह समझ में आ गया, तो फिर यह समझाने की आवश्यकता नहीं रहती कि राजनीति के दिन अब समाप्त हो गये, ऐसा मैं क्यों कहता हूँ। तथाकथित राजनीति का सारा आधार यह मेरा देश, यह तेरा देश, मेरा समाज, तुम्हारा समाज आदि विभाजन की मनोभूमिका और काल्पनिक भेदभाव ही होता है। यहाँ तक कि स्वतन्त्रता की बात भी, यद्यपि पिछले दिनों उसके बारे में हम बहुत सुनते रहे, अब मेरे लिए अर्थहीन हो गयी है। मैं नहीं जानता कि आगे कौन-सा शब्द आयेगा। हो सकता है कि सह-अधीनता (को-डिपेण्डेन्स) या अन्तर-अधीनता (इण्टर-डिपेण्डेन्स) या ऐसा ही कुछ होता होगा।

राजनैतिक लोग भी समझ गये हैं कि जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति हो रही है, वैसे-वैसे राजनीति निरर्थक होती जा रही है। फिर भी अभ्यासवश वे संदिग्धावस्था में काम करते जा रहे हैं।

ग्राम-परिवार से विश्व-परिवार

इन दिनों सभी राष्ट्रों के पास सेना है। रूस के पास भी बड़ी सेना है और अमेरिका के पास भी बड़ी सेना है। फिर संयुक्त राष्ट्रसंघ के पास भी कुछ सेना है। आखिर उस सेना का क्या उपयोग ? पिछले दिनों कांगो वगैरह में उसका कुछ उपयोग हुआ। लेकिन विश्व-समस्या के समाधान

का मार्ग यह नहीं है। उसके लिए पड़ोसीपन का और पड़ोसियों पर प्रेम करो का दायरा विशाल करना होगा। मैं हर रोज गाँववालों से कहता रहता हूँ कि यहाँ यह गाँव है और वहाँ वह विश्व है। जय जगत्। एक विश्व-परिवार है और एक ग्राम-परिवार है। भारत के गाँवों में कई ज़ाति के, कई धर्मों के और कई भाषाओं के लोग रहते हैं। ये गाँव समूचे विश्व का साररूप हैं, छोटा नमूना हैं। यदि 'पड़ोसियों पर अपने जैसा प्रेम करो' की भावना के आधार पर हम गाँव में एकता स्थापित कर सके, तो विश्व की एकता स्थापित करने का शिक्षण हमें मिलेगा। जिस तरह छोटे त्रिकोण में जो सिद्धान्त लागू होता है, वही बड़े त्रिकोण में भी—(यदि उसमें कोई विशेष बात न हो तो)—काम करता है; उसी प्रकार विश्वभर की विविधताओं के भरे हुए एक गाँव को हम सत्य, प्रेम और करुणा के आधार पर एक कर सकेंगे, तो उसी नमूने पर समूचे विश्व में एकता स्थापित कर सकेंगे। इसका प्रारम्भ हमें अपने आसपास के क्षेत्र से करना चाहिए।

सार तत्त्व : प्रत्यक्ष जीवन

प्रश्न : संसार का प्रत्येक व्यक्ति समाधि की अनुभूति कर ले, आपके शब्दों में सामाजिक समाधि सिद्ध हो जाय, तो क्या मानवता का वही अंतिम समाधान है? क्या विश्व की सारी समस्याओं का हल उससे होगा?

विनोबा : प्रश्न बहुत बड़ा है, फिर भी उसका स्तर आसान है। आध्यात्मिक अनुभव जब तक रहस्य ही बना रहता है, तब तक वह अनुभव ही नहीं माना जायगा। लेकिन वह अनुभव प्रत्येक को स्पष्टतया हो सकता है और उसके लिए हमें वह जीवन जीना होगा। (१)



आत्मज्ञान : २ :

(१) आत्मशब्द-विवेचन

शब्द-व्युत्पत्ति

आत्मन् शब्द की व्युत्पत्ति चार प्रकार से दी जाती है। एक श्लोक में इसका इस प्रकार संग्रह किया गया है :

> **यदाप्नोति, यदादत्ते, यच्चात्ति विषयान् इह।**
> **यच्चास्य सन्ततो भावः तस्मादात्मेति कीर्त्यते ॥**

'आप्' व्याप्तौ, 'आ न्दा' आदाने, 'अद्' भक्षणे, 'अत्' सातत्यगमने— इस तरह ये चार व्युत्पत्तियाँ हैं। मुझे ये सारी ही काल्पनिक लगती हैं। इनमें से अंतिम व्युत्पत्ति वास्तविकता के कुछ निकट कही जा सकती है। वास्तव में, मेरे मत से आत्मा शब्द 'आत्' धातु का रूप है। 'आत्' पूर्व-वैदिक धातु है। इसका संस्कृत में लोप हो गया है। पर ज्ञानेश्वरी की मराठी में ज्यों का त्यों और तमिल आदि द्राविड़ भाषाओं में यह धातु अपभ्रंश रूप में प्रकट हुआ है। 'आत्' भूत-कृदंत ज्ञानेश्वरी की भाषा में 'आतला' होता है। 'आत्' मूलतः 'अस्' और 'भू' के बीच का है। यद्यपि इस अर्थ-भेद का आगे लोप हो गया है, तो भी विचार-दृष्टि से यह महत्त्व का है। 'अस्' यानी 'केवल होना'—निर्गुण। 'भू' याने 'विविध भाव-युक्त होना'—सगुण। 'आत्' याने 'हो सकनेवाला होना'—बीच की स्थिति, सगुण-गर्भ निर्गुण। 'आत्मन्' का साथी 'भूमन्' एक परमात्मवाचक शब्द उपनिषदों में आता है। दोनों का स्थूल रूप से एक ही अर्थ है। बारीकी से देखें, तो 'भूमन्' विशेषण सगुण है। भूमन् 'भू' धातु से आया है। इसे ध्यान में रखने से यह सूक्ष्म भेद स्पष्ट हो जाता है। 'भूमन्' शब्द की

व्युत्पत्ति "बहु + इमन्" इस तरह पाणिनि ने बतायी है। इसका कारण यह पूर्ववैदिक धातु 'आत्' पाणिनि को, संभव है, ज्ञात न हो। ज्ञात होता, तो उन्हें आत् + मन् = आत्मन् तथैव भू + मन् = भूमन् यह सूझता। इसके अभाव में उन्हें 'अणिमन्', 'गरिमन्' आदि वर्ग में भूमन् को बैठाने की व्यवस्था करनी पड़ी है। संभवतः उपनिषदों में भूमन् शब्द जहाँ आया है, वहाँ वह अल्प के विरोधी के रूप में उपस्थित किया गया है और इसी कारण पाणिनि को ऐसा करने की आवश्यकता प्रतीत हुई हो। परन्तु 'भूमन्' 'भू' धातु से लगाने से विश्वरूप परमात्मा का वाचक होता है। फिर विश्वरूप में बहुत्व आ ही जाता है। किंबहुना, बहु शब्द मूल में 'भू' धातु का ही रूप है। इसकी ओर ध्यान देने पर तनिक भी कठिनाई नहीं रहती। परन्तु ब्रह्मन् निर्गुण, आत्मन् सगुण-निर्गुण, भूमन् सगुण— इस तरह का भेद विश्लेषण के लिए किया जाय, तो भी अन्त में उस सबको भुलाकर **'ईशावास्यमिदं सर्वम्'** इतना ही रहना है। (२)

जीव, आत्मा और परमात्मा

एक होता है पापात्मा, एक होता है पूतात्मा और एक होता है परमात्मा। जो वासनाओं से जकड़ा हुआ है वह पापात्मा है; उसकी पाप-वासना खत्म होने पर वह शुद्ध यानी पूतात्मा होगा। पापात्मा को थोड़े में जीव कहा, पूतात्मा को आत्मा कहा। शुद्ध होने के बाद जब वह व्यापक बनेगा, तब वह परमात्मा होगा। इस तरह से तीनों एक ही हैं, लेकिन भूमिकाएँ तीन हैं। सबसे नीचे की भूमिका में बहुत सारे जीव हैं, उनको सामान्यतः जीव कहते हैं। वे सभी पापी हैं, इसलिए उन्हें पापात्मा नाम दिया। पाप समाप्त होने के बाद जो जीव शुद्ध होता है, उसको पूतात्मा नाम दिया। वह आत्मा है; क्योंकि आत्मा स्वयंपूत होता है। वह वासनाओं से भिन्न होता है, वह आत्मस्वरूप है, इसलिए उसको केवल आत्मा कहते हैं। और जो व्यापक बना है, वह है परमात्मा। वह स्वयंसिद्ध है। (३)

आत्मज्ञान का ध्येय

आत्मज्ञान का क्या ध्येय है ? हिन्दुस्तान के आत्मज्ञान का ध्येय बहुत ही छोटा है । माया-मोह और पाप-पुण्य हों या न हों, जैसी भी परिस्थिति हो, संतोष से रहना है । बाहरी सुख-दुःख से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता । पूछा जाय कि इतना दुःख है, फिर भी शान्ति कैसे ? तो कहते हैं : "ईश्वर की लीला ही ऐसी है ।" वे मानते हैं कि मुक्ति उनके नजदीक है । एक भाई ने मुझे लिखा था कि "कैसी माया में, कैसे अहंकार में पड़े हो ? भला ऐसे भी दुनिया का उद्धार होगा ? ऐसे काम को पटक दो !" लेकिन सवाल है कि फिर करें क्या ?

उनकी गुरु एक स्त्री थी, जिनसे सात साल पहले मेरी मुलाकात हुई थी । वह बहुत शान्त और बड़ी साध्वी थीं । उस भाई ने मुझे लिखा : "तुम उस स्त्री की शरण जाओ । वह देवता, परादेवता है ।" मैंने पूछा : "वहाँ क्या करना होगा ?" उन्होंने लिखा : "सवाल पूछते हो ? ऐसा सवाल पूछना ही अज्ञान है, यही अहंकार है । करना-धरना क्या है ? यहाँ आकर बैठ जाओ, परम शान्ति मिलेगी ।" यह कितना सुन्दर पत्र लिखा ! इस प्रकार हिन्दुस्तान के लोग मुक्ति को नजदीक देखते और कहते हैं कि हमें आत्मज्ञान हासिल हो गया । सिर्फ गांधी ही ऐसा आदमी निकला, जो आखिर तक कहता रहा कि मुझे ज्ञान नहीं हुआ है । जिस प्रकार विज्ञान के सामने असम्भव ध्येय है, उसी प्रकार आत्मज्ञान के सामने भी होना चाहिए । जैसे विज्ञान कुल ब्रह्माण्ड पर स्वामित्व चाहता है, वैसे ही हमें भी कुल आत्मशक्ति पर प्रभुत्व हासिल करने की चाह रखनी चाहिए ।

आज का अधूरा आत्मज्ञान

हमने धर्म-साहित्य का जो कुछ अध्ययन किया है, उस पर से यही समझ पाये हैं कि अभी तक मानव-समाज को आत्मज्ञान का छोटा-सा अंश ही हासिल हुआ है । हमारे सामने किसी आदमी को बिच्छू काटता है, तो ज्यादा-से-ज्यादा हममें थोड़ी-सी करुणा पैदा होती है । यदि आत्मज्ञान

हुआ हो : "मैं और वह एक हैं" यह आत्मानुभूति हुई हो, तो उसे जो वेदना हुई, वही हमें भी होनी चाहिए। इसके बजाय अगर हम अत्यन्त प्रसन्न हैं, शान्त हैं, तो जिसे विच्छू ने काटा है, उसे भी शान्ति और आनन्द पहुँचना चाहिए। दोनों में से एक तो होना ही चाहिए—विच्छू का डंक हमारे शरीर पर उभर आये या हमारे आनन्द और शान्ति का भाव बिच्छू काटने-वाले के पास पहुँच जाय। अभी हमें इतना व्यापक आत्मज्ञान नहीं हुआ है। एक अंशमात्र हुआ है। इसीलिए हमारे अन्दर थोड़ी-सी करुणामात्र पैदा होती है। (४)

कथनी और करनी में ऐक्य हो

ईसामसीह ने कहा था कि 'लव दाइ नेबर ऐंज दाइसेल्फ'—अपने पड़ोसी पर अपने जैसा ही प्रेम करें। बोलने में तो सहज ही यह बात बोल देते हैं, लेकिन इस पर जब सोचते हैं, तो मालूम होता है कि यह हममें तब तक नहीं आ सकती, जब तक कि हम अपने मूल स्वरूप तक गोता नहीं लगाते। यों भी कई कारणों से पड़ोसी पर प्रेम करना सदैव लाभदायी होता है, इसलिए वह तो हम करेंगे ही। फिर भी ईसामसीह ने जो कहा, वह बहुत गहरी बात है। उस दृष्टि से हम अपने को तौलें, तो मालूम होगा कि हम ऊपर-ऊपर से समानता की कुछ बातें कर लेते हैं, परन्तु वह बिलकुल नकली साम्य है। जब तक अन्दर से यह अनुभूति नहीं होती कि "हम सब एक ही हैं—भिन्न-भिन्न आकार दीख पड़ने पर भी एक ही वस्तु हैं", तब तक इस ऊपरी एकता से कुछ नहीं बनेगा। हम गांधीवाले प्रार्थना करते हैं, उससे भी कुछ लाभ है। उसमें हम कुछ सुधार भी करते रहते हैं। फिर भी उसमें भक्ति से हृदय द्रवित होने की बात नहीं दीखती। हम बीमारों की सेवा करते हैं—दुनिया में दूसरी जो सेवाएँ चलती हैं, उनके मुकाबले में बहुत अच्छी सेवा करते हैं। किन्तु उसमें भी हमारा एक क्षेत्र बना है। हम क्षेत्र के अनुसार काम करते हैं। हमारी संस्थाएँ इतनी शुष्क बनती हैं कि उनमें कुछ आत्मतत्त्व ही नहीं होता। मनुष्यों में तो होता है, लेकिन

क्या संस्थाओं में भी आत्मा होती है ? नहीं । नयी तालीम, खादी-ग्रामोद्योग आदि में सारा ऊपर का 'टेकनिक' ही होता है । नयी तालीम के साथ क्या जोड़ना चाहिए आदि के बारे में अनुभव भी बताये जाते हैं । किन्तु ज्ञान और कर्म को बिलकुल एकरूप बनाने की असली बात तो बनती ही नहीं ।

दृष्टि में मौलिकता का अभाव

इन सबका तात्पर्य यही है कि बापू ने हमारे सामने कुछ ऐसी बातें रखी थीं, जो आध्यात्मिक क्षेत्र में ही रखी जा सकती थीं, दूसरे क्षेत्र में नहीं । अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि पाँच यमों के साथ और कुछ चीजें जोड़कर उन्होंने एकादश व्रत हमारे सामने रखे । यह कल्पना नयी नहीं, पुरानी है । लेकिन समाज-सेवा के काम में व्रत जरूरी हैं, यह बात बापू ने ही प्रथम रखी । पहले ये बातें आध्यात्मिक उन्नति के लिए जरूरी मानी जाती थीं । (योगी, साधक आध्यात्मिक विकास करने के लिए यम-नियमों का पालन करते थे । पतंजलि ने ये ही बातें कही हैं । बुद्ध, महावीर, पार्श्वनाथ आदि ने भी इन पर लिखा है । भक्तों ने सारी दुनिया में इनका विकास किया है । परन्तु वे सारी चीजें समाज-सेवा के लिए जरूरी हैं, उनके बिना समाज-सेवा नहीं हो सकती, यह सिद्धान्त बापू के आश्रम में ही मैंने प्रथम पाया । इनमें कोई ऐसी बात नहीं थी, जो मुझमें न हो । बचपन से ही मैं व्रत-पालन की कोशिश करता रहा । लेकिन वहाँ जो उद्देश्य रखा गया था, वह विशेष बात थी । बापू ने हमारे सामने विश्व-हित के लिए अविरोधी भारत की सेवा का उद्देश्य रखा और उस ध्येय की सिद्धि के लिए हम एकादश-व्रत मानते हैं, ऐसा कहा । यह चीज हमने और कहीं नहीं पायी । बापू ने उसके साथ आश्रम का कार्यक्रम और कर्म की विविध शाखाएँ भी हमारे सामने रखीं । इस तरह देश-सेवा के एक मूल उद्देश्य (जो विश्व-हित का अविरोधी—विश्व-हित से जुड़ा हुआ था) के लिए साधकों की जीवन-निष्ठा के तौर पर 'आर्टिकल ऑफ फेथ'

एकादश-व्रत और उनके लिए दिनचर्या, उनकी पूर्ति के लिए खेती, गोशाला, खादी आदि का पूरा कार्यक्रम बापू ने हमारे सामने रखा। इन स्थूल प्रवृत्तियों में से जितनी हम उठा सकते हैं, उठाते हैं। विश्व-हित के साथ हमारा विरोध न हो, यह चाहते हैं। परन्तु बीच का जो था, वह गायब हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि हम सत्य, अहिंसा आदि को मानते ही नहीं हैं। परन्तु वह मूल वस्तु हममें विकसित होती है या नहीं, इसकी तरफ हम ध्यान नहीं देते।

साधना की बुनियाद

बापू और दूसरों के भी जीवन में हम देखते हैं कि उनके सामने कुछ आध्यात्मिक प्रश्न थे। उन प्रश्नों की तृप्ति हुए बिना वे आगे नहीं बढ़ते थे। ईसा की जिन्दगी सिर्फ ३३ साल की थी और उनमें से वे तीन ही साल फिलस्तीन में, हिन्दुस्तान के दो-तीन जिले जितने दायरे में घूमे थे परन्तु आज उनके विचारों का असर सारी दुनिया पर है। ईसाइयों की संस्थाओं की उतनी कीमत नहीं है; परन्तु ईसामसीह का जो असर है, उसकी बात कर रहा हूँ। पहले ३० साल तक ईसामसीह ने क्या किया, इसका पता नहीं। कहा जाता है कि वे बढ़ई का काम करते थे। परन्तु उसमें उन्होंने कौन-सी साधना की, सिवा इसके कि उपवास किये और शैतान के साथ उनका मुकाबला हुआ। इससे ज्यादा हमें कुछ भी मालूम नहीं। अब तो यहाँ तक कहा जाता है कि वे तिब्बत तक आये थे। बात यह है कि कुछ बुनियादी आध्यात्मिक प्रश्न थे, जिन्हें हल करके ही वे निकले। 'लव दाइ नेबर ऍज दाइसेल्फ', इन शब्दों में उन्होंने शत्रु पर प्यार करने की जो जोरदार बात कही है, वह बिना अनुभव के नहीं कही जा सकती। इसी तरह बुद्ध भगवान् ने यह सवाल उठा लिया कि "यज्ञ में हिंसा न हो" और वे बिहार और उत्तर प्रदेश के १२-१४ जिलों में घूमे—यह तो हम सभी जानते ही हैं। लेकिन जब उन्होंने तपस्या की तो क्या किया, यह किसीको मालूम नहीं। वे कितने मण्डलों में गये, कितने पन्थों में गये, ध्यान

के कितने प्रकार उन्होंने आजमाये और इन सबके परिणामस्वरूप उनके चित्त को कैसी शान्ति मिली और कैसे यह निर्णय हुआ कि दुनिया में 'मैत्री' और 'करुणा' ये ही दो शब्द हैं—यह सब हम नहीं जानते। आगे की चीज तो जानते हैं, लेकिन पहले क्या हुआ, इस बात को नहीं जानते।

'ईश्वर-दर्शन' भी सम्भवनीय

बापू की आत्म-कथा हम पढ़ते हैं, तो इसकी कुछ थोड़ी-सी झाँकी मिलती है। रायचन्दभाई के साथ उनकी जो चर्चा हुई, वह भी हम जानते हैं। लेकिन उनके मन में आध्यात्मिक शंकाएँ थीं और उनकी निवृत्ति के बिना वे काम में नहीं लगे थे। 'मिस्टिक एक्सपिरियेन्सेस' (आत्मिक अनुभवों) के बिना बापू सेवा में नहीं लगे थे। वे कहते थे कि सत्य ईश्वर है। इसलिए लोग समझते थे कि यह वैज्ञानिक बात है। परन्तु वह सिर्फ वैज्ञानिक बात नहीं। मैंने उन्हें इस विषय में छेड़ा था। जब खान अब्दुल गफ्फार खाँ की मदद में जाने की बात चल रही थी, तब उन्हें लगा था कि अब वापस आना नहीं होगा। इसलिए उन्होंने मुझसे कहा था कि "तुम्हारे साथ बातें करना चाहता हूँ।" मैं अकसर उनके पास नहीं जाता था। इसलिए उन्हें लगा कि यह बिना बुलाये नहीं आयेगा। १५ दिनों तक बातें चलती रहीं। पहले दो-तीन दिनों तक तो वे ही सवाल पूछते गये और मैं जवाब देता गया। परन्तु एक दिन उन्हें मैंने ईश्वर के अनुभव के बारे में छेड़ा : "आप सत्य ईश्वर है, यह जो कहते हैं, वह ठीक है। परन्तु उपवास के समय आपने कहा था कि 'अन्दर से आवाज सुनाई दी', वह क्या बात है? क्या इसमें जादू है?" उन्होंने कहा : "हाँ, उसमें कुछ बात है। वह कोई साधारण चीज नहीं। मुझे स्पष्ट आवाज सुनाई दी। जैसे कोई मनुष्य बोलता है, वैसे ही सुनाई दी।" मैं पूछता गया : "मुझे क्या करना चाहिए?" उन्होंने कहा : "उपवास करना चाहिए।" मैंने पूछा : "कितने दिन का उपवास करना चाहिए?" तो उन्होंने कहा : "इक्कीस दिन।" यानी इसमें कोई पूछनेवाला था

और दूसरा जवाब देनेवाला। बिलकुल कृष्णार्जुन जैसा संवाद था। बापू तो सत्यवादी थे, इसलिए इसमें कोई गलत नहीं हो सकता। उन्होंने कहा : "मुझे साक्षात् ईश्वर ने यह बात कही।" फिर मैंने पूछा : "क्या ईश्वर का रूप हो सकता है ?" वे बोले : "रूप तो नहीं हो सकता, लेकिन मुझे आवाज अवश्य सुनाई दी।" इस पर मैंने कहा : "रूप अनित्य है, तो आवाज भी अनित्य है। अगर आवाज सुनाई दी, तो रूप कैसे नहीं दिखाई दिया ?" फिर मैंने उनके सामने कुछ जानकारी रखी। दुनियाभर के आत्मिक अनुभव और अपने भी अनुभव रखते हुए कहा : "ईश्वर दर्शन कैसे नहीं दे सकता ? आपके मन में सवाल-जवाब हुए। उनका ईश्वर के साथ ताल्लुक है न ?" उन्होंने कहा : "हाँ, उनके साथ ताल्लुक है। मैंने आवाज सुनी, लेकिन मुझे दर्शन नहीं हुआ। मैंने रूप नहीं देखा। उसका शब्द मैंने सुना। लेकिन उसका रूप है, इसका मुझे अनुभव नहीं हुआ, मुझे साक्षात् दर्शन नहीं हुआ। लेकिन वैसा दर्शन हो सकता है।" (५)

(२) आध्यात्मिक निष्ठा

निरपेक्ष नैतिक मूल्यों में श्रद्धा

अध्यात्म मूलभूत श्रद्धा है। उसके जो कुछ अंश ध्यान में आते रहते हैं, वे यहाँ रखने की कोशिश कर रहा हूँ। एक श्रद्धा तो यह है कि पूरे जीवन के लिए निरपेक्ष नैतिक मूल्यों पर श्रद्धा (फेथ इन दी ऍब्सोल्यूट वैल्यूज) की जरूरत है। इस प्रकार के शाश्वत नैतिक मूल्यों को मानने में सब तरह से लाभ है; उसे तोड़ने में सब प्रकार से हानि है। यह श्रद्धा इसलिए कही जायगी कि आज के युग में और किसी भी काल में मानव-मन को सापेक्ष नीति कभी जंची नहीं। हिंसा कुछ स्थानों में अनिवार्य मानी गयी थी; यह तो एक मिसाल है। ऐसे ही जो दूसरे नैतिक मूल्य शाश्वत माने जायेंगे, उनमें अपवाद निकालने की जरूरत मनुष्य को मालूम हुई। और बुद्धि से यह सिद्ध करना अशक्य हुआ कि आप सत्य पर अड़े रहिये

और आपका गला रेता जा रहा है, फिर भी आप विजयी हैं। इसीलिए इसमें श्रद्धा रखने की बात आती है।

मृत्यु के बाद भी जीवन की अखण्डता

अध्यात्म-श्रद्धा का दूसरा विषय यह होगा कि मृत्यु के बाद भी जीवन है। मृत्यु से जीवन खंडित नहीं होता। इसे जिस किसी रूप में रहना हो, यह तफसील का विषय है, बुद्धि से उसका निर्णय नहीं होनेवाला है। तफसील में विचार-भेद हो सकता है। लेकिन जीवन मृत्यु से खण्डित नहीं होता, उसके बाद भी रहता है—चाहे सूक्ष्म रूप में रहे या स्थूल में रहे, निराकार रूप में रहे या साकार रूप में, देहधारी रहे या देह-विहीन रूप में—ये छह भेद हो सकते हैं और होंगे—लेकिन जीवन अखण्ड है। जाहिर है कि यह विषय श्रद्धा का है। बुद्धि कुछ हद तक सबमें काम करेगी और फिर वह टूट जायगी। जहाँ वह टूट जायगी, वहाँ श्रद्धा काम करेगी। इस प्रकार जिस मनुष्य में श्रद्धा नहीं है, उसे आगे का ग्रहण नहीं होगा। जहाँ तक बुद्धि की पहुँच है, वहीं तक ग्रहण होगा।

प्राणिमात्र की एकता और पवित्रता

तीसरी श्रद्धा है प्राणिमात्र की एकता और पवित्रता—यूनिटी एण्ड सैंक्टिटी ऑफ लाइफ। यह अंग्रेजी शब्द इसलिए कि आज अंग्रेजी की परिभाषा चलती है। शिक्षितों को समझने में मदद मिलती है—यद्यपि मुझे संस्कृत शब्दों की आदत है। प्राणिमात्र की एकता और पवित्रता को जीवन में लाना अशक्य है। यद्यपि जीवन के लिए हम जन्तुओं का संहार करते हैं, असंख्य जन्तुओं का हमसे घात होता है और प्रत्यक्ष आचरण में ऊँच-नीच का भेद माना जाता है। यह सब है, लेकिन यह श्रद्धा होनी चाहिए कि प्राणिमात्र एक है और पावन है।

विश्व में व्यवस्था और बुद्धि

चौथी श्रद्धा यह है कि विश्व में व्यवस्था है अर्थात् रचना है, बुद्धि है। इतना कहने से ईश्वर की सिद्धि होती है। लेकिन उसे ईश्वरका नाम देने का आग्रह ईश्वर का अपना नहीं है, तो मेरा भी नहीं है। इसी का अर्थ होता है, परमेश्वर पर श्रद्धा। व्यवस्था है—इसका यह अर्थ नहीं कि हम-आप जो कुछ करते जाते हैं, वह सारा अपनी योजना से करते हैं। कुछ दूसरी योजना है, उसीके अनुसार सारा होता है। जेल में मैं यह बात समझाता था। वहाँ आँगन में घास का एक हिस्सा था, जिस पर लिखा था १९४५। यानी वह १९४५ में कटेगा और फिर वहाँ लिखा जायगा सन् १९४६। यह दृष्टांत देकर मैंने कहा कि उस घास में जो तिनका है, उसका अपना प्रयोजन है, लेकिन कुल मिलाकर सब तिनकों का प्रयोजन १९४५ बनाना है। वे तिनके यह जानते नहीं। तिनका आता है और जाता है, लेकिन सबका मिलकर एक प्रयोजन है कि जेल में कौन-सा साल चल रहा है, यह दिखाया जाय। इसी तरह हम भी तिनके-जैसे हैं। हम जानते नहीं कि इस सृष्टि में हमारा क्या प्रयोजन है। हम अपना-अपना प्रयोजन ही देखते हैं; लेकिन कुछ और प्रयोजन है, जिसके लिए सृष्टि-कर्ता ने हमें पैदा किया है। लेकिन इतना मानना बस होगा और यह पर्याप्त होगा कि विश्व में एक रचना है, व्यवस्था है और बुद्धि है।

पूर्णता का अनुभव शक्य

पाँचवीं श्रद्धा यह है कि मानव-जीवन में पूर्णता का अनुभव हो सकता है। व्यक्तिगत तौर पर हमने कई महापुरुष देखे हैं, सत्पुरुषों की संगति में रहने का अवसर हमें मिला है। फिर भी पूर्ण मानव मैंने नहीं देखा। लेकिन मानव-जीवन में पूर्णता का अनुभव हो सकता है, वह एक श्रद्धा का विषय है। (६)

(३) आत्मज्ञान अभी परिपूर्ण नहीं

हमारे आध्यात्मिक चिन्तन में एक दोष रह गया है। महापुरुषों में कोई दोष नहीं। उनका विचार समझने और उसे समझाकर बताने में दोष रह गया है। बहुतों की यह समझ है कि अध्यात्म-ज्ञान पूर्णता तक पहुँच गया है। अब उसमें किसी तरह की प्रगति की गुन्जाइश नहीं रही। वेदान्त और सन्तों के अनुभवों के बीच हिन्दुस्तान में अध्यात्म-शास्त्र परिपूर्णता को प्राप्त कर चुका है। लेकिन वैज्ञानिक लोग यही कहते हैं कि विज्ञान कथमपि पूर्ण नहीं हुआ है। वे कहते हैं कि हमारी प्रगति बहुत ही अल्प, सिन्धु में बिन्दु-सी है। यद्यपि आज स्पुतनिक छोड़ा गया और चन्द्रलोक में अभियान की बातें चल रही हैं, मानव को तरह-तरह की शक्तियाँ उपलब्ध हो चुकी ह; फिर भी विज्ञानवादी यही कहते हैं कि सृष्टि का ज्ञान अनन्त है और अभी उसका एक छोटा-सा अंश भी हमारे हाथ नहीं लगा है।

अध्यात्म का दोष

इसके विपरीत अध्यात्मवादी कहते हैं कि अध्यात्म-ज्ञान पूर्ण हो चुका है। उसमें अब किसी तरह की प्रगति शेष नहीं रही। उसका अन्तिम अध्याय लिखकर 'समाप्तम्' की रेखा भी खींच दी गयी है। अब उसमें कुछ जोड़ना बाकी नहीं रहा। किन्तु ऐसा कहना बहुत बड़ी भूल है। जिस तरह विज्ञान बढ़ रहा है, उसमें नयी-नयी खोजें हो रही हैं और भविष्य में भी होंगी, उसी तरह अध्यात्म में भी ऐसी ही खोजें होने को हैं और वह भी बढ़नेवाला है तथा आगे भी बढ़ता रहेगा। आज तक जो अध्यात्म-विद्या हमारे हाथ लगी है, वह तो अंशमात्र है। इसलिए पुराने लोगों ने जो लिख रखा है, उसे ही बार-बार पढ़ना और उसकी कथाएँ विभिन्न ढङ्गों से गाते रहना ठीक नहीं। कहा जाता है कि एक की गाथा पढ़ लेने के बाद दूसरी पढ़ी न जाय। उसकी जरूरत ही नहीं। आखिर ऐसा क्यों? तो कहा जाता है कि एक गाथा में जो अनुभव है,

वही अन्य गाथाओं में भी है। एक नियत अनुभव ही हर गाथा में है। फलतः अध्यात्म की कुछ भी प्रगति न हो पायी। जिसमें नये-नये शोध नहीं हुआ करते, वह विद्या कुण्ठित हो जाती है। अध्यात्म के विषय में हमारे देश में यही हुआ। वास्तव में आज तक जो विद्या हाथ लगी है, वह उतने में ही पूर्ण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अब भी अनुभव के कितने ही विषय पड़े हुए हैं।

विज्ञान के दोष अनुभव से सुधरते हैं

विज्ञान में भी कुछ दोष हुआ करते हैं। लेकिन वे अनुभव से सुधारे जाते हैं। एक जमाने में वैज्ञानिक यह मानते थे कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। वे जानते थे कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। यह कहनेवाले वैज्ञानिक भी हैं। किन्तु वे बड़ा ही सुन्दर तर्क उपस्थित करते। कहते कि "अगर पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती रहती, तो पंछी सुबह अपना घोंसला छोड़ निकलने के बाद शाम को पुनः वहाँ कैसे वापस आ पाते? कारण तब तक तो पृथ्वी जाने कितनी दूर आगे बढ़ गयी होगी! इसलिए सूर्य ही पृथ्वी के चारों ओर घूमता है।" किन्तु बाद में उन्हें अपने इस कथन का दोष ध्यान में आ गया और उन्होंने आगे चलकर अपनी वे भूलें सुधार लीं। जो भूलें होती हैं, उन्हें सुधारना ही चाहिए। हमें अध्यात्म में नया ज्ञान प्राप्त करना है, यह तो एक अलग ही बात है। लेकिन पुराना जो ज्ञान प्राप्त हो चुका है, उसे ही पूर्ण समझ लेना यह एक बड़ी भूल रह गयी है। इसी कारण हमारे महापुरुषों का सामाजिक जीवन पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता।

भूलों का अर्थशास्त्र पर प्रभाव

भूलों के कारण ही अर्थशास्त्र में मानव ने संकुचित वृत्ति बना ली है। मेरा घर, मेरा खेत, मेरा धन, मेरे घर का भला, मेरे राष्ट्र का भला— इस तरह 'मेरे' से परे वह सोच ही नहीं पाता। आखिर इसका क्या परिणाम होता है? एक व्यक्ति की सम्पन्नता दूसरे व्यक्ति के लिए बाधक हो सकती

है। अगर मैं सम्पन्न होता हूँ, तो उसके विरुद्ध क्या खड़ा हो जाता है ? दूसरे की विपन्नता ! इसी तरह दूसरे की सम्पत्ति में मेरी आपत्ति भी खड़ी हो सकती है। इस तरह अर्थशास्त्र में विरोध खड़ा हो गया है। आज प्रगतिशील राष्ट्रीय अर्थशास्त्र किसे कहते हैं ? उसका स्वरूप है—दूसरे राष्ट्र का विरोध कर अपने राष्ट्र को सम्पन्न करना।

अध्यात्म में भी वही भूल

इस भूल के परिणामस्वरूप जिस तरह अर्थशास्त्र में व्यक्तिगतता और संकुचितता का उपर्युक्त दोष आ जाता है, उसी तरह परमार्थ में भी यह दोष घर कर बैठता है। 'मेरा स्वार्थ', 'मेरा सुख' कहने में विचार-दोष होता है—दूसरों से अलगाव करना होता है। इसी तरह 'मेरी मुक्ति' यह भी आध्यात्मिक व्यक्तिवाद और स्वार्थवाद है। यह दोष पुराने जमाने में भी लोगों के ध्यान में आ चुका था और प्रह्लाद ने नृसिंह के समक्ष स्पष्ट शब्दों में कह भी दिया था। वह कहता है कि "बहुधा देव और मुनि अपनी ही मुक्ति की कामना करते और विजन अरण्य में मौनादि का आधार ले मुक्ति का आभासभर कर लेते हैं। लेकिन मैं इन दीन जनों को छोड़ अकेला मुक्त होना नहीं चाहता।" प्रह्लाद की यह आलोचना आज भी हम लोगों पर लागू हो रही है। कारण, अभी तक हमने इसमें कोई सुधार नहीं किया है। 'मेरी मुक्ति' यह कहना वदतो-व्याघात है। 'मैं' का लोप ही मुक्ति का साधन है। अगर इस साधन पर एक का ही आधिपत्य रखते हैं, तो 'मैं' दृढ़ होता है और दूसरे सभी अज्ञानी रह जाते हैं। अगर मैं यह चाहूँ कि मैं ज्ञानी बनूँ और अन्य लोग अज्ञानी ही रहें, तो मैं अपने हाथ से मुक्ति खो देता हूँ। 'मैं' मुक्ति का साधन नहीं हो सकता—बल्कि बन्धन का ही साधन होता है, यह बात अभी हम लोगों के ध्यान में नहीं आ पायी है।

सिद्धि-प्राप्ति भी एक पूँजीवाद

हमारे देश में पारमार्थिक साधना करनेवाले हमेशा कहा करते हैं कि 'अहन्ता' और 'ममता' त्याग देनी चाहिए। लेकिन वे उसके अर्थ

पर ध्यान नहीं देते । महाभारत में एक पहेली बूझी गयी है : ऐसे कौन शब्द हैं, जिसके दो अक्षरों से बंध होता है और तीन अक्षरों से मुक्ति होती है ? उत्तर में कहा गया है कि 'मम' से बन्ध और 'न मम' से मुक्ति होती है । सारांश, 'मैं' मिटे बिना मुक्ति सम्भव नहीं । लेकिन इसके विपरीत यहाँ 'मैं' ही मजबूत किया जाता है । कुछ सिद्धियाँ हस्तगत की जाती हैं, तो वे भी हठ से ही पायी जाती हैं । यह हठ पकड़ना पैसा कमाने जैसा ही है । मानव अपनी सारी बुद्धि खर्च कर डालता है । परिश्रम करता है, परेशानी उठाता है । तब उसे 'श्री' मिलती है और वह 'श्रीमान्' या पूँजीपति बनता है । इसी तरह यह साधक भी एक तरह से पूँजीपति ही होता है । कहा जाता है कि अमुक महापुरुष को साक्षात्कार हुआ है, सिद्धि प्राप्त हो गयी है, वह त्रिकालदर्शी हो गया है । आखिर इसका मतलब क्या है ? यही न कि उनके पास सिद्धियों का खजाना है और उनके चमत्कारों से लोग उन्हें साधु समझते और उनसे अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं । उनसे आशीर्वाद माँगते और कहते हैं कि उनके आशीर्वाद से हमारे बाल-बच्चों का कल्याण हुआ, घर सम्पन्न हुआ, उनका आशीर्वाद हमें फलीभूत हुआ । याने वह भी स्वार्थ साधना चाहता है और लोग भी अपना स्वार्थ साधने की सोचते हैं । फलतः समाज स्वार्थरत होता है ।

इस तरह हिन्दुस्तान में जो परमार्थ-साधना हुई, उसमें सूक्ष्म स्वार्थ भरा हुआ था । इसलिए वह परमार्थ की साधना ही नहीं थी । यह सच है कि पैसा कमाने की साधना से वह अधिक उच्चकोटि की रही । दर्जा ऊँचा था, पर जाति दोनों की एक ही थी । स्थूल भेद था, पर सूक्ष्म अर्थ में देखा जाय, तो भेद नहीं था । दोनों ही व्यक्तिगत ही थीं और दोनों अहन्ता और ममता को बढ़ानेवाली ही रहीं ।

देश का बड़ा नेता हुआ, तो वह पारमार्थिक दृष्टि से ऊँचा उठ गया, क्या यह निश्चित कहा जा सकता है ? नहीं, एक साधारण छोटे किसान की जैसी संकुचित बुद्धि होती है, वैसी उसकी भी हो सकती है । किसान को लगता है कि पड़ोस के खेत की हाथभर जगह मुझे मिल जाय, तो अच्छा

हो और उसके लिए वह प्रयत्नशील रहता है। इसी तरह कोई राष्ट्र-नेता भी यदि यह सोचने लगे कि अपने देश की सीमा थोड़ी-सी बढ़ जाय, दूसरे देश में पेट्रोल अधिक है, इसलिए वह भाग हमारे हाथ में आ जाय, तो क्या यह पारमार्थिक विचार होगा ? जिस तरह उस किसान का विचार स्वार्थी है, उसी स्तर का यह स्वार्थी विचार राष्ट्रनेता का भी है। परिमाण अधिक है, पर जाति एक ही है। $\frac{१}{२}$ कहिये या $\frac{१०}{२०}$, उसमें फर्क क्या पड़ता है ? ऊपर और नीचे बड़ा आँकड़ा होने पर भी मूल्य में क्या फर्क पड़ता है ?

साधना के नाम पर स्वार्थ

जब तक साधना का कमरा हाथ नहीं लगता, तब तक साधना के नाम पर स्वार्थ साधनेवाले का सूक्ष्म स्वार्थ होता है। उसका पारमार्थिक मूल्य तो होता ही नहीं। समाज का उत्थान करने की सामर्थ्य भी उसमें नहीं होती और उससे व्यक्ति की उन्नति भी नहीं होती। फिर भी उसमें भी मानव को एक प्रकार का समाधान मिलता है। लेकिन वह समाधान मरणोन्मुख व्यक्ति के समाधान जैसा होता है। मरण के समय मानव देखता है कि मेरे बाल-बच्चे सुखी हैं, नौकरी-चाकरी करते हैं, तो उसे किसी तरह की वासना नहीं रह जाती और वह बड़े समाधान से मरता है। क्या ऐसे व्यक्ति को मुक्त कहा जा सकता है ? यदि साधक को तप से इसी तरह का समाधान प्राप्त होता हो, तो उसका कोई विशेष मूल्य नहीं। कारण, वह समाधान मिलने के बाद "ततः किम् ?" (आगे क्या ?) यह प्रश्न रह ही जाता है। इसलिए जब तक 'मैं' और 'मेरा' नहीं मिटता—फिर वह मेरा घर, मेरा खेत हो या मेरी साधना, मेरी विद्या या मेरी मुक्ति हो, सारा—एक ही कोटि का समाधान है। वह समाज का उत्थान करने में समर्थ नहीं हो सकता।

'मैं' की जगह 'हम'

हिन्दुस्तान की साधना में एक बड़ी भूल रह गयी और वह यही कि 'मैं' कैसे मिटाया जाय, इस ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया। इस 'मैं'

को कैसे मिटाया जाय ? इस 'मैं' को 'हम' से मिटाया जाय । वस्तुतः 'मैं' को 'तू' से मिटाना चाहिए । 'तू' याने परमेश्वर । लेकिन परमेश्वर उपलब्ध कहाँ है ? वह दिखाई कहाँ पड़ता है ? वैकुण्ठ के किसी कोने में जा छिपा है । उसका पता ही नहीं लग पाता । शंकर भगवान् दो-दो जगह रहते हैं । काशी में या कैलाश में ? फिर क्या वे श्रीमानों की तरह गर्मी के दिनों में कैलाश पर और जाड़ों में काशी में रहते हैं ? इस तरह हवा-फेर, तफरी करनेवाला भगवान् कहाँ दीख सकता है ? फिर भी लोग उसे ही ढूँढ़ने जाते हैं । इसलिए ईश्वर यह कोटि अव्यक्त ही है । 'मैं' चला जायगा, तब 'तू' आयेगा । ऐसी स्थिति में 'तू' 'मैं' को कैसे मिटा सकता है ? इसीलिए यह सारा गड़बड़-घोटाला चलता है । इसलिए 'मैं' को 'हम' से मिटाना ही अच्छा होगा । यही मुक्ति अच्छी रहेगी । जब 'हमारी साधना', 'हमारी भक्ति' ऐसा बोला जायगा, तभी यह काम आसान होगा । उससे व्यक्ति और समाज दोनों का एक साथ उत्थान सधेगा । सच्चे अर्थ में वही साधना होगी । (७)

(१) साधना-विचार

'साधना' गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का अपना शब्द है। पुराने ग्रन्थों में खोजते हैं, तो साधना शब्द नहीं मिलता है। पुराना शब्द 'साधन' है। 'साध्यम्', 'साधनम्' आदि प्रयोग मिलते हैं, आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द नहीं। यह कवि की विशेषता है कि वे नये-नये शब्द देते हैं। आज यह शब्द सारे भारत में चलता है।

'साधना' शब्द में क्या-क्या आता है? इसके उत्तर में यह पूछना पड़ता है कि साधना में क्या-क्या नहीं आता? जो कुछ आता है, वह सब मिलकर 'साधना' बनती है। यह एक गोल शब्द है। भक्ति, ध्यान, कर्म, योग जैसे अनेक नामों का समावेश 'साधना' में होता है। (८)

अन्तर्निरीक्षण

मनुष्य के जीने की क्रिया कितनी भी परिशुद्ध क्यों न हो, उसमें कुछ कर्म-सम्बन्ध रहता ही है। कुछ विचार करने ही पड़ते हैं और कुछ विकार भी होते ही हैं। 'विकार' शब्द से बुरा ही अर्थ मानने का कोई कारण नहीं है। वे बुरे होते हैं, गलत होते हैं; लेकिन अच्छे भी हो सकते हैं। जीवन में ये सब चीजें निहित हैं। जहाँ हम अन्दर की बात खोजने के लिए बैठते हैं, वहाँ ये सब चीजें बाहरी माननी चाहिए; यहाँ तक कि विचार भी। इनसे अपने को अलग करने की शक्ति होनी चाहिए। यही ब्रह्मविद्या का आरम्भ है। सर्वथा विचार-मुक्ति, विकार-मुक्ति, अभिलषित हो, तो भी देह के रहते वह प्राप्त नहीं होगी। इसलिए यह त्रिवर्ग हमारा चिर-साथी है, यह समझकर ही सोचना चाहिए। लेकिन खास काम के

लिए, याने अन्दर गोता लगाने के लिए इन तीनों को अलग करने की शक्ति होनी चाहिए। (६)

क्रम-विचार

अध्यात्म-शास्त्र में भी क्रम है, ऐसी अपेक्षा रखी जाती है। परन्तु कौन प्राणी कहाँ से आया, कहाँ उसका जन्म हुआ, यह किसे मालूम है ? मैं अमुक को पन्द्रह साल से जानता हूँ। वह चालीस साल का है। उसके कुछ पुराने संस्कार हैं, जो वह खुद नहीं जानता। तो उसे मैं कोई क्रम कैसे बताऊँ ? लेकिन मैं भी तो एक क्रम में ही आया हूँ। इसलिए किसीका क्रम हम तय करें, यह लगभग असम्भव है। दिशा तय हो सकती है, उसका विचार करें। वह एक बहुत बड़ी चीज हो जाती है, हमारे मानस पर उस दिशा का असर होता है।

क्रम-विवेक

अगर हम बहुत-सा कर्म छोड़कर साधना में लग जाते हैं, तो उससे तमोगुण और जड़ता आ सकती है। अंदर से विषय-विकार भी बढ़ सकते हैं। अगर कर्ममय साधन लेते हैं, तो उसमें रजोगुण का खतरा रहता है। इस तरह दोनों बाजू खतरा पड़ा है। निश्चय नहीं कर सकते कि कौन-सा खतरा ज्यादा अच्छा है। जहाँ प्रवृत्ति बढ़ी हुई है, वहाँ तमोगुणी साधन कम खतरेवाला माना जायगा, जैसे इंग्लैण्ड में। लेकिन भारत में तमोगुण ही प्रधान है। वहाँ रजोगुण को अवकाश देनेवाला साधना-क्रम कम खतरनाक माना जायगा।

ब्रह्म-विद्या में आनेवालों को अब तक वे जो कुछ पढ़ चुके हों और जो संस्कार लिये हों, उनसे मुक्त हो जाना चाहिए, ताकि यह विद्या हासिल हो। यह विचार हमें दिशा दिखाता है। हर रोज मैं उपनिषद् गाता हूँ; उसका बड़ा उपकार है। उसमें ज्ञान और अज्ञान दोनों के लाभ बताये गये हैं और दोनों के दोष भी। इसलिए उनसे परे हो जाना है। (१०)

मुक्त-चित्त

कई चैतसिक शक्तियाँ हैं; उनसे भी परे हो जाना है। सबसे बड़ी आध्यात्मिक वस्तु यह मानी जायगी कि जैसे हम घड़ी से भिन्न हैं, वैसे ही चैतसिक शक्तियों से भी बिलकुल भिन्न हैं, यह महसूस करें। मान लीजिये, घड़ी का उपयोग है, इसलिए घड़ी की तरफ ध्यान दिया और उसका उपयोग किया। घड़ी पैदा की तो अच्छा काम किया, दुनिया के लिए उपयोगी काम ही किया, लेकिन कोई आध्यात्मिक कार्य किया, ऐसा नहीं माना जाता। इसी तरह चैतसिक शक्तियों के बारे में सोचना है। उनका कुछ सदुपयोग किया जाता है तो कुछ दुरुपयोग भी; जैसे विज्ञान के भी दोनों उपयोग हो सकते हैं। वैज्ञानिक जो खोज करते हैं, वह एक उपयोगी काम है; लेकिन यह नहीं कहा जायगा कि वे कोई आध्यात्मिक विषय होते हैं। इसी तरह चैतसिक शक्तियों की बात है। वह खोज है और निःसंशय विज्ञान का एक विषय है। जीवन की उपयुक्तता के अलावा जैसे विज्ञान के प्रयोग किये जाते हैं और कुछ तरीके ध्यान में आते हैं, वैसे ही इसमें भी प्रयोग किये जाते हैं और तरीके ध्यान में आते हैं। (११)

अब कोई इसका विज्ञान बनाये और खोज-प्रयोग करे तो करे; लेकिन यह पक्का ध्यान में रखें कि उसका अध्यात्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। (१२)

(२) चित्त-शोधन

मृत्यु-साधना

एक वैदिक मंत्र है—**'तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोः विततं संजभार'**—वह सूर्य की महिमा है और वही उसका देवत्व है। सूर्य की दिव्यता इसीमें है कि दिन में उसने जो किरण-जाल फैलाया, उसे शाम के समय समेट ले। काम चलते-चलते बीच में ही उसे बन्द कर दे। घोड़ा दौड़ रहा है; दौड़ते-दौड़ते वह एकदम रुक गया। इस तरह की जो

सूर्य की शक्ति है, उसका दर्शन शाम को होता है । ऋषि उसकी प्रशंसा करते हैं । यह शक्ति परमात्मा रोज दिखा रहा है । हमारे मन में वासनाएँ और विचार हैं, वे दौड़ते रहते हैं । फिर भी नींद आ ही जाती है । अपनी इच्छा से नींद लेना बहुत बड़ी बात है—**'स्वपनं स्ववशोऽप्यपि ।'** अपने को सुलानेवाली शक्ति हममें नहीं है । वैसे आलस में सोना अलग बात है, लेकिन कुल विचार एक क्षण में रोककर जिस क्षण चाहे सो जाना कोई मामूली बात नहीं है । 'अब मैं सो जाता हूँ' यह कहकर सो जाना बड़ी बात है । उसका अभ्यास करने का मौका रोज भगवान् हमें देता है । मृत्यु के समय भी सारा समेटना होता है । तब मन, बुद्धि, प्रज्ञा, वासना आदि सबके सब अपने साथ लेकर स्थूल को छोड़कर आत्मा चला जाता है । वह अपने साथ जो ले जाता है, वह वस्तु इतनी सूक्ष्म है कि आँखों से देखी नहीं जाती । उस समय शरीर गिर जाता है, क्योंकि उसको धारण करनेवाली जो शक्तियाँ थीं, उन सबको लेकर वह शरीर को छोड़कर चला जाता है । जो गया, उसे नहीं देखा; जो शक्तियाँ लेकर गया, उसे भी नहीं देखा । लोगों ने तो उसको देखा, जो शरीर पड़ा है । उसीको आसपास के लोग देखते हैं । जान-बूझकर, सोच-विचारकर इच्छा के मुताबिक सोना अभ्यास का विषय है । ऐसे ही मृत्यु के पहले याने हमेशा, जीवन में कोई नहीं कह सकता कि हम दो-चार साल पहले (बाद में) यह करेंगे, क्योंकि मृत्यु का क्षण निश्चित नहीं है । इसलिए मृत्यु के पहले यानी प्रतिक्षण मृतवत् जीना याने अपने को अन्दर समेटे हुए जीना बहुत बड़ी चीज है ।

नामघोषा में एक पद्य है : **'जिजने एकान्तत चित्ते माधवक भजि निते । फुरे माधवर गुण गाइ'**—भक्त एकान्त चित्त से भगवान् के गुण गाता हुआ फिर रहा है । वह फिरता भी रहता है और चित्त को एकान्त में भी रखता है । यह अभ्यास की बात है ।

हम इस शरीर से अलग हैं, यह पहचानना है । जहाँ आप शरीर से अलग हो जाते हैं, एकदम सारी सृष्टि और समाज में घुल-मिल जाते

हैं। यह अभ्यास का विषय है, जो हम रोज कर सकते हैं। सोने से पहले मृत्यु का अभ्यास करना चाहिए। ऐसे ही काम करते-करते इन सब कामों से चित्त को अलग रखने का अभ्यास करना चाहिए। यह कहने-सुनने आदि से प्राप्त नहीं होगा। इस दिशा में चित्त को गति देनी होगी।

निवृत्त-चित्त

चित्त को निर्लिप्त रखने की चेष्टा करनी होगी। सतत जागरूकता रहे और उसकी चेष्टामात्र ही हो। वह चेष्टा यानी क्रिया न बने। यह एक स्थिति है कि जहाँ क्रिया आयेगी, वहाँ वृत्ति आयेगी। लेकिन हम चाहते हैं कि वृत्ति न रहे, स्थिति रहे। मैं मनुष्य हूँ, इसका हमें जप नहीं करना पड़ता। वह सहज याद है। यद्यपि वह याद भी नींद में नहीं रहती और न मृत्यु में ही रहनेवाली है, इसलिए वह भी मनुष्य की बहुत मूलभूत स्थिति है, ऐसा नहीं है। लेकिन निरन्तर अध्यास के कारण मनुष्य के लिए मानवता स्वाभाविक हो गयी है। उसे बार-बार याद नहीं करना पड़ता, वह चित्त पर बोझ नहीं है, लेकिन उसके सिवा सब चीजें चित्त पर बोझ हो जाती हैं।

अज्ञान का ज्ञान

मनुष्य के लिए वाणी ईश्वर की देन है। वाणी और भाषा में फर्क है। मनुष्यों की वाणी एक है, जैसे पक्षियों की। भिन्न-भिन्न जाति के पशुओं की एक-एक वाणी है, वैसे ही अपनी भी एक वाणी है। लेकिन भाषाएँ अनेक हैं। भाषाएँ माता-पिता और समाज की देन है, परन्तु वाणी ईश्वर की देन है। वाणी भी आत्मा पर एक अध्यास है। उपनिषदों में कहा है—**'तमभित आह जानासि माम् जानासि माम्'**—जो परमात्मा के पास जा रहा है, उसके आसपास के लोग उसे देखते हैं और जान लेते हैं कि अब अन्तिम घड़ी आयी है, यह जा रहा है। तो माँ आकर उससे पूछती है कि "मैं कौन हूँ, तुम जानते हो?" बाप भी यही पूछता है। उसने जवाब

दिया तो वे समझते हैं कि वह है; और अगर जवाब नहीं दिया तो समझते हैं कि नहीं है ।

'यावत् न वाक् मनसि सम्पद्यते, मनः प्राणे, प्राणस्तेजसि, तेजः परस्यां देवतायाम् , तावत् जानाति'—(जब तक उसकी वाणी मन में लीन नहीं हुई, उसका मन बुद्धि में लीन नहीं हुआ, उसकी बुद्धि प्राणों में लीन नहीं हुई और प्राण परमात्मा में लीन नहीं हुए, तब तक वह जानता है ।) वाणी का मन में, मन का बुद्धि में, बुद्धि का प्राण में, प्राण का परमात्मा में लीन होना—यह एक प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया जैसे निद्रा में होती है, वैसे ही मृत्यु में होती है । यह बहुत बड़ा पवित्र अज्ञान है । इसका ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है । आत्मा ज्ञानी नहीं है, ज्ञानस्वरूप है । ज्ञानी तो आत्मा से भिन्न है, इसलिए वह आत्मा नहीं है, बुद्धि है । इसी-लिए यह प्रक्रिया होती है और लोग मरनेवाले से पूछते हैं—**'जानासि माम् जानासि माम् ।'** आत्मा पर जो व्यर्थ के अध्यास होते हैं, वे चले जाते हैं । सबसे ऊपर का अध्यास पहले हटता है, उससे गहरा उसके बाद हटता है और सबसे गहरा और बाद में हटता है ।

चित्त को अलग रखना सहज स्थिति है । इसमें कोई अध्यास का विषय नहीं है । यह सध जाय, तो चित्त में प्रसन्नता का झरना बहने लगता है । फिर आनन्द ही आनन्द रहता है । उसके कारण बुद्धि में समता रहती है । (१३)

(३) साधना का विनियोग

हिन्दुस्तान जैसे विविधता और अनेकता से भरे देश में बिना स्नेह के कोई काम चलता है, तो भले ही वह कितना ही महत्त्व का हो, लेकिन अन्ततः हानिकारक ही सिद्ध होगा । अतः हमारे देश के लिए सबसे मुख्य बात 'अनुराग' और 'स्नेह' है ।

आज मतभेदों का मूल्य न्यूनतम

मैं तो सभी 'आइडियोलॉजी' या विचारसरणियों को गौण और स्नेह-भावना को ही मुख्य मानता हूँ। विज्ञान ने जो साधन पैदा किये हैं, उनके सामने वह 'आइडियोलॉजी' सर्वथा गौण हो जाती है। विज्ञान के कारण मानव के हाथ में ऐसे-ऐसे विशेष साधन आ गये हैं, जिनसे अत्यधिक लाभ हो सकता है और अत्यधिक हानि भी। दोनों संभावनाएँ विज्ञान में हैं। अतः यदि हमें विज्ञान के साधनों से लाभ उठाना हो, तो मतभेदों के कारण कभी भी कटुता पैदा न कर सदैव प्रेमभाव ही कायम रखना चाहिए। इस तरह विज्ञान-युग में मतभेदों का मूल्य बहुत ही कम हो जाता है।

विज्ञान-युग में जहाँ मतभेद रहते हैं, उस स्थान की भी कीमत कम हो जाती है। आखिर मतभेद कहाँ रहते हैं? आँख, कान, नाक, शरीर या आत्मा में नहीं, मन में ही रहते हैं। ज्यों-ज्यों विज्ञान बढ़ेगा, त्यों-त्यों मन का महत्त्व भी निश्चित ही घटता जायगा, लेकिन आत्मा एवं शरीर का महत्त्व जैसा-का-तैसा बना रहेगा। भूख लगने पर खाना पुराने जमाने से चला आ रहा है और विज्ञान-युग में भी चलता रहेगा। विज्ञान के आगे मन टिक ही न सकेगा। मन में विविध विकार, तरह-तरह के संकल्प-विकल्प और राग-द्वेष हुआ करते हैं, जिनके कारण टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, एकीकरण नहीं हो पाता। विज्ञान एकीकरण की अपेक्षा करता है। यदि हम सारे समाज को एक करने का उपाय करें, तो विज्ञान से लाभ उठा सकते हैं।

मतभेद बौद्धिक स्तर पर लाये जायँ

मन को विक्षेप होने पर जो औजार सामने दीखते हैं, मानव उन्हींका उपयोग करने लगता है। इन दिनों हम-आप कई सभाओं में हाथापाई, कुर्सी-टेबुल की उठा-पटक की घटनाएँ देखते-सुनते रहते हैं। यदि उस क्षोभ के समय आज के तीव्र-से-तीव्र औजार उपस्थित रहें और मानव उनका

उपयोग करे, तो कितना अनर्थ होगा, इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। उससे विज्ञान को कुछ लाभ तो मिलेगा ही नहीं, बुरी-से-बुरी हानि ही उठानी पड़ेगी। अतः हमें मतभेदों को बुद्धि के क्षेत्र में लाना चाहिए, उन्हेंमन के क्षेत्र में रखना ठीक नहीं। याने बौद्धिक दृष्टि से हम एक-दूसरे को समझायें और परस्पर विचारों का परिवर्तन करने की कोशिश करें।

बापू उत्तरोत्तर साधन-शुद्धि की जो बात करते थे, विज्ञान के कारण उसे भी अत्यधिक वेग प्राप्त हो गया है। आज 'साधन-शुद्धि' का अर्थ यह है कि हम जिन साधनों का उपयोग करें, उनके विषय में न तो हमारे मन में क्षोभ हो और न सामनेवाले के मन में। समाज में बिना क्षोभ के मानसिक या सामाजिक जो कोई परिवर्तन हो सके, वही होना चाहिए। याने परस्पर विचार-विमर्श ही होना चाहिए। सभी प्रश्न हल हो गये हों— ऐसा भी जमाना कोई हो सकता है, यह कल्पना ही नहीं की जा सकती। सर्वदा कोई-न-कोई प्रश्न रहेगा ही। किन्तु विज्ञान-युग की यही माँग है कि उन प्रश्नों के हल के साधन शुद्ध होने चाहिए। पहले किसीको गाली न देना या किसी पर वार न करना ही साधन-शुद्धि में आता था। किन्तु अब विज्ञान के कारण उसका क्षेत्र भी व्यापक हो गया है। आज साधनशुद्धि का अर्थ 'मन में क्षोभ पैदा न करनेवाले साधन' तक व्यापक हो जाता है।

मन नहीं, बुद्धि को अपील करें

इस पर प्रश्न उठता है कि "मन में क्षोभ न हो, तो आन्दोलन कैसे चल सकता है? 'आन्दोलन' का अर्थ है, मन में क्षोभ। आज जो भी आन्दोलन किया जाता है, तो मन में क्षोभ पैदा करते ही हैं। फिर वह अच्छे अर्थ में हो या बुरे अर्थ में, यह अलग बात है। अतः क्षोभ पैदा किये बिना काम ही कैसे चलेगा?" यह प्रश्न पूछनेवाले का मन पुराने जमाने का है, इस जमाने का नहीं। यह विज्ञान-युग का मन नहीं। पुराने मन को पता ही नहीं कि बिना क्षोभ के भी हलचलें हो सकती हैं।

पंडित जवाहरलालजी ने 'भारत की खोज' नामक ग्रन्थ में शंकरा-

चार्य का वर्णन किया है। वे लिखते हैं: "बड़े आश्चर्य की बात है कि शंकराचार्य ने एक सामाजिक कार्य किया और सारे भारत के हृदय पर अमिट प्रभाव डाला। वह भी केवल बुद्धिपूर्वक विचार समझाकर किया।" साधारणतः सामाजिक नेतागण समाज में परिवर्तन करने के लिए प्रायः मन को ही अपील करते हैं। किन्तु शंकराचार्य ने मन को नहीं, बल्कि बुद्धि को ही अपील की। बुद्धि को अपील करते हुए भी साधारणतः जैसे अन्य दार्शनिक केवल शाब्दिक चर्चा करते हैं, वैसा उन्होंने नहीं किया। प्रत्युत वे गाँव-गाँव घूमे। पन्द्रह-सोलह वर्षों तक लगातार घूमने के साथ-साथ वे लोगों के पास पहुँचकर उन्हें विचार भी समझाते रहे। आज के विज्ञान-युग में शंकर की यह पद्धति ही चलेगी। पुराने जमाने में शंकर जितने बलवान् थे, अब उससे भी अधिक बलवान् होंगे। क्योंकि उनके ग्रन्थों में विचारों के सिवा कुछ भी नहीं है। वे विचार ही समझाते थे और वह समझ में न आता, तो बार-बार समझाते थे। विचार समझाने की यह शक्ति ही वैज्ञानिक शक्ति है।

यदि मार विचार की प्रेरक होती...!

लेकिन आजकल अगर समझाने पर भी कोई हमारी बात नहीं मानता, तो हम उसके कान खोलने के लिए कुछ उलटी बातें कर बैठते हैं। ऐसे ही कई काम करते हैं। किन्तु इनमें मारने-पीटने की बात तो अब छोड़ ही देनी चाहिए। कोई शिक्षक छात्रों को कुछ उपदेश दे और वे न मानें, तो वह खुद को ही एक तमाचा जड़ देता है। उसका उद्देश्य यही रहता है कि छात्र समझ जायँ कि हमारे न मानने से इन्हें बहुत दुःख हुआ, उन्हें उसकी बात सुनने का मन हो जाय। किन्तु सोचने की बात है कि अपने को तमाचा मार लेने की बात शान्तिपूर्वक हुई या क्षोभपूर्वक? ग्रामोफोन कोई गाना सुना देता है, तो उसे कोई हर्ष या क्षोभ नहीं होता, पर गानेवाले गायक को तो होता ही है। इसी तरह मारना या अपने को मार लेना क्षोभपूर्वक ही माना जायगा, न कि विचार-प्रेरक। यदि इस तरह

किसीको मारने या खुद को मार लेने से विचार की प्रेरणा होती हो, तो फिर इतने सारे ग्रन्थों और शिक्षण-शास्त्र की भी कोई जरूरत न रहती ।

फिर उपवास भी क्या रोयेगा ?

कोई अपनी बात मनवाने के लिए अनशन या उपवास भी करते हैं । किन्तु यह उपवास क्यों किया जाता है ? हमारी देह ने तो कोई अपराध किया नहीं है । पेट में कुछ अपचन हो, तो न खाना ठीक भी है । लेकिन कोई रोग न होने पर भी भूखा क्यों रहा जाय ? इसी तरह शरीर से कुछ काम न करवाना हो और केवल ध्यान ही करना हो, तो खाना छोड़ देना समझ में आ भी सकता है । शरीर-दोष के लिए या प्रायश्चित्तस्वरूप उपवास की बात समझ में आ सकती है । लेकिन मानव को बौद्धिक प्रेरणा देने के लिए उपवास करने का अर्थ ही क्या है ? हममें प्रेम, करुणा और सत्यनिष्ठा होने के बावजूद यदि किसी पर उनका असर नहीं होता, तो इन उपवासों से भी क्या होगा ? आप कहेंगे कि वह करुणाप्रेरित उपवास है; तो मैं कहूँगा, शिक्षक का छात्र को मारना भी करुणाप्रेरित ही तो है । किन्तु इस तरह तो बच्चे को देह-पीड़ा देकर वश में करने की शिक्षा मिलती है । फलतः कल अगर कोई अत्याचारी उसे पीड़ा दे, तो वह उसके भी वश में हो सकता है; यह बड़ी बुरी बात हो जायगी ।

आज अमेरिका और मास्को से बैठे-बैठे हिन्दुस्तान पर बम डालकर उसे नष्ट किया जा सकता है । यही भय दिखाकर कोई ऊपर से अपने विचार मान लेने के लिए पर्चे बरसाये, तो उसके सामने इन उपवासों का महत्त्व ही क्या है ? उनसे आप कितना परिवर्तन कर सकते हैं ? हम उपवास से जितना क्षोभ पैदा कर सकते हैं, उससे अत्यधिक क्षोभ तो बम पैदा कर देता है । अतः जब हम बुद्धि से प्रेरित होकर काम करेंगे, तभी काम हो सकेगा । विज्ञान-युग में क्षोभ पैदा करने की प्रक्रिया को उत्तरोत्तर कम ही अवकाश रहेगा ।

मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अब हम अपने मतभेदों के अंशों

को अलग रखें और सबमें समानता का जितना अंश हो, उसीका कार्य-क्रम बनायें। इसके बाद भी मतभेद हों, तो उनके बारे में विचार किया जाय। इस तरह हम उसे बुद्धि के क्षेत्र में ले जायँ। बौद्धिक दृष्टि से परिवर्तन करने का प्रयत्न किया जाय। समान अंश का कार्यक्रम बनायें और असमान अंश पर विचार करें। यदि इस तरह करने पर भी किसी प्रश्न का हल न हो पाये, तो उसे वैसा ही पड़ा रहने दें। (१४)

(४) साधना के सोपान

मुझसे पूछा गया है कि "आपकी सूर्योपासना का क्या आधार है? इस उपासना का सम्बन्ध वैदिक-कल्पना से है या वैज्ञानिक संशोधन से?"

मैं आत्मसूर्य का उपासक

यदि व्यक्तिगत रूप में मेरे लिए प्रश्न हो, तो मैंने वैदिक साहित्य का अध्ययन काफी किया है और विज्ञान के प्रति भी विशेष प्रेम रखता हूँ। लेकिन मैं तो सूर्य की उपासना करता ही नहीं। जिस तरह घड़ी सामने रखकर उपासना नहीं हो सकती, उसी तरह उगते हुए सूर्य को आँखों के सामने रखकर उपासना करना चाहें, तो वह भी नहीं हो सकती। वास्तव में मैं जो उपासना करता हूँ, वह आत्मसूर्य की उपासना है। उसके बारे में वेद में एक छोटा-सा मन्त्र है: **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'** याने सूर्य स्थावर-जंगमात्मक जगत् की आत्मा है। आत्मा का नाम सूर्य है। इसलिए सूर्य पर भी आत्मा की भावना की जा सकती है। कुरान के एक वाक्य में विशेष प्रकार की श्रद्धा व्यक्त की गयी है और वही मेरी श्रद्धा है। उसमें लिखा है कि "यदि आप ईश्वर की उपासना करना चाहते हों, तो उसने जिन्हें पैदा किया है, उनकी उपासना न करें। सूर्य या चन्द्र, ये सभी भगवान् ने पैदा किये हैं। इसलिए इनकी उपासना न कर जिसने इन्हें पैदा किया है, उसीकी उपासना करें।" याने कर्ता की उपासना करें, कर्म की नहीं। मैं भी यही मानता हूँ।

सूर्य-दर्शन का महत्त्व

जब सूर्योदय होता है, निःसन्देह उस समय शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि में प्राण-संचार होता है। इसका जिसे अनुभव हो, वह तो इसे स्वीकार कर ही लेगा। लेकिन जिसे अनुभव न हो, वह भी कल्पना से समझ सकता है। इसलिए मुझे तो सूर्योदय का समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ता है।

जब हम जेल में थे, हमारा काफी समय चर्चा में बीतता था। वहाँ बहुतों को आशा-निराशा या अनेक तरह के दुःखों का अनुभव होता था, मुझे वैसा कुछ भी नहीं लगा। एक दिन जेलर ने आकर कहा कि "आपका जीवन बड़ा ही सुखमय दीख रहा है, किसी भी तरह का दुःख मालूम नहीं पड़ता ?" मैंने कहा : "दुःख दीखता तो नहीं, पर है अवश्य। सात दिन विचार कर खोज निकालिये कि आखिर मुझे कौन-सा दुःख हो सकता है ?" सात दिनों के बाद वह पुनः आया और कहने लगा : "मैं तो आपको किसी भी तरह दुःखी नहीं पाता।" मैंने कहा : "सुबह और शाम हमें सूर्य का दर्शन नहीं होता, यही मेरा दुःख है और यह दुःख मिटाने का साधन जेल में नहीं है।"

सूर्य : ईश्वर का प्रतीक

सूर्य-दर्शन बहुत ही उत्साहप्रद है। हम उसके निमित्त से ईश्वर की उपासना करें, तो अच्छा होगा। इस्लाम में रिवाज है कि काबा की ओर मुँह कर उपासना की जाय। काबा हिन्दुस्तान के पश्चिम में है। इसीलिए ये लोग जब उपासना करने बैठते हैं, तो सूर्य की ओर पीठ करके बैठते हैं, जब कि हम लोगों में (पुराने समाज में) सूर्य की ओर मुँह करके प्रार्थना होती थी। मैं किसी साम्प्रदायिक विचार का निषेध नहीं करता, लेकिन मेरा हृदय इसके अनुकूल भी नहीं हो सकता। मुझे सूर्य जैसा दूसरा स्फूर्तिदायक मन्दिर, आश्रम या काबा कोई भी नहीं दीखता।

यह इतना बड़ा और महान् स्फूर्ति का स्थान है । इसलिए इसे ईश्वर का प्रतीक समझकर परमात्मा की उपासना की जाय, तो वह अच्छा होगा ।

सूर्य ही नहीं, ताराओं से भी हृदय का सम्बन्ध

दूसरा प्रश्न यह पूछा गया है कि चिंतन के साथ सूर्य-उपासना का क्या सम्बन्ध है ? इस बारे में मेरी यह धारणा है कि सूर्य और हममें एक सम्बन्ध है । उपनिषद् में भी एक वाक्य आता है कि सूर्य-किरणें नाड़ियों के मार्ग से हृदय में पहुँचती हैं । सूर्य और हृदय के बीच एक राज-मार्ग बना हुआ है और उस रास्ते यहाँ से वहाँ आ-जा सकते हैं । जैसे सूर्य-किरणें हृदय में आ पहुँचती हैं, वैसे ही हृदय भी सूर्य तक पहुँच सकता है । इसका अनुभव मुझे तो होता ही है । मुझे न केवल सूर्य के बारे में ऐसा अनुभव होता है, बल्कि ताराओं के बारे में भी होता है । अभी तक मैं रात में आग्रह-पूर्वक खुले आकाश में सोता रहा हूँ । बरसात के दिनों में कुछ समय के लिए कमरे में भी चला जाता । लेकिन कई बार थोड़ा-बहुत ओढ़कर बाहर ही पड़ा रहता, तो पता ही नहीं चलता था कि वर्षा हो रही है । सुबह उठने पर पता चलता कि ऊपर का ओढ़ना भींग गया है याने गहरी वर्षा हुई होगी । इस तरह रात में आकाश-दर्शन करने पर यह भी अनुभव होता है कि ताराओं और हमारे बीच भी कोई रास्ता बना हुआ है ।

सत्य का स्थान कहाँ ?

तीसरा प्रश्न है : हृदय करुणा और प्रेम का स्थान है, तो सत्य का स्थान कहाँ है ? इस सम्बन्ध में यही समझना चाहिए कि प्रेम और करुणा का आन्तरिक स्थान तो हृदय ही है, लेकिन इनका बाह्य स्थान तो सृष्टि है । उसीका प्रतिबिम्ब हृदय में पड़ता है । इसी तरह सत्य भी सृष्टि में छाया हुआ है और उसका प्रतिबिम्ब हृदय में पड़ता है, जिसमें कि करुणा और प्रेम का भी प्रतिबिम्ब पड़ता है । प्रेम और करुणा की तरह ही सत्य के लिए भी बाहर और भीतर एक ही स्थान

है। बाहर सारा विश्व और भीतर हृदय—सत्य, प्रेम और करुणा के स्थान हैं।

सत्य-मीमांसा

पूछा गया है कि **'सत्येन लभ्यस्तपसा'** इस मन्त्र के विषय में कुछ कहें। पूरा मन्त्र इस प्रकार है :

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
ये पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥
सत्यमेव जयते नानृतम्,
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामाः,
यत् तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

वास्तव में यह एक बहुत ही गम्भीर मंत्र है। यद्यपि यह उपनिषद् का मन्त्र है और वह सूर्योपासना के प्रसंग में नहीं कहा गया है, फिर भी मैं इसका उपयोग सूर्य-चिन्तन में करता हूँ। **एष आत्मा** हृदय में जैसे आत्मा है, वह भी सूर्य है और यह सूर्य भी आत्मा है। जैसे बाहर सूर्य-ज्योति है, वैसे ही भीतर सत्य-ज्योति है। हमारे पूर्वज इन दोनों ज्योतियों की उपासना किया करते थे। एक ओर सूर्य प्रतीक था, तो दूसरी ओर आत्म-प्रतीक ! इस मन्त्र का ऐसा अर्थ कर सूर्योपासना की जाय, तो सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

आत्मा की प्राप्ति के लिए जो चार साधन बताये गये हैं, उनमें सत्य सबसे पहला है और वह बहुत ही महत्त्व का है। एक ओर दुनिया का सारा नीतिशास्त्र रखा जाय और दूसरी ओर सत्य, तो सत्य का ही पलड़ा भारी रहेगा। सत्य सबसे श्रेष्ठ नीति-धर्म है, जब कि अन्य सभी नीति-धर्मन

उसके समक्ष गौण हैं। इसीलिए उसे प्रथम स्थान दिया गया है। खासकर आत्मप्राप्ति के लिए तो सत्य बहुत ही महत्त्व की चीज है। इस सत्य का अर्थ मनसा, वाचा, कर्मणा, त्रिविध सत्य है, केवल वाणी का ही सत्य नहीं। यदि मानव-जीवन सत्य पर अधिष्ठित हो, तो निश्चय ही आत्मा का दर्शन हो जायगा।

दूसरा साधन 'तप' बताया गया है। सत्य को समझने के लिए जो मेहनत पड़ती है, उसे ही तप कहते हैं। खासकर यदि इन्द्रियों को वश में कर लिया जाय, तो उसके द्वारा सत्य तक पहुँचा जा सकता है और वह बहुत सरल हो जाता है। लेकिन यदि इन्द्रियों पर काबू न पाया जाय और हम उनके वश हो जायँ, तो हमारी स्थिति उस घुड़सवार जैसी हो जाती है, जो बैठा तो घोड़े पर है, पर लगाम हाथ में नहीं है। तपस्या में मुख्यतः इन्द्रियों पर काबू पाना ही होता है। इसके बाद सत्य-प्राप्ति के लिए जो प्रयोग करना पड़ता है, वह भी उसके (तप के) अन्तर्गत आ जाता है। मानव में बहुत-सी कल्पनाएँ उठती हैं, अन्दर से स्फुरित होती हैं; किन्तु वे उचित हैं या अनुचित, यह समझने के लिए प्रयोग करने पड़ते हैं और उन प्रयोगों के लिए तकलीफ भी उठानी पड़ती है। वही तप है। इस तरह सत्य का प्रयोग करना और उनके लिए कष्ट उठाना ही तप है।

तीसरा साधन 'सम्यक् ज्ञान' है। वस्तु के स्वरूप का आकलन करने के लिए योग्य बुद्धि अपेक्षित हुआ करती है। 'योग्य बुद्धि' का अर्थ है, अनासक्त बुद्धि, जिसमें पूर्वग्रह न हो। इस तरह पूर्वग्रह-रहित बुद्धि द्वारा ही आत्मा का दर्शन होता है।

चौथा साधन 'ब्रह्मचर्य' बताया गया है। यहाँ ब्रह्मचर्य और तप अलग-अलग बतलाये गये हैं, इसलिए ब्रह्मचर्य से मुख्यतः अध्ययन, चिन्तन, मनन आदि समझ लेना चाहिए। अन्यथा तप का अलग साधन-रूप में निर्देश व्यर्थ हो जायगा, कारण ब्रह्मचर्य में तप आ ही जाता है।

इस तरह विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सत्य एक नैतिक मूलतत्त्व है, उसके साथ ये तीन साधन होने पर भी आत्मा का दर्शन हो सकता है।

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रः। जिस तरह बाहर सूर्यनारायण उदित होता है, उसी तरह अन्दर भी सूर्यनारायण उदित है। जैसे बाहरी सूर्य बाहरी बादलों से ढँक जाता है, तो उसका दर्शन नहीं हो पाता, वैसे ही हृदय पर परदा पड़ जाने से आन्तर ज्योति का भी दर्शन नहीं हो पाता। आन्तर सूर्य अत्यन्त ज्योतिर्मय है। याने जैसे सूर्य स्वयंप्रकाश है, वैसे ही उसमें भी स्वयंप्रकाशता है।

यतयः क्षीणदोषाः। यति याने यत्न करनेवाले संन्यासी। इसका सीधा अर्थ तो 'यत्न करनेवाले' होता है। साधक जब क्षीणदोष होते हैं, तभी आत्मा का दर्शन होता है। जब तक दोष हैं, तभी तक आवरण रहता है। अतः आत्मा के दर्शन के लिए दोष-निरसन एक उत्तम उपाय है। इस तरह चार साधन बताये गये। इनका उपयोग कर यदि दोष क्षीण हो जायँ, तो अन्तरस्थित सूर्य का दर्शन हो सकता है।

सत्यमेव जयते नानृतम्। ये अलग-अलग वाक्य मालूम पड़ते हैं, लेकिन दोनों मिलकर एक ही वाक्य है। एक ओर कहा जाता है कि सत्य की विजय होती है और दूसरी ओर कहा गया है, अनृत याने असत्य की कभी भी विजय नहीं होती। ऊपर जो साधन बताये गये हैं, उनमें सत्य ही प्रधान माना गया है। इसमें भी उसी सत्य पर जोर दिया गया है। देवदर्शन का मार्ग सत्य से फैला हुआ है। 'देवयानः' का अर्थ है, देवता की ओर जाने का मार्ग अर्थात् परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग सत्य से ही बना हुआ है।

येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामाः। जो ऋषि पूर्णतः निष्काम हैं और जिनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो गयी हैं, वे उस आत्मा का दर्शन कर रहे हैं। उनका प्राप्तव्य स्थान सत्य है। वहाँ पहुँचने का मार्ग सत्य है और उस दर्शन से जो प्राप्त होगा, वह भी सत्य है। इस तरह चलने का साधन, चलने का मार्ग और पहुँचने की अन्तिम मंजिल, तीनों

सत्य हैं। सत्य के ही ये तीन अलग-अलग अंग हैं। कुल मिलाकर पूरे मन्त्र का यही अर्थ है।

दोषों के माध्यम से गुणों तक पहुँचें

पूछा गया है कि आप कहते हैं कि दोष गुणों की छाया है, यह कैसे ? इस सम्बन्ध में मेरा मानना है कि गुण और दोषों का पृथक्करण करना सदैव कठिन हुआ करता है। कोई विशेष गुण किसी मानव में हो और वह उसका विकास करे, तो वह एकांगी गुण-विकास होगा। फिर उसके कारण स्वाभाविक ही दोष प्रकट होंगे। मान लीजिये, कोई विरक्त पुरुष आग्रही है, तो कोई विवेकी। विवेकी कुछ ढिलाई रखता है, क्योंकि विवेक में कुछ ढीलापन भी चल जाता है। इस तरह ढिलाई का दोष विवेकी पुरुष में आ ही जाता है। हम लोग रेखाओं से चित्र अंकित करते हैं, तो उससे पहले कागज सफेद ही होता है। अतः रेखाएँ गुण कहलायेंगी और कागज पूर्व-भूमिका। जिस तरह सफेद कागज की पूर्व-भूमिका के बिना रेखाओं का चित्र उभर नहीं सकता, उसी तरह दोष के बिना गुण का प्रकाश नहीं हो सकता। यदि मानव में शुद्ध गुण ही हों, तो वे अप्रकट ही रहेंगे। भगवान् भी शुद्ध गुणमय है, अतएव वह प्रकट नहीं होता—वह अप्रकट ही है। गुणों को प्रकट करने के लिए छायारूपी शरीर की जरूरत हुआ करती है। इसलिए दोष आवश्यक हैं। अतएव दोषों के उपकार ही मानने चाहिए।

मानव में गुणों के साथ दोष भी हुआ ही करते हैं। आत्मा के प्रकाश के लिए शरीर आवश्यक होता है। इसी तरह गुणों के प्रकाश के लिए दोष आवश्यक ही हैं। कोई स्वतन्त्र-प्रकृति बालक हो, तो वह किसीकी आज्ञा नहीं मानता और आज्ञा माननेवाला स्वतन्त्र बुद्धि से विचार नहीं कर पाता। वह श्रद्धावान् होता है, पर बुद्धि से विचार नहीं करता। इस तरह गुण के साथ दोष और दोष में गुण मिला ही हुआ है। उनमें छाया कौन है और रूप कौन, इसका विवेक करना

चाहिए। आत्मा का रूप है गुणमय और दोष है छायारूप। दोषों का अस्तित्व गुणों की शोभा या सौन्दर्य-प्रकाशन करने के लिए ही है।

इस तरह हम चिन्तन करें, तो सृष्टि के प्रति अत्यन्त आदरभाव उत्पन्न होता है। किसीमें कोई भी दोष हो, तो उसके माध्यम से उसके गुणों तक पहुँच पाते हैं। इस प्रकार दोष-दर्शन का गुण-दर्शन के साधन रूप में उपयोग करें, तो दोष मिट जायँगे और गुण में प्रवेश करने का साधन हाथ लग जायगा। यह एक विचित्र बात मैं कह रहा हूँ। मान लीजिये, कोई बहुत प्रेमी है, तो प्रेम के साथ-साथ काम भी उत्पन्न होने की आशंका रहती है। इसी तरह विरक्ति के साथ क्रोध, ज्ञान के साथ आग्रह और भक्ति के साथ मुलायमियत भी होने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गुणों के लिए दोष आवश्यक हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि दोषी गुणों के लिए अपने दोषों का संग्रह किये रहे। उसे ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है, तो वह दोषवान् ही होगा। किन्तु जब हम दूसरों के लिए सोचें, तो उनके दोषों को इसी प्रकार सोचकर माफ कर दें। क्रियाशील व्यक्ति में थोड़ा-बहुत अहंकार रहेगा ही, इसलिए उसे आँखों से ओझल कर देना चाहिए। बापू प्रायः कहा करते थे कि "दुधारू गाय की लात भी खानी चाहिए।" इस तरह यदि उस क्रियाशील पुरुष में अभिमान हो, तो ऐसा सोचना चाहिए कि "यदि उसमें इतना अभिमान न होता, तो इतनी क्रियाशीलता ही न रह पाती। अतः यह जो अहंकार है, वह ठीक ही है, इससे कोई हानि नहीं होती।" अवश्य ही उसके अहंकार को मिटाने का उचित प्रयत्न करना चाहिए, फिर भी यदि वह रह जाय, तो उसे माफ कर देना चाहिए।

साम्यं समाधानम्

साम्ययोग में जीवन-धारणार्थ समता कैसे रखी जाय? इस सम्बन्ध में यह समझना चाहिए कि समता के प्रति विवेक रखना

अत्यावश्यक एवं महत्त्वपूर्ण विषय है। इसका महत्त्व तब और भी बढ़ जाता है, जब कि हम लोग साम्ययोग की बातें करने लगे हैं। बापू भी समता का आग्रह रखते थे। उन्होंने वाइसराय तक को लिख डाला कि "क्या आपको बीस हजार रुपये वेतन लेना शोभा देता है? आपके और जनसाधारण के वेतन में इतनी अधिक विषमता किसी तरह सहन नहीं की जा सकती।"

आजकल विभिन्न देशों के बीच स्थूल तुलना की जाती है। कहा जाता है कि अमुक देश में अधिक-से-अधिक आय और कम-से-कम व्यय में ५ और ४० का अन्तर है। इतना अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। १० का अन्तर तो खप भी सकता है। इस तरह स्थूल रूप से हिसाब लगाने की एक आदत ही बन गयी है। वास्तव में यह अच्छी बात नहीं। मुझे कोई पूछे कि क्या आपको दस प्रतिशत का अन्तर नहीं चल सकता, तो मैं यही कहूँगा कि मुझे जितना अपेक्षित है, उतना मिलना चाहिए, किसीकी अपेक्षा दस अधिक क्यों? इस दस की अधिकता की कल्पना भी गलत है। सृष्टि में इतना अधिक पैदा होना चाहिए कि जिसे जितना अपेक्षित हो, उतना मिलता रहे और दूसरे के पास कुछ पड़ा हो, तो हमें उसकी आवश्यकता ही न पड़े। फिर वह आदमी भी उस अधिक वस्तु को ट्रस्टी के तौर पर अपने पास रखे, उसके मालिक के तौर पर नहीं।

यह एक आर्थिक दृष्टि हुई, लेकिन दूसरी भी एक दृष्टि है। खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने मांसाहार छोड़ दिया, तो वे बहुत ही कमजोर हो गये। अतः उनसे आग्रहपूर्वक कहा गया कि आप मांस ले लें, तो अच्छा हो। किन्तु उन्होंने इनकार कर दिया। फिर उनके लिए अण्डे लाये गये। इस पर बाद में काफी चर्चा हुई। हमारे उन साथियों को, जिन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है, यह बात बड़ी बेतुकी मालूम पड़ी कि हम लोग मांस खाने की बात कैसे कहते हैं? किन्तु इसके पीछे एक सूक्ष्म दृष्टि है। हम लोग अनन्त जन्मों के यात्री हैं। हमारी इस सृष्टि और इस जिन्दगी में इतना अधिक मोह है कि सभी उसके शिकार हो

जाते हैं। लेकिन मैं तो इस मोह का शिकार नहीं हूँ। सोचने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मुझे इन सभी मोहों का अनुभव पूर्वजन्म में हो चुका है, इसलिए इस जन्म में इनके प्रति कोई उत्साह नहीं रह गया है। अतः स्वाभाविक रूप से मैं इससे छूट गया हूँ। दूसरों का यह मोह छूटा नहीं है।

यदि हम सर्वथा समता का आग्रह रखेंगे, तो उसमें लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक सम्भावना रहेगी। सृष्टि की विविधता मिटाकर एकता का अनुभव हो, तो वह अद्वैत का अनुभव नहीं कहा जा सकता। हमारे कार्यकर्ताओं में ही जे० पी० जैसे कितने ही लोग हैं, जिनका जीवन-स्तर औरों की अपेक्षा कुछ ऊँचा है। लोगों को यह अच्छा नहीं लगता और खुद वे लोग आज की अपेक्षा कुछ कम करने का प्रयत्न भी करते रहते हैं, फिर भी वह सध नहीं पाता। अतः दूसरों को समझाना चाहिए कि हममें से अमुक-अमुक को पहले से ही अमुक आदत है। उनकी शारीरिक स्थिति देखते हुए अधिक समता लाने का प्रयत्न करेंगे, तो वह ठीक न होगा। अपने घर में भी हम ऐसा नहीं करते। घर में एक-दूसरे के प्रति प्रेम रहता है, लेकिन सभी के लिए सब कुछ समान होता है, ऐसी बात नहीं। घर में हम सब कुछ समाधानपूर्वक ही किया करते हैं। इसके लिए मैंने एक सूत्र ही बनाया है—**'साम्यं समाधानम्।'** जिसमें सबका समाधान हो, वही साम्य है। घर में छोटे बच्चों के लिए अधिकार नहीं, कर्तव्य ही रहता है। माता-पिता ही प्रधान हुआ करते हैं। फिर जब वे बूढ़े और बच्चे जवान हो जाते हैं, तो पहले के बच्चे ही प्रधान बन जाते हैं और उन्हींकी बुद्धि से घर का सारा काम चलता है। इस तरह कभी पिता प्रधान, तो कभी पुत्र प्रधान होता है। दोनों में प्रेम तो रहता ही है। अतः सृष्टि में प्रेम के कारण जो कुछ करना पड़े, उससे साम्ययोग में किसी तरह की बाधा नहीं आती। यदि हम गणिती साम्ययोग करते जायँगे, तो दुनिया से आनन्द ही मिटा देंगे। (१५)

●

(१) सामाजिक समाधि

साधना व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक

आज विज्ञान आध्यात्मिक चिन्तन की जबर्दस्ती कर रहा है। वह कह रहा है कि पुराने ऋषि व्यक्तिगत साधना करते थे, अब तुम सामूहिक साधना करो। यह विज्ञान तभी तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा, अन्यथा तुम्हारा नाश करेगा। विज्ञान की भूमिका पर जानेवाला ऋषि क्या करता था? 'मैं' और 'मेरा' छोड़ देता था। वह वेदान्त बोलता था : "यह घर मेरा नहीं, यह खेत मेरा नहीं, यह शरीर मेरा नहीं।" इसी तरह अब हम सब लोगों को कहना होगा कि "यह घर, यह सम्पत्ति, यह खेत मेरा नहीं, सबका है।" विज्ञान के जमाने में यह अनिवार्यतः करना ही होगा। आपके सामने दो ही पर्याय हैं—सामूहिक साधना या सर्वनाश। दोनों में से एक चुन लें—या तो आध्यात्मिक साधना कर पृथ्वी पर स्वर्ग उतारें या पृथ्वी के साथ स्वयं और स्वयं के साथ पृथ्वी को लेकर खतम हो जायँ।

सब कुछ नया बनाओ

'सुप्रामेंटल' भूमिका की भाषा दार्शनिक भाषा है, उसे बिलकुल मामूली समझकर आपको और हमें उसका प्रयोग करना होगा। विद्यार्थी और शिक्षकों को विज्ञान की प्रयोगशाला में यह प्रयोग करना होगा। किसान, व्यापारी, सरकार, प्रजा सबको यह प्रयोग करना होगा। इसलिए आपके वे पुराने 'टेक्स्ट-बुक', कहानियाँ, साहित्य सारा आज निकम्मा हो गया है। सारा वाङ्मय छोटे स्तर पर है। वह

अब काम नहीं देगा। इसलिए नया वाङ्मय बनाना होगा। धर्म की फिर से नये सिरे से स्थापना करनी होगी। ऊँचे स्तर पर जाना होगा। पुराना धर्म नहीं चलेगा। "मूर्ति के सामने गये, कपूर जलाया, आरती की, तो हो गये भगवान् प्रसन्न !" यह अब नहीं चलेगा। अब तो सारा मानव-समाज भगवान् की मूर्ति हो गया है, उसकी आरती उतारनी होगी। मानव-देवता को भोग (खाना) मिलता है या नहीं, यह देखना होगा।

नाटक ही वास्तविकता में परिणत होगा

आज सारे मानव-समाज को भगवान् समझकर उसकी पूजा का नाटक करना होगा। पहले हम नाटक करेंगे, तो भी धीरे-धीरे वह पूरी तरह सध जायगा। हमने ग्रामदान का नाटक शुरू किया है। लोग पूछते हैं कि क्या ग्रामदान के गाँव के लोगों ने जमीन की आसक्ति छोड़ दी ? क्या वे इतने वैराग्यवान् बन गये ? क्या वे जितने प्रेम से अपने लड़कों की ओर देखते हैं, उतने ही प्रेम से गाँव के सब लड़कों की ओर देखते हैं ? आखिर एक क्षण में यह सब कैसे हो गया ? हम कहते हैं कि उन्होंने ग्रामदान दिया, याने एक नाटक किया है। विज्ञान का कहना है कि यह नाटक इस जमाने के लिए बहुत जरूरी है। धीरे-धीरे इस नाटक को वही विज्ञान यथार्थ में भी ला देगा। (१६)

ब्रह्म-विद्या सर्व-सुलभ हो

श्रीरामानुजाचार्य की कहानी सभी जानते होंगे। उन्होंने अपने गुरु के मन्त्र को जग-जाहिर करने के लिए खुद नरक भोगना स्वीकार किया और देशभर घूमकर उसका खुला उपदेश दिया। तब हमारे यहाँ ब्रह्म-विद्या गुप्त रखने की धारणा प्रचलित थी। वह गलत थी, यह मैं नहीं कहता। उसमें भी कुछ सार था। ब्रह्म-विद्या बाजार में बेचने के लिए लाने पर उसका कुछ मूल्य नहीं रहेगा, इसलिए उसे गुप्त रखने में ही मिठास है। लेकिन उसे प्रकट करने की मिठास भी निराली

है। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव और एकनाथ ने वही किया। जैसे हिन्दुस्तान में रामानुज ने ब्रह्म-विद्या के दरवाजे खोल दिये, वैसे ही महाराष्ट्र में ज्ञानदेव ने भी ब्रह्म-विद्या को सम्पन्न कर दिया। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव ने जो महान् पराक्रम किया, रामानुज और चैतन्य ने वही देशभर में किया। वे जहाँ-जहाँ गये, ज्ञान ही बाँटते गये। स्त्रियों, नन्हें बच्चों और साधारण जनता—सबको ज्ञान बाँटते गये। इसीलिए ऐसी आम भावना है कि चैतन्य भगवान् कृष्ण के अवतार हैं, क्योंकि उनमें प्रेम साकार उतरा हुआ था। मैं कहना यह चाहता हूँ कि यह जो प्रेम का धर्म सन्तों ने हमें दिखलाया, हमें अब उसे ही आगे बढ़ाना है। यह उस काल में जिन मर्यादाओं से बँध गया था, वे आज नहीं रहीं। इसीलिए आज हम दो कदम आगे बढ़ सकेंगे—सन्तों द्वारा सिखलाये ज्ञान को पहचानेंगे, उसे नया रूप देंगे और सारी दुनिया के सामने रखेंगे। यह इच्छा इस युग के अनुरूप ही है। अब वैदिक धर्म को नया रूप प्राप्त होनेवाला है।

भक्ति सर्वोदय में रूपान्तरित होगी

अब भक्ति का रूपान्तर सर्वोदय में होगा। **'समं सर्वेषु भूतेषु'** इस भक्ति को अब 'परा भक्ति' नहीं रखना है, 'सामान्या भक्ति' बनाना है। पहले किसी एक को ही समाधि में यह अनुभव होता था कि "भूतमात्र मेरे सखा हैं, सारे भेद मिथ्या हैं, ये मिटने चाहिए।" किन्तु आज यही अनुभव सबको होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, आज सामाजिक समाधि सधनी चाहिए। परमात्मा मेरे मुंह से बहुत बड़ी बातें कहलवा रहा है। तीन साल पहले बंगाल की यात्रा में मैं एक ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ रामकृष्ण परमहंस को पहली समाधि लगी थी। तालाब के किनारे उसी जगह बैठकर मैंने कहा था कि "रामकृष्ण को जो समाधि लगी थी, उसे अब हमें सामाजिक बनाना है।" यह भी ज्ञानदेव ने कह दिया है : **'बुद्धि-चे वैभव अन्य नाहिं दूजे।'** इस एकत्व का अनुभव सबको होना चाहिए।

साम्ययोग : पहले शिखर, अब नींव

विज्ञान के युग में साम्ययोग भी सिर्फ समाधि में अनुभव करने की चीज नहीं रही, बल्कि सारे समाज में अनुभव करने की बात बन गयी है। साम्ययोग पहले 'शिखर' था, पर अब 'नींव' बन गया है। अब हमें साम्ययोग के आधार पर अपना जीवन खड़ा करना होगा। यही विज्ञान-युग की माँग और आवश्यकता है। इसीलिए आज हम जैसे साधारण लोगों को भी ऐसे काम करने की प्रेरणा हो रही है।

सर्वश्रेष्ठ भक्त का लक्षण : पूर्ण निर्भयता

भक्ति का मूल मन्त्र देनेवाला प्रह्लाद है। नारद उसका गुरु है, फिर भी महाभक्तों की सूची में प्रह्लाद का नाम पहले आता है और नारद का सबके बाद। जब भयानक रूप धारण कर नरसिंहावतार प्रकट हुआ, तो भगवान् की चिर-परिचित लक्ष्मी घबरा उठी; नारद की जो वीणा क्षणभर रुकती नहीं थी, वह रुक गयी और वह भी घबरा उठा। फिर भी प्रह्लाद निर्भयता के साथ नरसिंह रूप के सामने खड़ा होकर कहने लगा : **'नाहं बिभेमि'**—मैं तुमसे नहीं डरता। उसने भगवान् के रूप के समक्ष यह जो निर्भयता दिखलायी, उसी कारण वह सर्वश्रेष्ठ भक्त माना गया। दुष्ट रूप के सामने बहुतों ने निर्भयता दिखलायी थी। व्याध वाल्मीकि के सामने नारद थोड़े ही डिगनेवाला था, लेकिन भगवान् के रूप के सामने तो वह भी क्षणभर घबरा ही गया। इसीलिए निर्भयता की कसौटी पर प्रह्लाद पहला खरा उतरा।

इसके बाद प्रह्लाद ने भगवान् से वर माँगा :

> **'प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामाः।**
> **मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः॥**
> **नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्षुरेकः।**
> **..॥'**

उसने कहा : "प्रभो ! अपनी मुक्ति की कामना करनेवाले देव और मुनि अब तक काफी हो चुके हैं, जो जंगल में जाकर मौन साधना किया करते थे; किन्तु उनमें परार्थनिष्ठा नहीं थी। लेकिन मैं अकेला इन सब कृपणजनों को छोड़ मुक्त होना नहीं चाहता।" कितनी कड़ी आलोचना प्रह्लाद ने की—उन मुनियों के पीछे स्वार्थ लगा हुआ था, परार्थ नहीं। "मैं अकेला मुक्त होना नहीं चाहता !" संस्कृत-साहित्य का यह सर्वश्रेष्ठ उद्‌गार है। इस कहने में कितना अधिक कवि-हृदय उँड़ेल दिया गया है।

'मेरा' मिटने पर ही मोक्ष

वास्तव में मोक्ष अकेले पाने की वस्तु नहीं है। जो समझता है कि मोक्ष अकेले हथियाने की वस्तु है, वह उसके हाथ से निकल जाता है। 'मैं' के आते ही 'मोक्ष' भाग जाता है। 'मेरा मोक्ष' यह वाक्य ही व्याहत है, गलत है। 'मेरा' मिटने पर ही मोक्ष मिलता है। यह विषय हम सबके लिए चिंतन और आचरण करने के लिए भी है। मुख्य बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि अब से हमें अपना जीवन बदलना होगा। इसे दृष्टि में रखते हुए जीवन के आर्थिक, सामाजिक आदि नाना भेदों को हम नष्ट कर दें। (१७)

(२) सामूहिक साधना

आज तक विचारमात्र का उद्देश्य यह माना गया था कि हम मुक्त हो जायँ। बाद में भक्तों ने उसमें संशोधन किया और कहा कि देह-मुक्ति ही कोई मुक्ति नहीं है, अहंकार-मुक्ति ही मुक्ति है। इसलिए अहंकार छोड़कर भगवान् की भक्ति में लीन होने में ही हमारी मुक्ति है। हम और कोई मुक्ति नहीं चाहते। इस प्रकार भक्तिमार्गी लोगों ने मध्य-युग में मुक्ति की कल्पना में संशोधन किया। फिर चाहे वे

तुलसीदास हों, चैतन्य महाप्रभु हों, शंकर देव हों या तुकाराम—इन सबने यह बात बतायी।

मुक्ति बनाम भक्ति

वस्तुतः इसका आरम्भ प्रह्लाद ने किया था। भागवत में प्रह्लाद का वचन है कि मैं मुक्ति नहीं चाहता। देव और मुनि स्व-विमुक्तिकाम होते हैं, वे अपनी मुक्ति की कामना करते हैं। इसलिए जंगल में जाकर साधना भी करते हैं। लेकिन मैं इन दीन जनों को यहीं छोड़कर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता—इस प्रकार की भाषा प्रह्लाद ने प्रयुक्त की है। भागवत के सप्तम स्कन्ध में यह आता है :

प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामाः।
मौनं चरन्ति विजने, न परार्थनिष्ठाः॥
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्षुरेकः।

(वे मौन रखते हैं, विजन में रहते है, परार्थनिष्ठ नहीं रहते। देव और मुनि लोग प्रायः स्व-विमुक्तिकाम होते हैं, परन्तु मैं अकेला मुक्त होना नहीं चाहता।) यह बात सब भक्तों ने उठा ली और कहा कि हम जनता की सेवा करेंगे, हम भक्ति का प्रचार करेंगे। यही भाषा रामकृष्ण के शिष्यों ने प्रयुक्त की है। **'आत्मनो हिताय, जगतः सुखाय च'**—अपनी आत्मा के हित के लिए और जनता के सुख के लिए—ये दो शब्द ध्यान में रखने योग्य हैं। उन्होंने अपने सुख की बात नहीं की; अपने हित और जग के सुख की बात की है।

हित और सुख का विवेक

इसमें एक द्वैत रह जाता है कि हम अपना हित सोचने के साथ जनता के सुख का भी विचार करेंगे। अगर अपना हित सोचेंगे, तो जनता का हित क्यों नहीं सोचेंगे? इसलिए कि किसीकी इच्छा के विरुद्ध हम उस पर हित लाद नहीं सकते। मैं मानता हूँ कि वैराग्य में हित है, लेकिन सामने-

वाला ऐसा नहीं मानता। वह किसी बीमारी में से तो मुक्त होना चाहता है, पर वैराग्य नहीं चाहता। वह 'हितकाम' नहीं है, 'सुखकाम' है। ऐसी परिस्थिति में मैं अपना वैराग्य उस पर लादूँ तो यह जुल्म होगा, इसमें हिंसा होगी और मेरा अहंकार भी होगा कि मैं किसीको वैराग्य सिखानेवाला हूँ। मैं अगर वैराग्य को अच्छा मानता हूँ, तो मैं अपने लिए साधना करूँ; लेकिन दूसरा दुःख-मुक्ति चाहता है, तो उसमें मुझे मदद करनी होगी। यह साधक की मर्यादा है। वह अपना हित सोचेगा, लेकिन दुनिया के सुख की चिन्ता करेगा। भक्तों ने कहा कि हम मुक्ति छोड़कर भक्ति में लग जायँगे, वही जनता को सिखायेंगे और जनता के लिए जीयेंगे। ये लोग कहते हैं कि हम 'आत्मनो हिताय' की प्रवृत्ति करेंगे, जिसमें जगत् के सुख की कल्पना होगी।

एक बार मुक्ति छोड़कर भक्ति में आ गये और फिर जनताभिमुख हो गये। इसलिए अब जनता पर भक्ति न लादकर उसकी सेवा करना चाहते हैं, उसका दुःख-निवारण करना चाहते हैं। इसलिए रामकृष्ण मिशन ज्यादातर लोगों के दुःख-निवारण-हेतु अस्पताल वगैरह चलाते हैं। उन्होंने मुक्ति का ख्याल नहीं छोड़ दिया है, लेकिन 'आत्मनो हिताय' भक्ति माना और लोगों के सुख के लिए सेवा माना।

सामाजिक समाधि

आज हम जिस भक्ति की चर्चा कर रहे हैं, इसमें द्वैत नहीं है। जनता का सुख और हमारा हित ऐसा भेद नहीं है। हम अपने लिए जो समाधि चाहते हैं, वही समाधि जनता को प्राप्त होनी चाहिए। इसलिए हमने एक विलक्षण शब्द का प्रयोग किया है—सामाजिक समाधि।

यह सामाजिक समाधि क्या है? जब तक मनुष्य अपने चित्त में फँसा रहता है, तब तक वह दूसरे को अपने से अलग ही रखता है। क्योंकि हरएक का अपना-अपना चित्त है। दुनिया में तीन सौ करोड़ चित्त हैं। अगर हम इस चित्त की भूमिका पर काम करेंगे (फिर वह चाहे

समाज के हित का विचार हो या अपने चित्त का), तो वह कुल मिलाकर मन का विचार, वासनाओं का विचार होगा। जब तक हम इस भूमिका पर काम करेंगे, तब तक मनुष्य का समाधान नहीं होगा।

विकास-परम्परा

अब आनेवाला युग विज्ञान का है। उपनिषदों ने समझाया है कि **अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्; प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्; मनो ब्रह्मेति व्यजानात्**; और इसके बाद कहा है—**विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्**। इसमें उपनिषदों ने एक इतिहास बताया है। पहले अन्न ब्रह्म था; फिर प्राण ब्रह्म था; उसके बाद मन ब्रह्म था। इसके भी आगे विज्ञान ब्रह्म था। विज्ञान-युग में व्यक्तिगत या सामाजिक मन का विचार नहीं होगा। उसमें मन का छेद (नाश) हो जायगा। लोग अगर मन की भूमिका में सोचते रहेंगे, तो मन के साथ मन की टक्कर होगी और अन्योन्य विरोध रहेगा, फिर वह मन चाहे जाति का हो, भाषा का हो, उपासना-पंथों का हो, धर्म का हो या राष्ट्र का हो। जब तक हम मन की भूमिका से ऊपर नहीं उठेंगे, तब तक विज्ञान के लायक नहीं बन सकेंगे। परन्तु आज हालत यह है कि चाहे हम लायक बनें या न बनें; विज्ञान आ चुका है और अभी तक हम भी भूमिका से ऊपर उठे नहीं हैं। मन की उपाधि में हम फँसे हुए हैं। विज्ञान-युग में यह सब हमें छोड़ना पड़ेगा। प्रार्थना अरबी में करें या संस्कृत में, आशीर्वाद संस्कृत में दें या बंगला में—इस प्रकार के जो नाना भाव हैं, ये मन के साथ जुड़े हुए हैं।

पुराना मन, नया मन

इसमें कोई शक नहीं कि पण्डित मदनमोहन मालवीय बहुत बड़े महापुरुष थे, परन्तु वे जब इंग्लैण्ड गये, तब अपने साथ भारत की कुछ मिट्टी और गंगाजल ले गये। यहाँ की मिट्टी पवित्र है, गंगाजल पावन है आदि बातें मन बोलता है। लेकिन यह मन पुराना है। हमने देखा है कि गंगा के पानी से भी हैजा होता है। लोग जो कहते हैं कि काशी में

मृत्यु होने से मुक्ति मिलेगी; भले ही यह भावना पवित्र हो, लेकिन यह बोलनेवाला मन भी पुराना है। विज्ञान के सामने यह मन नहीं टिकेगा। आज सबको विज्ञान की भूमिका में आरूढ़ होना ही होगा। उपनिषद् ने समाज का ऐतिहासिक विकास-क्रम दिखाते हुए यही कहा कि प्रारम्भ में सारा मानव-विकास अन्नमय भूमिका में रहा; फिर प्राण-भूमिका में आया; जानवरों से अपनी रक्षा करनी थी, इसलिए प्राणमय भूमिका में आना पड़ा था। और बाद में समाज मानसिक भूमिका में आ गया। अब उसके आगे विज्ञान की भूमिका में आ रहा है।

चित्त का समत्व

आज एक ओर जहाँ मनुष्य के मन एक-दूसरे से टकरा रहे हैं, वहाँ इधर-उधर विज्ञान का उदय भी हो चुका है। इस स्थिति में मनुष्य पर विज्ञान का आक्रमण होने लगा है। जब तक मनुष्य मन से मुक्त होकर, मन से ऊपर उठकर हर चीज के बारे में सोचने नहीं लगेगा, तब तक वह टिक नहीं सकेगा। आज मनुष्य के सामने प्रश्न है कि वह समत्व-बुद्धि से सोचेगा या नहीं। अब हम मन के मुताबिक सोचते नहीं रह सकते। यह गा नहीं सकते कि **'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा'**। सारे संसार में हमें भारत अच्छा लगता है, क्योंकि वह हमारा है—ये सब छोटे अभिमान अब हमें छोड़ने होंगे। दवा कितनी भी कड़वी क्यों न लगती हो, तो भी उसे लेना ही पड़ेगा; क्योंकि यह विज्ञान है। अब मेरी व्यक्तिगत समाधि और आपकी आधि, व्याधि, उपाधि नहीं चलेगी। अब तो सामाजिक समाधि चाहिए। समाधि का अर्थ है समत्वयुक्त चित्त। जिस चित्त में विकार का स्पर्श नहीं, अहंता-ममता नहीं, संकुचित भाव नहीं, इस प्रकार जो विज्ञानमय चित्त होगा; उसका नाम है समाधि। सारा समाज ऐसी समाधि पाये अथवा नष्ट हो जाय—ऐसा सवाल आज विज्ञान ने उपस्थित किया है। (१८)

(१) विज्ञान की माँग

विज्ञान क्या है ?

विज्ञान वह है, जो सृष्टि में, प्रकृति में जो कर्म चलते हैं, उनके कानून का शोध करता है। पानी, हवा आदि पदार्थों के क्या-क्या धर्म हैं, ये किस तरह काम करते हैं, उनका नियम या व्यवस्था क्या है—इत्यादि बातों की चर्चा करता है। (१९)

ज्ञान अर्थात् बुद्धि से जानना; विज्ञान अर्थात् जीवन में अनुभव करना। ज्ञान के अनन्तर उस ज्ञान को आचरण से, कृति से आत्मसात् कर लेने पर उसीका विज्ञान होता है। ज्ञाता + कर्ता = विज्ञाता। (२०)

तत्त्वज्ञान विज्ञान से भिन्न है। तत्त्वज्ञानी वे हैं, जो सृष्टि-रचना की चर्चा करते हैं। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, इनका स्वरूप क्या है, सृष्टि की रचना कैसी है, इन सबका परस्पर सम्बन्ध क्या है, ईश्वर और जीव का क्या स्वरूप है—ये सारी चर्चाएँ तत्त्वज्ञान करता है। (२१)

'क्यों' को तत्त्वज्ञान हल करता है और 'कैसे' का उत्तर विज्ञान देता है। (२२)

मानव और अन्य प्राणियों में अन्तर

मानव एक प्राणी है, किन्तु उसमें और अन्य प्राणियों में आज तक कुछ-न-कुछ फर्क रहा है। आखिर वह फर्क क्या है ?

दूसरे प्राणी प्राण-प्रधान हैं, जब कि मानव मनःप्रधान। वैसे मानव में प्राण हैं और मन भी, किन्तु प्रधान मन ही है। प्राणी हलचल करता है,

तो खूब जोर से दौड़ता है। वह हमला करेगा, तो भी जोर से। उस हमले में मन नहीं, प्राण-प्रधान है। एक कुत्ता दूसरे कुत्ते पर प्रेम से टूट पड़ता है और द्वेष से भी। प्रेम से टूट पड़े, तो सहजभाव से पड़ता है। उसकी प्रेरणा प्राण-प्रेरणा है। प्राणी उछलता-कूदता, हमला करता या टूट पड़ता है—यह सारी प्राण-प्रक्रिया है। इन कार्यों में उसे चोट आने पर भी उसकी परवाह नहीं करता।

बच्चे भी इसी तरह करते हैं। बचपन में खेलते-खेलते पत्थर फेंक देते हैं। खास किसी चीज पर नहीं फेंकते। फेंकने की वृत्ति हुई, इसलिए फेंक देते हैं। उनका खेल एक प्राण-वृत्ति है। लेकिन उसका पत्थर किसीको लगता और खून बहता है, तो वह एक घटना हो जाती है। उसका मानसिक असर भी होता है, क्योंकि बच्चे को भी मन होता है। इस तरह स्पष्ट है कि हमें भी प्राण की प्रेरणा होती है, परन्तु वह प्राण-प्रधान नहीं, मनःप्रधान होती है। छोटे-छोटे जन्तु देखते हैं, तरह-तरह की क्रियाएँ, हलचल करते हैं। उनमें सूक्ष्म मन नहीं होता, ऐसी बात नहीं। फिर भी मुख्य वस्तु प्राण है और मनुष्य में मुख्य वस्तु मन है। भावना, वासना, कामना, प्रेरणा, आशा, निराशा आदि की जो प्रक्रियाएँ हैं, वे सारी मानसिक वृत्तियाँ मनुष्य में काम करती हैं। डर, हिम्मत, अभिमान, मानापमान, प्रेम, आसक्ति, द्वेष, तिरस्कार, नफरत ये सब मानव की मनोवृत्तियों का खेल है।

विज्ञान मानसशास्त्र नहीं जानता

इस तरह प्राणी की प्राणभूमिका है और मानव की मनोभूमिका। किन्तु अब विज्ञान मानव से कहता है कि तुम्हारी मनोभूमिका नहीं चलेगी। अब तुम्हें विज्ञान-भूमिका पर आना होगा। याने जिसे हम मानसशास्त्र कहते हैं, वह सारा-का-सारा बिलकुल निकम्मा हो जायगा। विज्ञान मानसशास्त्र को नहीं पहचानता। ऊपर से एटम बम गिरता है। वह सोचता ही नहीं कि नीचे जो मनुष्य हैं, उनमें कौन गुनहगार हैं और

कौन निर्दोष । एटम बम गिरेगा, तो मानव, पशु, सब खतम हो जायँगे । मानवों में भी अच्छे-बुरे का कोई फर्क न किया जायगा । बाढ़ आने पर नदी महापुरुष, अल्पपुरुष, जानवर या लकड़ी, जो भी सामने हो, सब बहाकर ले जाती है । जैसे नदी मानसशास्त्र से परे है, वैसे ही विज्ञान मानसशास्त्र से परे है ।

आज के मानव की वैज्ञानिक प्रगति

जिस अणु से यह सारी दुनिया, सारी सृष्टि बनी है, वही सारी शक्ति आज मनुष्य के हाथ में आ गयी है । जिस अणु-शक्ति के बिखरने से दुनिया का लय हो सकता है, वह शक्ति मनुष्य के हाथ आ गयी है । अणु के साथ अणु जुड़ जाने से सृष्टि बनती है और सारे अणु अलग-अलग होने पर सृष्टि का प्रलय होता है । इस तरह सृष्ट्युत्पादक और सृष्टि-संहारक अणु-शक्ति आज मनुष्य के हाथ आयी है ।

इतना ही नहीं, मानव ने आसमान में नये उपग्रह फेंके हैं, जो पृथ्वी के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं । यह एक अजीब बात है । याने इसके आगे केवल अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तन से नहीं चलेगा । अन्तर्गोलीय चिन्तन, अन्तर्जागतिक चिन्तन की जरूरत पड़ेगी । अगर मनुष्य मानसिक भूमिका पर रहकर यह सारा करेगा, तो कैसे चलेगा ? मान लीजिये, मुझे किसीके प्रति प्रेम है और किसीके प्रति द्वेष । हम तीनों एक ही बाढ़ में बह रहे हैं । तीनों तैरना नहीं जानते, तो यह भी डूबनेवाला है, वह भी और मैं भी । प्रेम भी डूबनेवाला है और द्वेष भी । इसलिए जहाँ आप बाढ़ में बहते हैं, वहाँ न प्रेम आपके काम में आयेगा और न द्वेष । इस तरह आज जो मानव के हाथ में शक्ति आयी है, उसमें बाढ़ आ गयी है । वह है सृष्टि की शक्ति । उस सृष्टि की शक्ति में आपका मन काम नहीं करेगा ।

हमारी अर्हता

आज आप उस हैसियत में आ गये हैं, जिस हैसियत में स्वयं भगवान् हैं । आखिर सृष्टि की उत्पत्ति और लय कौन करता है ? भगवान् ही

न ? आज तो सृष्टि की उत्पत्ति और लय मनुष्य भी कर सकता है। मनुष्य एक छोटा-सा भगवान् ही बन गया है। अब भगवान् मन से काम नहीं करेगा, मन के ऊपर रहेगा। राग, द्वेष, आसक्ति आदि मन में ही रहते हैं। अगर उसके अन्दर हमारा यह छोटा-सा मन रहा, तो बड़ी हानि होगी। भगवान् अगर मनुष्य के मन से काम करेगा, तो बड़ी भयानक बात होगी। अगर मनुष्य में गधे का मन काम करे, याने मनुष्य-शक्ति के साथ गधे का मन हो, तो क्या हालत होगी ?

विज्ञान के कारण मनुष्य के राग-द्वेष के परिणाम अत्यन्त तीव्र हो सकते हैं। इसीलिए मनुष्य जब राग-द्वेषरहित होगा, तभी वह विज्ञान-शक्ति उसके काम आयेगी, जो आज उसके हाथ लगी है। इसलिए आज के मानव की समस्या उसके मानसशास्त्र में थोड़ा-सा फर्क करने की नहीं, पुराना सारा मानसशास्त्र खतम करने की है। पुराने मानसशास्त्र के बीस अध्याय हों, तो उसमें इक्कीसवाँ अध्याय जोड़ देने से काम न चलेगा। पुराने मानसशास्त्र के सभी ग्रन्थों की होली जलानी होगी। पुराना सारा जीवन—राग-द्वेष, मानापमान, रीति-रिवाज, प्रथाएँ सब कुछ पटक देना पड़ेगा।

विज्ञान पहले से ही मन से ऊपर

विज्ञान की भूमिका मन के ऊपर की भूमिका है। विज्ञान आपको अपनी इसी भूमिका से ऊँचा उठने को मजबूर कर रहा है। पहले के जमाने में भी यह मालूम था कि विज्ञान की भूमिका मन से ऊपर की भूमिका है। उपनिषदों में कहा गया है : **'प्राणो ब्रह्मेति'**। फिर कहा है : **'मनो ब्रह्मेति'**। उसके बाद **'विज्ञानं ब्रह्मेति'**। प्राण की भूमिका प्राणियों की है, मन की भूमिका मनुष्यों की और विज्ञान की भूमिका ऋषियों की है। इस तरह उस जमाने में विज्ञान की भूमिका मालूम तो थी, किन्तु उसकी मानव पर जबर्दस्ती नहीं थी। वैयक्तिक विकास के तौर पर कोई मनुष्य अपना विकास करते-करते विज्ञान की भूमिका पर पहुँच जाता था। लेकिन वह सारा व्यक्तिगत विकास का विचार था।

अब कोई महापुरुष ऐच्छिक तौर पर विज्ञान की भूमिका प्राप्त करे, यह इस जमाने में नहीं चलेगा। बल्कि अनिवार्यतः सभी लोगों को विज्ञान की भूमिका पर आने का नाटक रचना होगा। मैं झूठा मनुष्य हूँ, लेकिन नाटक में मुझे हरिश्चन्द्र का पार्ट मिला है। मैं वहाँ अपना झूठ याद करूँ, तो हरिश्चन्द्र की भूमिका कैसे निभेगी? जैसे हरिश्चन्द्र की भूमिका अभिनीत करने के लिए अपना झूठ भूलना पड़ता है, वैसे ही विज्ञान-युग में हम सब लोगों को अपनी मनोभूमिकाएँ भूल जानी होंगी। अतः आज के युग में हमें विज्ञान की भूमिका पर जबर्दस्ती जाना पड़ेगा। (२३)

(२) विज्ञान-युग के तीन कर्तव्य

पूछा जाता है कि अगर विज्ञान बढ़ता ही रहा, तो क्या उससे दुनिया का भला होगा? विज्ञान जिस तरह बढ़ता रहा है, उसी तरह बढ़ता रहे, क्या यह उचित है?

विज्ञान की उन्नति का यत्न प्राचीनतम

विज्ञान इन्हीं दिनों बढ़ रहा है, ऐसी बात नहीं। मनुष्य जब से पैदा हुआ, तभी से विज्ञान के लिए प्रयत्न करता आया है। रेडियो प्रकट हुआ, तो हमें लगा कि यह बड़ी भारी खोज हुई, विज्ञान आगे बढ़ा। लेकिन इससे भी बड़ी-बड़ी उन्नति विज्ञान ने पहले के जमाने में की हैं। पुराने जमाने में लोगों ने जो प्रयोग किये, उन्हींके आधार पर आज का विज्ञान चल रहा है। अग्नि पैदा करना पहले के लोग नहीं जानते थे। उसके बाद जब अग्नि की खोज हुई, तो जीवन में कितना फर्क करना पड़ा होगा? अब जरा सोचिये कि आपके घर में जो अग्नि है, वह दस-पाँच दिन प्राप्त न हो, तो आपकी क्या हालत होगी? सबसे पहले तो हम लोगों के घरों की रसोई ही बन्द हो जायगी। फिर ठंढ से ठिठुरने लगेंगे। अग्नि के आधार पर कितनी ही वनस्पतियों की दवाएँ बनती हैं, वे कैसे बनेंगी?

इसके भी पहले एक जमाना ऐसा था, जब कि केवल पत्थरों से ही लोग अपने औजार बनाते थे। उनके पास लोहा नहीं था। उसके बाद जब लोहे की खोज हुई, तो जीवन में कितना परिवर्तन हुआ होगा ? जरा सोचिये, अगर दस दिन के लिए लोहे का बहिष्कार कर दें, तो क्या-क्या परिवर्तन होंगे ? पेन्सिल छीलने के लिए चाकू नहीं मिलेगा, कपड़े सीने के लिए सूई न मिलेगी, काटने के लिए कैंची नहीं मिलेगी, किसान को हल के लिए फाल नहीं मिलेगा और खोदने के लिए कुदाली नहीं मिलेगी, फावड़ा नहीं मिलेगा। किस तरह आपका काम चलेगा ? ये जो नये-नये औजार बनते हैं, वे भी लोहे के आधार पर बनते हैं। लकड़ी का काम बनता है, लेकिन छीलने का काम बिना लोहे के नहीं बनता। इसलिए लोहा जब हासिल हुआ होगा, तो लोगों के जीवन में कितना परिवर्तन हुआ होगा !

पहले लोग गाय का दूध निकालना नहीं जानते थे। शिकार करके प्राणियों को खाते थे। लेकिन जिस किसीको यह अक्ल सूझी कि गाय पर हम प्यार कर सकते हैं, उसे कुछ खिला सकते हैं और उसके स्तनों से दूध ले सकते हैं, उसने कितना भारी शोध किया होगा ? मतलब यह कि खेती की खोज, गो-रक्षा की खोज, अग्नि की खोज, कपास से कपड़ा बनाने की खोज—कितनी ही खोजें पहले की गयीं।

विज्ञान की महत्ता

पहले भाषा की शक्ति का आविष्कार हुआ। उसके बाद हम आज एटम तक पहुँच गये हैं। अणुशक्ति से भी कई प्रकार के कारखाने चलेंगे। विकेन्द्रित उद्योग भी गाँव-गाँव चलाये जा सकेंगे। इस तरह विज्ञान प्राचीन काल से आज तक लगातार बढ़ता आया है, बढ़ेगा और बढ़ना चाहिए; उससे मानव-जीवन में सुन्दरता आयेगी। मनुष्य को सृष्टि का जितना ज्ञान होगा, उतना ही वह सृष्टि का रूप अच्छी तरह समझकर उसकी शक्ति का उपयोग कर सकेगा। मैं यह चश्मा लगाये हूँ।

यदि यह चश्मा न होता, तो मेरे सामने जो लोग हैं, उन्हें मैं देख भी न पाता—इतना अन्धा हो गया हूँ। इस तरह विज्ञान का उपयोग स्पष्ट है।

आज विज्ञान बिक रहा है

लेकिन आज विज्ञान बिक रहा है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक विनाशक शस्त्रास्त्र बनाने को महत्त्व देते हैं। ये इतने अक्लवाले होने पर भी पैसे से खरीदे जा सकते हैं। इन्हें पैसा मिलने पर जिस प्रकार की खोज करने की आज्ञा दी जाय, उसी प्रकार की खोज ये कर देंगे, फिर उससे चाहे दुनिया खतम हो जाय, चाहे दुनिया का भला हो। अगर वैज्ञानिक इतना प्रण करें कि किसीके पैसे से वे खरीदे न जायँगे और ध्वंसात्मक शस्त्रास्त्र बनाने में हरगिज योग न देंगे, संहार के काम की कोई भी शोध-खोज न करेंगे, तो दुनिया बच जायगी। लेकिन वैज्ञानिकों में यह अक्ल तब तक नहीं आयेगी, जब तक सारा समाज इस तरह के विचार नहीं अपनायेगा। संहार के लिए शोध करने की वृत्ति को लोग जब घृणा की दृष्टि से देखेंगे, तभी वह बन्द होगा।

विज्ञान से अहिंसा का गठबन्धन हो

यदि विज्ञान बढ़ता जायगा और उसे हम बढ़ने देना चाहते हैं, तो उसके साथ अहिंसा को भी रखना चाहिए। तभी दुनिया का भला होगा। विज्ञान और अहिंसा दोनों का योग होगा, तो दुनिया में—'जमीन पर स्वर्ग उतर आयेगा।' लेकिन अगर विज्ञान और हिंसा की जोड़ी बन गयी, उनकी शादी, गठबन्धन हो गया, तो दुनिया बरबाद हो जायगी। हम अहिंसा पर इतना ज्यादा जोर इसलिए देते हैं कि विज्ञान बढ़े। अगर विज्ञान को बढ़ाना है, तो उसके साथ उसकी रक्षा के लिए अहिंसा की जरूरत रहेगी ही। अगर आप हिंसा को कायम रखना चाहते हैं, तो विज्ञान को नहीं बढ़ाना चाहिए। पहले के जमाने की हिंसा अलग तरह की थी। भीम और जरासन्ध की कुश्ती हुई। जो मरनेवाला था, मर गया, जो

बचनेवाला था, बच गया । दुनिया को विशेष हानि नहीं हुई । अगर हिंसा कायम रखना चाहते हैं, तो लाठी से लड़ें, हाथ से लड़ें, बन्दूक की खोज क्यों करना चाहते हैं ?

हिंसा से विज्ञान का खातमा

अगर विज्ञान को सीमित बनाते हैं, तो हिंसा के बने रहने पर भी ज्यादा नुकसान न होगा । लेकिन विज्ञान को बढ़ाना चाहते हों, तो उसके साथ अहिंसा रखने पर ही दुनिया बचेगी । अहिंसा को विज्ञान के साथ रखने के मानी है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच की जो समस्याएँ हैं, उन्हें हल करने में शस्त्रास्त्रों का उपयोग न किया जाय । वे समस्याएँ अहिंसा से हल की जायँ । फिर वैज्ञानिक को यह काम दिया जायगा कि भाई, ऑपरेशन के वास्ते जो शस्त्र बनाने हैं, वे बनाओ; लेकिन मार-काट के वास्ते शस्त्र मत बनाओ । इस तरह सारे-के-सारे मसले, जो मनुष्य के जीवन में पैदा हुए हैं, हम अहिंसा से ही हल करें और विज्ञान खूब बढ़े, तो इसमें हमारा लाभ ही है । इसीलिए हम बार-बार कहते हैं कि विज्ञान और हिंसा एक-दूसरे के खिलाफ हैं । ये दोनों साथ-साथ नहीं टिक सकते । अगर विज्ञान रहना चाहता है, तो उसे हिंसा को खतम करना होगा, तभी वह टिकेगा । अगर विज्ञान और हिंसा, दोनों साथ-साथ रहते हैं, तो मनुष्य और उसका विज्ञान ही खतम हो जायगा । (२४)

व्यवहार में विज्ञान

कुछ लोग समझते हैं कि आटा हाथ-चक्की पर पीसने के बजाय एक छोटी-सी मिल खड़ी कर दें, उसमें बिजली का उपयोग करने लगें, तो शायद यह माना जायगा कि हमने विज्ञान का उपयोग कर लिया । लेकिन ऐसी बात नहीं है । यह तो यंत्र-विद्या (टेक्नालॉजी) की बात हो गयी । किसी भी यंत्र का उपयोग परिस्थिति के अनुसार होता है ।

विज्ञान में बाह्य वस्तु की ओर देखने का दृष्टिकोण मुख्य है । विज्ञान

की विशेषता उसकी वैज्ञानिकता और शास्त्रीय दृष्टि में है। हमारा दृष्टिकोण जब वैज्ञानिक (साइंटिफिक) और शास्त्रीय होता है, तब हम जीवन के हर विषय में खोज करने लगेंगे। आज भारत में मलेरिया कम हुआ है, क्योंकि यहाँ विज्ञान का उपयोग हुआ। अभी यहाँ मक्खियाँ कम नहीं हुई हैं। अब यह विज्ञान के प्रयोग का विषय है कि वे कैसे कम हों। जीवन का प्रत्येक व्यावहारिक अंश शास्त्रीय ढंग से होना चाहिए। अपने कपड़े, अपने बिस्तर, अपने सामान की व्यवस्था इन सबमें विज्ञान का पुट होना चाहिए। कम-से-कम सामान में ज्यादा-से-ज्यादा व्यवहार चल जाय, मकान की बनावट में सादगी हो, स्वच्छता की व्यवस्था हो, रसोई में ज्यादा परिश्रम न लगे, समय अधिक न लगे, कोई मनुष्य बीमार न पड़े, भोजन संतुलित हो—इस प्रकार हरएक चीज पर विज्ञान का प्रकाश पड़ना चाहिए। इसके लिए आधुनिक विज्ञान का अध्ययन होना चाहिए। (२५)

(३) आत्मज्ञान की बारी है

अकसर कहा जाता है कि अब विज्ञान का जमाना है, लेकिन विज्ञान तो पहले से है। इसमें शक नहीं कि गत कुछ दशाब्दियों में विज्ञान ने बहुत प्रगति की है। जो विज्ञान की स्थिति है, वही आत्मज्ञान की भी है। आत्मज्ञान भी अनादिकाल से चला आ रहा है, लेकिन इसकी प्रगति इन दिनों रुक-सी गयी है; इसीलिए जीवन में सुसंगति और समाधान की कमी दीखती है।

विज्ञान ने कई नये प्रयोग किये और अब आणविक शक्ति की खोज की है, तो उसी प्रकार आत्मज्ञान को भी आणविक शक्ति प्रकट करने की आवश्यकता है। आत्मज्ञान की खोज के अन्तर्गत अणु वह है, जो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म है और हृदय के अन्दर है। वह छोटा जरूर है, लेकिन आकार में वह जितना छोटा है, उसका स्फोट उतना ही विशाल है।

प्रयोग का नया क्षेत्र

पहले आत्मज्ञान का प्रयोग परिवार तक सीमित था और विज्ञान भी परिवार तक ही सीमित था। अब विज्ञान विश्वव्यापक हुआ है, आत्मज्ञान को भी विश्वव्यापक करना है। आत्मज्ञान तो विश्वव्यापक है ही, लेकिन प्रयोग के लिए उसे परिवार में दाखिल किया; मिल-जुलकर काम करना, बाँटकर खाना, एक-दूसरे के लिए त्याग करना आदि सारी भावनाएँ परिवार तक सीमित थीं। इस प्रकार विश्वव्यापक आत्मज्ञान का दर्शन पहले परिवार में किया था। अब उसे प्रत्यक्ष-प्रयोग के लिए गाँव में लेना चाहिए। क्या उसका अन्तिम विकास ग्राम तक ही होगा? नहीं। यह अंतिम नहीं है, अभी इतना ही आवश्यक है। आगे उसे और व्यापक करना होगा। विज्ञान भी प्रगति करता जायगा। अब वह जिस तरह अन्तर्राष्ट्रीय है, उसी तरह अन्तर्नक्षत्रीय (इण्टर प्लैनिटल) बनेगा। उस वक्त हमारा गाँव का प्रयोग कुछ बड़े क्षेत्र तक फैलाया जायगा। लेकिन आज जब कि विज्ञान केवल पृथ्वी तक सीमित न रहकर दूसरे ग्रहों तक फैलने जा रहा है, तब आत्मज्ञान गाँव तक भी न फैले, परिवार तक ही सीमित रहे, तो उस विकसित विज्ञान के लिए हम अनुपयोगी सिद्ध होंगे। इसका अर्थ होगा कि युग आगे बढ़ेगा और हम पीछे रह जायेंगे।

विकास का परिणाम

दो-एक उदाहरण लें। पिछले दिनों क्यूबा में क्या हुआ। रूस इतना बड़ा और शक्तिशाली राष्ट्र है, फिर भी क्यूबा से उसने अपनी ताकत हटा ली। यह विज्ञान के युग के अनुरूप ही है। क्योंकि विज्ञान के क्षेत्र में विश्वव्यापक चिन्तन चलता है। इसमें संकुचित राष्ट्रवृत्ति रह नहीं सकती। आज चीन की स्थिति क्या है? चीन ने पहले गलत हिसाब किया और भारत पर आक्रमण किया। कुछ ही दिनों में प्रकाश हुआ, तो अनुभव हुआ कि अगर यह आक्रमण जारी रहा, तो वह संसार को सर्वनाश की ओर ले जायगा। एक छोटे हिमालय के इर्द-गिर्द रूस, अमेरिका,

इंग्लैण्ड, भारत, पाकिस्तान, चीन और सब देश इकट्ठा हो जायँगे और हिमालय के पास संहार का नृत्य होगा—इसका दर्शन होते ही, स्वयं विजयी होते हुए भी चीन ने अपना कदम वापस लेना तय किया। इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ था। विजयी सेना आगे बढ़ रही है और उसको आदेश दिया जा रहा है कि कदम पीछे हटाओ। यह क्या हो रहा है? यह प्रेरणा कौन दे रहा है? यह प्रेरणा विकसित विज्ञान और विकसित आत्मज्ञान दे रहा है। इसलिए हमें इस युग के लायक बनना होगा।

भारत में अनेक धर्म हैं—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि बहुविध समाज है। सारा समाज प्रेम से रहता है और अनेक जाति, अनेक धर्म और अनेक भाषा आदि भिन्नताओं के होते हुए भी गाँव-गाँव एक परिवार की तरह रहता है, मिल-जुलकर ग्राम-चिन्ता करता है, तो कहा जा सकेगा कि आत्मज्ञान ने परिवार की सीमा से आगे बढ़कर एक अगला कदम बढ़ाया है। तब विज्ञान और आत्मज्ञान दोनों की जोड़ी बनेगी, दोनों साथ-साथ बढ़ेंगे और इससे संसार का भला होगा। फिर विज्ञान एक कदम बढ़ेगा, तो आत्मज्ञान को भी एक कदम और आगे बढ़ाना होगा।

संघर्ष अनावश्यक

लोग एक-एक कदम उठाने के लिए भी डरते हैं और इसीलिए संघर्ष अब ज्यादा दिन नहीं चलेगा, क्योंकि विज्ञान संघर्ष को रोकता है। आज संघर्ष का कारण यह है कि विज्ञान आगे का कदम उठाता है और आत्मज्ञान आगे कदम उठाने को राजी नहीं होता है। असल में उल्टा होना चाहिए; आत्मज्ञान आगे कदम उठा रहा है और विज्ञान को उसके पीछे कदम बढ़ाना पड़ रहा है। लेकिन सब विपरीत चल रहा है; कारण यह है कि जिन देशों में एक जमाने में आत्मज्ञान विकसित हुआ था, वे देश अब मन्द हैं। भारत, ईरान, अरबस्तान, फिलस्तीन आदि देशों में आत्मज्ञान विकसित हुआ था, अब ये सारे देश पिछड़ गये हैं और जो विज्ञान में आगे बढ़े थे, उनका उत्साह कायम है, इसलिए विज्ञान आगे बढ़ रहा है और

आत्मज्ञान को घसीटकर ले जाता है। पुराने ऋषियों ने जैसी तपस्या की थी, वैसी तपस्या आज होती, तो आत्मज्ञान आगे जाता और विज्ञान उसके पीछे जाता।

इस तरह विज्ञान और आत्मज्ञान की दौड़ चल रही है। जैसे घुड़दौड़ में होता है, कभी यह आगे दौड़ा, तो कभी पीछे पड़ गया; कभी वह जोर मारता है, तो कभी यह। यह दृश्य आज दुनिया में देखने को मिल रहा है और यह सारा नाटक हम देख रहे हैं। (२६)

(१) मार्ग-दर्शन

आज लोग परलोक, चन्द्र और मङ्गल से सिर्फ मजा या आनन्दभर नहीं चाहते, बल्कि यह चाहते हैं कि प्रकृति का पूरा रहस्य मानव के हाथ में आ जाय। निस्सन्देह यह असाध्य ध्येय है। कितना भी यत्न करें, ब्रह्माण्ड की शक्ति मानव के हाथ में कैसे आयेगी ? लेकिन विज्ञान का समाधान इसीमें है। वह ऐसे ध्येय के बिना प्रयत्न ही नहीं करता। वह तो यह भी करेगा कि मरे हुए मनुष्य को जिन्दा कैसे किया जाय या बाहरी पदार्थों द्वारा मनुष्य कैसे गढ़ा जाय। इस प्रकार असफल प्रयोगों को करते-करते थोड़ी सफलता भी मिल जाती है और इसी थोड़ी सफलता में दुनिया का काम बन जाता है। (२७)

आत्मज्ञान से ही विज्ञान को सही दिशा

विज्ञान में दोहरी शक्ति होती है। एक विनाश-शक्ति और दूसरी विकास-शक्ति। यह सेवा भी कर सकता है और संहार भी। अग्नि-नारायण की खोज हुई, तो उससे रसोई भी बनती है और घर में आग भी लगायी जा सकती है। किन्तु अग्नि का उपयोग घर फूंकने में करना है या चूल्हा जलाने में, यह अक्ल विज्ञान में नहीं है। यह अक्ल तो आत्म-ज्ञान में है। जैसे पक्षी दो पंखों से उड़ता है, वैसे ही मनुष्य आत्मज्ञान और विज्ञान, इन दो शक्तियों से अग्रसर हो सुखी होता है। हर यन्त्र में दो प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। एक गति बढ़ानेवाली और दूसरी दिशा दिलानेवाली। मोटर को ही लीजिये, उसकी दस मील की रफ्तार है, तो उसे २० मील या ३० मील करना यन्त्र पर निर्भर होता है। लेकिन मोटर

को पूर्व, पश्चिम किंवा दक्षिण की तरफ मोड़ने का काम दूसरा यन्त्र करता है। अगर इनमें से एक भी यन्त्र न हो, तो काम नहीं चलेगा। मोटर को दोनों यन्त्रों की जरूरत रहेगी। हम पाँव से चलते हैं, आँख से नहीं। आँख से तो दिशा मालूम होती है। इसी तरह आत्मज्ञान है आँख और विज्ञान है पाँव। अगर मानव को आत्मज्ञान की दृष्टि न हो, तो वह अन्धा न मालूम कहाँ चला जायगा, कुछ पता नहीं। इसी प्रकार उसे आँखें हैं, लेकिन पाँव न हों, तो इधर-उधर देख सकेगा, पर घर में ही उसे बैठे रहना पड़ेगा। इसलिए विना विज्ञान के संसार में कोई काम ही न हो सकेगा और बिना आत्मज्ञान के विज्ञान को ठीक दिशा ही न मिलेगी। (२८)

संगम का विज्ञान

मोटर में उसकी गति बढ़ाने का एक यन्त्र होता है। उसको दबाइये, मोटर की रफ्तार चाहे जितनी बढ़ाइये। दूसरा साधन होता है, जिससे दिशा बदली जा सकती है। इन दोनों की मदद से मोटर चलती है। इसी तरह मानव के अन्दर दो शक्तियाँ हैं; एक है बुद्धि-शक्ति, दूसरी है प्राण-शक्ति। सामने पेड़ पर अच्छे आम हैं। आँखों ने देखा और मन में प्रेरणा हुई, तो पाँव को हुक्म दिया। पाँव जाकर पेड़ के नीचे खड़ा हुआ। फिर हाथ को आज्ञा मिली तो हाथ ने पत्थर उठाया, फेंका और आम नीचे गिरा। फिर मुँह से खा लिया। इस काम की प्रेरणा आँख ने दी और हाथ, पाँव और मुँह ने काम किया। असल में मूल प्रेरणा मन की थी। मन ने आज्ञा दी, इंद्रियों ने काम किया। इन्द्रियों का काम प्राणशक्ति के बिना नहीं हो सकता। विज्ञान जीवन की प्राणशक्ति है और अध्यात्म जीवन का चित्त है। चित्त के मार्ग-दर्शन में प्राण काम करता है। इसलिए अध्यात्म का मार्ग-दर्शन विज्ञान को मिलना चाहिए। (२९)

(२) धरती पर स्वर्ग

विज्ञान के लिए मेरे मन में बहुत आदर है। मेरे पिताजी वैज्ञानिक थे। विज्ञान के साथ-साथ वे रँगाई और छपाई भी जानते थे और इनके

कई प्रयोग करते थे । मुझे बचपन से गणित-शास्त्र का शौक था । मेरी पहली श्रद्धा परमात्मा पर है; उसके बाद का स्थान मैं गणित-शास्त्र को देता हूँ । मुझे विज्ञान का अध्ययन करने का मौका भी मिला है, लेकिन अब विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है । बचपन में मैंने जो पढ़ा था, उसके आधार पर सोचा जाय, तो पता नहीं चलेगा कि विज्ञान कितना आगे बढ़ा है । विशेषतः जब से मनुष्य के हाथ में आणविक शक्ति आ गयी है, तब से विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है ।

दोनों की प्रगति एक साथ

इसके आगे दुनिया में विज्ञान और अध्यात्म रहेगा, राजनीति और धर्म मिट जायँगे । पक्षनिष्ठ राजनीति, सत्ता की राजनीति और स्थानिक राजनीति सब खतम होंगे । खतम होने के पहले वे बहुत कष्ट देंगे । लेकिन उनको जाना है । क्योंकि विज्ञान के प्रकाश में वे टिक नहीं सकते । विज्ञान दुनिया को नजदीक ला रहा है । दूसरे ग्रहों के साथ सम्बन्ध जोड़ रहा है । इस हालत में पुराने खयाल नहीं रह सकते । एक तो राजनीति को जाना है और दूसरा छोटे-छोटे धर्म-पंथों को जाना है । नाना प्रकार की उपासनाएँ पुरानी पड़ गयी हैं, वे हृदय को संकुचित बनाती हैं और एक मानव को दूसरे मानव से तोड़ती हैं । ये सब उपासनाएँ और तन्मूलक कार्य मिटने चाहिए और उसके बाद धर्म-सार आत्म-विद्या पनपेगी । विज्ञान और आत्मज्ञान दो टिकेंगे और मनुष्य को जोड़ने का काम आगे चलेगा ।

विज्ञान की निरपेक्ष शक्ति

मैं विज्ञान और तंत्रशास्त्र (टेक्नालॉजी) में फर्क करता हूँ । विज्ञान और तंत्रशास्त्र का उपयोग व्यवहार में कहाँ तक करना चाहिए, इसका निर्णय विज्ञान नहीं देगा, अध्यात्म देगा । किस समाज में, किस काल में तंत्रशास्त्र का कितना उपयोग करना चाहिए, इसकी आज्ञा विज्ञान को मिलेगी । विज्ञान की प्रगति की सीमा नहीं है, वह जितना आगे बढ़े, उतना अच्छा ही है । लेकिन उसके उपयोग के लिए आत्मज्ञान का मार्ग-दर्शन

रहेगा। अग्नि की खोज हुई। उससे सुन्दर रसोई बना सकते हैं। लेकिन उससे घर भी जला सकते हैं। यह कौन कहेगा कि अग्नि का उपयोग आग लगाने में होना चाहिए या रसोई बनाने में ? अग्नि इसका निर्णय नहीं कर सकती; इसके लिए दूसरे का मार्ग-दर्शन आवश्यक है। विज्ञान एक नीति-निरपेक्ष शक्ति है, अनैतिक नहीं (नॉन्-मॉरल है, इम्-मॉरल नहीं)। वह नैतिक (मॉरल) शक्ति भी नहीं है; नीति-निरपेक्ष है। उसको जैसा मार्ग-दर्शन मिलेगा, उसके अनुसार उसका उपयोग होगा।

मार्गदर्शन का महत्त्व

क्लोरोफार्म की खोज होने पर मनुष्य को कितना लाभ हुआ ? पुराने जमाने में जब मनुष्य को ऑपरेशन (शल्यक्रिया) की आवश्यकता पड़ती थी, तो उसको कसकर बाँधते थे। इससे उसको कितनी तकलीफ होती होगी ! तब ऐसी औषधि की जरूरत थी, जिससे मनुष्य को दुःख का भान न हो। उस जमाने में अफीम का थोड़ा उपयोग कर लेते थे, लेकिन आज क्लोरोफार्म जो काम करता है, यह उससे नहीं होता था। इसलिए क्लोरोफार्म की खोज भूतदया के अनुकूल है। जो विज्ञान एक ओर क्लोरोफार्म की खोज करता है, जिससे करुणा का काम होता है, वही दूसरी ओर अणुबम की खोज करता है, जिससे भयंकर हानि और संहार होता है। आज लड़ाई में संहारक शस्त्र काम में आते हैं। सिपाही जख्मी होते हैं; उनकी सेवा के लिए डॉक्टर भेजे जाते ह, औषधि और क्लोरोफार्म आदि दूसरे साधन भेजे जाते हैं। एक बाजू सिपाही को जख्मी करना और दूसरी बाजू उनको दुरुस्त करना—ऐसा गोरखधन्धा आज विज्ञान की मदद से चलता है। इधर भी विज्ञान और उधर भी विज्ञान। इस हालत में विज्ञान का सारा काम उसको मिलनेवाले मार्गदर्शन पर निर्भर है। जैसा मार्ग-दर्शन मिलेगा, तदनुसार वह लाभदायी या हानिकारक सिद्ध होगा।

वैज्ञानिक और वैज्ञानिकता

आज विज्ञान राजनीतिज्ञों के हाथ में है। वे जैसा आदेश देंगे, उसे

उसके अनुसार कार्य करना होगा। वैज्ञानिकों को राजनीतिज्ञों के इशारे के अनुरूप खोज करनी होगी। वे पैसा देकर वैज्ञानिकों को खरीद लेते हैं। यह तो वैज्ञानिक की गुलामी है। ऐसे लोग अवैज्ञानिक हैं (अन साइंटिफिक हैं)। यदि वैज्ञानिक (साइंटिस्ट) वैज्ञानिक (साइंटिफिक) होंगे, तो ऐसी चीज सहन नहीं करेंगे। आज विज्ञान तो बढ़ा है, लेकिन वैज्ञानिक-वृत्ति निर्माण नहीं हुई है, जीवन वैज्ञानिक (साइंटिफिक) नहीं बना है।

जीवन यदि वैज्ञानिक (साइंटिफिक) बनता है, तो सादा होता है। बहुतों का ख्याल है कि विज्ञान से जीवन जटिल बनेगा। लेकिन यह ख्याल गलत है। विज्ञान के बढ़ने से मनुष्य आकाश का महत्त्व समझेगा। अब मनुष्य रात-दिन कपड़ा पहने रहता है; शरीर के कुछ हिस्से को सूर्य-किरणों का स्पर्श तक नहीं होता। इससे शरीर जीर्ण बनता है और प्राणशक्ति-विहीन होता है। यह विज्ञान समझाता है, तो मनुष्य वस्त्रों का उपयोग कम करने लगेगा और इस तरह जीवन सादा बनेगा। विज्ञान के जमाने में कोई दस-दस तल्लेवाले मकान नहीं बनायेगा। क्योंकि एक तल्लेवाला मकान अच्छा है; वह भी ऐसा कि जिसमें हवा और प्रकाश अन्दर आ सके; आसपास खुली जगह हो।

विज्ञान का परिणाम

विज्ञान से आरोग्य इतना बढ़ेगा कि मनुष्य को औषधियों की आवश्यकता नहीं रहेगी। उत्तमोत्तम औषधि तैयार करनी होगी; जरूरत होने पर वह मिलेगी, लेकिन कोई उसको नहीं लेगा, क्योंकि सब आरोग्यवान् होंगे। क्योंकि मनुष्य की वृत्ति वैज्ञानिक (साइंटिफिक) हुई होगी। हवाई जहाज तो होंगे, फिर भी मनुष्य पैदल चलना पसन्द करेगा। हवाई जहाज की आवश्यकता कम रहेगी। जंगल में घूम रहे हैं और आनन्द ले रहे हैं। डॉक्टर हैं, लेकिन डॉक्टरों की जरूरत नहीं। ऐसे-ऐसे चश्मे तैयार हैं कि अन्धे को भी दीखने लगे; लेकिन कोई उसे लेता नहीं है; उसकी जरूरत

ही नहीं है, क्योंकि आँख बिगड़ेगी ही नहीं। विज्ञान के जमाने में रात को बत्तियाँ नहीं जलेंगी; लोग नक्षत्रों की छाया में सोयेंगे। विज्ञान का उपयोग मनुष्य-श्रम कम करने में नहीं होगा, मनुष्य का बोझ हलका करने में और आरोग्य बढ़ाने में होगा। ईसामसीह ने कहा है कि इस धरती पर स्वर्ग लाना है; यह तभी सम्भव है, जब अध्यात्म-विद्या के मार्गदर्शन में विज्ञान चले। मेरा विश्वास है कि दोनों मिलकर धरती पर स्वर्ग ला सकेंगे। (३०)

(३) विज्ञान पर आत्मज्ञान का अंकुश

यहाँ कुछ सवालों की चर्चा करूँगा। इससे विचार में मदद मिलेगी।

विज्ञान श्रेष्ठ या आत्मज्ञान ?

प्रश्न : "आजकल विज्ञान का युग चल रहा है और हमारे यहाँ आत्म-ज्ञान बढ़ा हुआ है। तब इनमें श्रेष्ठ कौन है, विज्ञान या आत्मज्ञान ?"

उत्तर : वास्तव में इनमें अमुक श्रेष्ठ या अमुक कनिष्ठ, ऐसी कोई बात ही नहीं है। दोनों एक-दूसरे के सहायक हैं। अगर यह पूछा जाय कि आँख श्रेष्ठ है या कान, तो हम क्या उत्तर देंगे ? सितार अच्छा बज रहा है, यह कान ही बतलायेगा और "सामने पेड़ है या और कुछ ? पेड़ है, तो उसका रंग कौन-सा है ?" यह आँखें ही बतलायेंगी। दोनों की आवश्यकता है। दोनों मिलकर ही पूर्ण ज्ञान होता है।

आज अग्नि के सहारे स्वादिष्ट रुचिकर खाना पका सकते हैं, जिससे पेट को उसे पचाने में मदद मिलती है। अगर अग्नि न होती, तो कच्चा ही खाना पड़ता और वह पचने में भारी होता। अग्नि से पाचन-क्रिया को मदद मिलती है। इस तरह अग्नि की खोज एक महत्त्वपूर्ण खोज थी। उन दिनों वह एक नया ही विज्ञान निकला था और उससे आत्मज्ञान को भी मदद मिली।

स्वयं विज्ञान न बुरा, न भला

आखिर विज्ञान कैसा है ? वह खुद न तो बुरा है, न भला । आप उसका जैसा उपयोग करें, वैसा ही वह बन सकता है । यह लाउडस्पीकर ही देखिये । इसके सामने मैं जोर-जोर से गालियाँ बकूँ, तो यह उन गालियों को जोरों से सुनायेगा और भजन गाऊँ, तो उसे भी जोर से सुनायेगा । उसके सामने जैसा बोलेंगे, वैसा ही वह सिर्फ जोर से सुना देगा । वह खुद न तो बुरा है, न भला । आग घर को जलाने के काम में लायें, तो बुरी साबित होगी और रसोई पकाने में उसका उपयोग करें, तो अच्छी ठहरेगी । खुद वह न बुरी है, न भली । वह देवता है । देवता का लक्षण ही यह है कि जो जैसा भाव दिखाये, उसे वैसा ही फल दे । इस पृथ्वी-देवी को ही देखिये । आप इसमें तम्बाकू बोयेंगे, तो वह उसीको पैदा करेगी और उसे खाकर आप मरियेगा । अगर केला बोयेंगे, तो आपको केले मिलेंगे । इसी तरह विज्ञान भी देवता है । आप उसका जैसा उपयोग करेंगे, वैसा ही वह आपको फल देगा ।

विज्ञान ने दया को दम दिलाया

इसी तरह अध्यात्म कहता है कि "दया करो । सभी पर अपने जैसा ही प्रेम करो । कोई दुःखी हो, तो उसकी मदद के लिए दौड़ पड़ो ।" आज विज्ञान भी यही कह रहा है और कर रहा है । पहले किसीके पेट में दर्द होता और तरह-तरह की दवा खाने पर भी वह न मिटता, तो उसे कितना कष्ट सहना पड़ता था ! लेकिन अब ? दवा से लाभ न हुआ, तो तुरत ऑपरेशन कर रोग निकाल फेंक दिया जाता है । आखिर यह किसके बदौलत हो पाया ? यह विज्ञान के कारण मदद मिली या नहीं ? इस तरह स्पष्ट है कि आत्मज्ञान को विज्ञान ने दया करने का साधन सुलभ कर दिया । पहले पैर में पीड़ा होने पर उसमें दवा लगाते समय इतना कष्ट होता था कि मानव पशुओं की तरह जोर-जोर से चिल्लाता था । लेकिन अब उसके पैरों में ऐसी दवा लगा देते हैं कि रोगी अपना ऑपरेशन भी शान्त

रहकर देखता रहता है, चूँ भी नहीं करता । मैंने अपने दाँत निकलवाये थे । डॉक्टर ने दवा लगायी और चट दाँत उखाड़ लिये । मैं देखता ही रह गया । अगर पुराने जमाने में यही करना होता, तो पशुओं की तरह चिल्लाना पड़ता । याने आत्मज्ञान ने कहा, दया करो और विज्ञान ने उसे मदद दी । इसलिए विज्ञान श्रेष्ठ या हीन नहीं, वल्कि अध्यात्म को मदद देनेवाला है ।

अग्नि भी एक नया विज्ञान

आपको भात पकाना है । अगर पूछेंगे कि आग श्रेष्ठ है या पानी ? तो यही कहना होगा कि भात पकाने के लिए दोनों की जरूरत है । फिर उनमें किसे कनिष्ठ कहा जाय और किसे श्रेष्ठ ? पहले लोग अग्नि को जानते ही न थे । उन दिनों लोग लकड़ी पर लकड़ी घिसकर आग सुलगाते थे । लेकिन अव तो उस छोटी-सी सलाई की पेटी में आग रहती है और उसे आप जेब में भी रख सकते हैं । चाहे जव सुलगायें और चट अपना काम कर लें ।

अध्यात्म : विज्ञान के सदुपयोग का शिक्षक

पूछा जा सकता है कि विज्ञान का कैसा उपयोग किया जाय ? उत्तर है, यह अध्यात्म-विद्या ही बतलायेगी । शस्त्र का उपयोग घाव ठीक करने में भी किया जा सकता है और गला काटने में भी । लेकिन उसका कैसे उपयोग किया जाय, यह अध्यात्म-विद्या ही बतलायेगी । जमीन में क्या बोया जाय, यह जमीन नहीं वतायेगी । अध्यात्म-विद्या ही वतलायेगी कि तम्वाकू बोओगे और उसे खाओगे, तो शरीर की हानि होगी और केला वोकर उसे खाओगे, तो शरीर पुष्ट होगा । इसलिए जमीन में केला ही बोओ, तम्वाकू नहीं ।

दोनों का योग आवश्यक

आज विज्ञान के कारण हम लोगों के हाथों में अत्यधिक शक्ति आ गयी है । लेकिन उसका उपयोग कैसे किया जाय, यह आत्मज्ञान ही बत-

लायेगा। घोड़े को काबू में रखें और उस पर लगाम चढ़ायें, तभी आप उस पर चढ़कर चाहे जहाँ पहुँच सकते हैं। विज्ञान घोड़ा है और आत्मज्ञान है उसकी लगाम। अगर घोड़े को लगाम न रही, तो सवार के उस पर बैठने की जगह घोड़ा ही सवार की छाती पर सवार हो जायगा। इसी तरह विज्ञान को भी आत्मज्ञान की लगाम न रही, तो विज्ञान दुनिया का संहार कर डालेगा। यदि उसे आत्मज्ञान की जोड़ दे दी जाय, तो इसी भू पर स्वर्ग उतर आयेगा।

ज्ञानदेव की शिक्षा त्रिकाल में उपयोगी

एक दूसरा भी प्रश्न बहुत अच्छा पूछा गया है कि "निश्चय ही ज्ञानदेव की शिक्षा उस जमाने के लिए बड़ी ही कारगर साबित हुई। लेकिन क्या वह इस विज्ञान-युग के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी?" इस सम्बन्ध में मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह शिक्षा उस जमाने के लिए उपयोगी थी और इस जमाने के लिए भी है। उन्होंने ऐसी युक्ति साध ली थी कि वह तीनों कालों में उपयोगी सिद्ध होगी। उन्होंने बतलाया है कि यह जो सृष्टि, यह भाप, ये बीज, ये अणु-परमाणु याने पंचमहाभूत हैं, उनका उपयोग अगर बुद्धि ठिकाने रखकर आप करें, तो निश्चय ही ये आपकी मदद करेंगे। नहीं तो आपके सिर चढ़ बैठेंगे।

एक भ्रान्त धारणा

बहुतों को लगता है कि आज विज्ञान खूब बढ़ गया है। इसीलिए अब आत्मज्ञान की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह भ्रान्त धारणा है। जितनी ही विज्ञान की शक्ति बढ़ेगी, उतनी ही आत्मज्ञान की आवश्यकता भी बढ़ जायगी। तीव्र साधन हाथ में आने के बाद अक्ल ठिकाने रखना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है, जो आत्मज्ञान से ही सधता है। पुराने जमाने में चाकू ही एक हथियार था। उसका उपयोग करने पर मामूली-सा घाव होता। उसके बाद तलवार और पिस्तौल जैसे उत्तरोत्तर तीव्र साधन (हथियार) हाथ आने लगे। एक बार एक बच्चे को एक

भरी पिस्तौल हाथ लग गयी। उसे लगा कि बाबूजी हमेशा इससे खेला करते हैं, तो आज अपने राम भी खेलकर देखें। उसने पिस्तौल ली और उसका घोड़ा दबाया। भरी पिस्तौल से गोली छूट पड़ी और उसने सामने बैठी उसकी माता की बोटी-बोटी उड़ा दी।

इसलिए आज बच्चों को घर-घर ज्ञानेश्वरी पढ़ानी चाहिए। इसीलिए हम लोग घर-घर 'गीता-प्रवचन' और 'गीताई' पहुँचा रहे हैं। इसमें हम लोगों की बुद्धि नहीं, उन्हीं लोगों से हमने बुद्धि पायी है। किसी बड़े व्यापारी की तरह ज्ञानदेव के पास बुद्धि का भण्डार भरा पड़ा है। उसीमें से कुछ-कुछ ज्ञान लेकर हम गाँव-गाँव पहुँचा रहे हैं। इस तरह उनकी शिक्षा की आज नितान्त उपयोगिता है। आवश्यकता है, हम उसे नवीन भाषा में उपलब्ध करा दें।

विज्ञान के अनुपात में आत्मज्ञान बढ़े

आज युग की माँग है कि विज्ञान की जितनी शक्ति बढ़ेगी, आत्मज्ञान की भी उतनी ही शक्ति बढ़नी चाहिए। आज अमेरिका में विज्ञान काफी बढ़ गया है, लेकिन वहाँ आत्मज्ञान की कमी है। इसके विपरीत हमारे देश में विज्ञान की कमी है, पर आत्मज्ञान पर्याप्त है। इसलिए यहाँ विज्ञान कितना ही क्यों न बढ़े, कोई चिन्ता नहीं। वास्तव में एक हाथ में ज्ञानेश्वरी और दूसरे हाथ में विज्ञान, ऐसी स्थिति होनी चाहिए। आत्मज्ञान की कमी के कारण ही आज अमेरिका में मामूली बातों पर झगड़े होते हैं और आये दिन आत्महत्याओं के समाचार मिलते हैं। वहाँ विज्ञान बच्चों के हाथ में चला गया है। उनकी अक्ल ठिकाने पर नहीं है। उनमें आत्मज्ञान की बेहद कमी है। उनका कुल पाँच सौ वर्षों का इतिहास है, जब कि हमारा इतिहास दस हजार वर्षों का है। इसलिए विज्ञान के अनुपात में आत्मज्ञान की वृद्धि होनी ही चाहिए। (३१)

(४) सत्याग्रह-शक्ति की खोज में

मैंने प्यारेलालजी की किताब 'लास्ट फेज' में पढ़ा कि "बापू विनयपूर्वक

कहते थे कि सत्याग्रह का बहुत ही थोड़ा अंश हमने देखा है। यह शास्त्र बहुत गहरा है और इसमें काफी खोज होने को बाकी है।" यह केवल विनय का कथन नहीं, बल्कि यथार्थता है। हमने सत्याग्रह के जो प्रयोग किये, वे अँधेरे में टटोलने जैसे थे। उस समय कोई स्वच्छ प्रकाश उपलब्ध नहीं हुआ था। थोड़ा-सा प्रकाश जो मिला, उतना ही लेकर हम आगे बढ़े। लोकतंत्र में सत्याग्रह का स्वरूप कैसा होगा, आदि के बारे में मैंने कुछ कहा है। लेकिन इस वक्त मैं लोकतंत्र के खयाल से नहीं बोल रहा हूँ। लोक-तंत्र एक छोटी चीज है। यह जमाना सिर्फ लोकतंत्र का नहीं, बल्कि विज्ञान का है। मैंने एक व्याख्यान में कहा था कि जीवन को आकार देनेवाली तीन शक्तियाँ हैं : १. आत्मज्ञान-शक्ति, २. विज्ञान-शक्ति और ३. शब्द-शक्ति याने साहित्य की शक्ति।

विज्ञान की शक्ति का प्रभाव

दुनिया पर जिनका विशेष परिणाम हुआ है, वे राजनीति में ही काम करनेवाले थे। बाबर आया, तो उसने हिन्दुस्तान और एशिया पर असर डाला। इसलिए न सिर्फ हिन्दुस्तान के, बल्कि दुनिया के इतिहास में उसका जिक्र है। इसी तरह सिकन्दर, क्लाइव आदि जिन-जिन लोगों ने राजनैतिक क्षेत्र में पराक्रम किये, उनका दुनिया पर विशेष असर हुआ। किन्तु ऐसा मानना निरा भ्रम है। वे जिस जमाने में पैदा हुए, उस जमाने में भी कुछ वैज्ञानिक शक्तियाँ उन्हें उपलब्ध थीं। जितने जहाज इंग्लैण्ड के पास थे, उतने भारत के पास नहीं। खुद शिवाजी भी पोर्तुगीजों से तलवारें लेता था। मराठी में तलवार के लिए 'फिरंगी' (पोर्तुगीज) शब्द है। **"फिरंगीच्या पुढे बखरविले"**—फिरंगी के सामने दूसरे छोटे-छोटे औजार क्या टिकेंगे? इसलिए चाहे वे आक्रमण बाबर और सिकन्दर के हों या मार्कोपोलो, कोलम्बस जैसे यात्रियों के, वे विज्ञान की शक्ति से ही होते थे। इस तरह विज्ञान की शक्ति का ही दुनिया पर परिणाम होता है।

आत्मज्ञान और शब्द-शक्ति का प्रभाव

दुनिया पर असर करनेवाली दूसरी शक्ति है, आत्मज्ञान। आत्मज्ञान से मनुष्य को यह दिशा मिलती है कि विज्ञान का उपयोग कैसे करें। इसलिए उस-उस जमाने के लोग आत्मज्ञान की शक्ति के अनुसार विज्ञान के प्रयोग करते थे। दुनिया में मांस बनता था। सस्ता भी था, फिर भी जैनों ने मांसाहार छोड़ दिया। फिर हिन्दू-धर्म में भी उसका आदर हुआ। हिन्दू-धर्म में कई ऐसी जमातें हैं, जिन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है। इसके पीछे केवल विज्ञान नहीं, बल्कि आत्मज्ञान है! आज मानव सोच रहा है कि फाँसी की सजा रद्द होनी चाहिए। यह उसे विज्ञान नहीं, बल्कि आत्मज्ञान सुझा रहा है। आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों के बीच रहकर अनुसन्धान करनेवाला है—शब्द-शक्ति-सम्पन्न साहित्यिक, जिसे ज्ञानदेव ने 'शब्दतत्त्व-सारज्ञ' कहा है।

विज्ञान-युग में सत्याग्रह का रूप

हाँ, तो सत्याग्रह के बारे में सोचते हुए एक बात मैंने कही थी कि बापू के जमाने में लोकतन्त्र नहीं था। यद्यपि उनके आखिरी दिनों में भारत में अपना राज्य हो गया था, फिर भी लोकतन्त्र वैसा विकसित नहीं था, जैसा कि आज है। इसलिए परिस्थिति में फर्क पड़ सकता है। लेकिन अभी मैं वह बात छोड़ देता हूँ और विज्ञान के जमाने में सत्याग्रह का स्वरूप क्या रहेगा, इस बारे में कुछ कहूँगा। सामनेवाला लाठी लेकर आये और हममें से कोई दयावान्, करुणावान् स्त्री-पुरुष हो, तो सामनेवाले को महसूस होगा कि लाठी लेकर आना मूर्खता है। वाल्मीकि जब व्याध था, तब कुल्हाड़ी लेकर नारद को मारने आया, तो उसका परिवर्तन हो गया। लेकिन आज जब कोई ऊपर से या घर बैठे ही बम फेंक सकेगा, तो इस स्थिति में सत्याग्रह क्या करेगा? यहाँ सत्याग्रही की आँखों की करुणा और वाणी का मार्दव क्या करेगा?

आध्यात्मिक क्षेत्र में गहरा डूबना होगा

इसलिए जब विज्ञान-शक्ति आयी है, तो हमें आध्यात्मिक क्षेत्र में गहरा डूबना होगा। प्राचीन काल के व्यक्ति जितने गहरे डूबे थे, उससे भी अधिक गहराई में जाना होगा। जैसे विज्ञान के कारण कुछ लोगों के पास घर बैठे दुनिया को खतम करने की शक्ति आ गयी है, वैसे ही हमें भी घर बैठे ऐसी आध्यात्मिक शक्ति विकसित करनी होगी, जिसका असर कुल दुनिया पर हो। इसके सिवा सत्याग्रह की गति नहीं।

इसे मैं रहस्यवाद नहीं मानता। रहस्यवादियों या भक्तों ने ध्यान से विविध दर्शन के जो अनुभव पाये, वे सब आश्वासनमात्र हैं। वास्तव में वे दर्शन नहीं। भक्त ने जो इच्छा रखी, वही भगवान् ने पूर्ण की और उसे आश्वासन दिया। उसीको दर्शन समझकर कोई तृप्त हो, तो वह गहरी खोज से, दर्शन से वंचित रह जायगा। रहस्यवाद भी एक बड़ी चीज है। अव्यक्त विश्व के साथ सीधा साक्षात् संस्पर्श होना बड़ी बात है। किन्तु अब इतने से ही काम न चलेगा। ऐसी शक्ति की खोज तब तक नहीं हो सकती, जब तक हम मन के क्षेत्र में डूबे रहेंगे। इसलिए जब मैं सोचता हूँ, तब ये सारी देशों की सीमाएँ, भाषा की सीमाएँ, धर्म, पन्थ आदि सबकी चर्चा बिलकुल ही निःसार मालूम होती है।

विश्व-शान्ति का आविष्कार : विश्व-पूजा-स्थान

एक अखबार ने लिखा कि "विनोबा ने पंढरपुर में दूसरे धर्मवालों के साथ मन्दिर-प्रवेश करके किया ही क्या, क्योंकि हम हरिजनों से दूसरे धर्मवालों को ऊँचा मानते ही थे! जब हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश मिल चुका, तो बाबा ने और अधिक क्या किया ?" लिखनेवाला समझा ही नहीं कि इसमें क्या चीज भरी पड़ी है। बात यह है कि हर पूजा-स्थान को हम 'विश्व-पूजा-स्थान' बनाना चाहते हैं। आज हर पूजा-स्थान सीमित और संकुचित है। बाइबिल, कुरान या मूर्ति चाहे जिसे लेकर हो, वह सीमित है। उस-उस प्रकार की श्रद्धा लेकर मानव उस-उस पूजा-स्थान

में जाता है। जिसकी श्रद्धा उससे विरुद्ध है, वह वहाँ नहीं जाता। किन्तु जिनकी श्रद्धाएँ विरोधी नहीं, वल्कि भिन्न-भिन्न हैं, ऐसे लोग भी क्या एक पूजा-स्थान में जा सकते हैं? मसजिद में मुसलमान ही जा सकते हैं, मन्दिर में हिन्दू ही जा सकते हैं, चर्च में ईसाई ही जा सकते हैं—यह एक प्रक्रिया है। अब अगर हम कोई ऐसा विशेष स्थान बनायें, जहाँ सब जा सकें, तो वह दूसरी प्रक्रिया होगी। किन्तु उससे भिन्न प्रक्रिया यह है कि जितने पूजा के स्थान हों, वहाँ सभी जा सकें। भले ही हम घर पर उससे भिन्न पूजा करें, पर वहाँ सभी जा सकें। जितनी श्रद्धा और भावना से दूसरे पूजा करते हैं, उतनी ही श्रद्धा और भावना से हम भी वहाँ जाकर पूजा कर सकें। दूसरे धर्मवालों के साथ मसजिद और चर्च में जाकर पूजा करने के अनुभव मैंने लिये हैं। जैसे गीता पढ़ते समय मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं, वैसे ही कुरान या बाइबिल पढ़ते समय भी आते हैं, क्योंकि उनमें बुनियादी चीज है। इसीलिए मैंने पंढरपुर में जो यह कहा कि "सारे विश्व को एक करने की प्रक्रिया यहाँ शुरू हुई और विश्व-शान्ति का एक शस्त्र हमारे हाथ लगा", वह केवल मानसिक कल्पनामात्र नहीं थी। विश्व-शान्ति के लिए हमें जिन शक्तियों की खोज करनी है, उसके अन्दर वही चीज पड़ी हुई है।

साने गुरुजी को मेरी ही प्रेरणा

साने गुरुजी ने पंढरपुर के मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश के लिए जो सत्याग्रह किया, उसके लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ। क्योंकि सन् १९४५ में जेल से छूटने पर मैंने व्याख्यान में जिन बातों पर असंतोष प्रकट किया था, उन्हींको लेकर उन्होंने वहाँ उपवास किये। इससे पहले उन्होंने छह महीने प्रान्तभर घूमकर प्रचार किया। जब वे पवनार आये, तो उन्होंने मेरा विचार जानना चाहा। मैंने कहा : "मेरा सत्याग्रह जारी है। मेरे हृदय में विट्ठल उतने ही बसे हैं, जितने उनके किसी प्राचीन या अर्वाचीन भक्त के हृदय में बसे होंगे। इस उपास्य देवता की भक्ति के रंग में रँगे लोगों ने जितना साहित्य लिखा, सबका मैंने खूब अध्ययन किया है। उसके साथ

मैं जितना एकरूप हो सकता हूँ, उतना शायद ही दूसरे किसी साहित्य के साथ हो सकूँ, क्योंकि मेरी मातृभाषा मराठी है। इतना होने पर भी मैं उपवास करके मन्दिर-प्रवेश नहीं करूँगा। जब तक वहाँ हरिजनों को प्रवेश नहीं मिलेगा, तब तक मैं भी वहाँ नहीं जाऊँगा। यही मेरा सत्याग्रह है।" फिर उन्होंने पूछा कि "क्या मेरा उपवास भी गलत है ?" तो मैंने कहा : "जी नहीं, आप उपवास कर सकते हैं।" इस तरह मेरा यह कभी रवैया नहीं रहा कि साने गुरुजी ने जिस ढंग का सत्याग्रह किया, उस ढंग का सत्याग्रह मैं करूँ।

मनःपरिवर्तन मन से ऊपर उठने पर ही

जब उस जमाने में भी मेरा यह रवैया नहीं रहा, तो इस जमाने में, जब कि विज्ञान जोरों से आगे बढ़ रहा है, हमें समझना चाहिए कि मन के परिवर्तन की प्रक्रिया मन के क्षेत्र के अन्दर रहकर नहीं ही होनेवाली है। मन को नीचे रखकर हम उससे ऊपर जायँ, तो स्वयमेव मन खतम हो जायगा। फिर उसके परिवर्तन की बात ही नहीं रहेगी। आज जब हम हृदय-परिवर्तन की बात करते हैं, तो होता यह है कि सामने के मजबूत मनुष्य के दोष देखते हैं। इसीलिए उसके परिवर्तन की हम कोशिश करते हैं। किन्तु अभी मैं जिस प्रकार से चिन्तन करता हूँ, उसमें मन है ही नहीं, यह सोचकर काम किया जाता है।

विज्ञान के जमाने में पुराने ढंग के कामों का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए कुछ लोग कह रहे हैं कि "इस तरह विनोबा अब अरविन्द के पन्थ में जा रहा है।" लेकिन यह कोई आज की नयी बात नहीं, पहले से ही मेरा यह विचार था, जो आज विज्ञान के कारण स्पष्ट हो रहा है। विज्ञान-युग में जब तक हम मन के क्षेत्र में काम करेंगे, तब तक मनःपरिवर्तन के मामले में उलझते ही जायँगे। कहीं निस्तार नहीं होगा, इसीमें चक्कर काटते रहेंगे। इसलिए इस जमाने में पुरानी कूटनीतिज्ञता, पुराना साहित्य आदि कुछ भी न चलेगा।

अतिमानस क्षेत्र में ही सच्चा धर्म

अभी तक धर्म-स्थापना नहीं हुई है; धर्म बना ही नहीं है। धर्म बनने के लिए जिन बुनियादों की जरूरत है, वे अब तक थीं ही नहीं, क्योंकि विज्ञान नहीं था। ऋषियों ने दर्शन से कुछ चीजें रखीं और लोगों ने श्रद्धा से उन्हें ग्रहण किया, इसलिए कुछ विश्वास बने, परन्तु कानून नहीं बना। उन्हें प्रमाण मानने की भूमिका में दुनिया नहीं आयी। सत्य, अहिंसा आदि का यही हाल है। लोग कहते हैं कि सत्य अच्छा है, किन्तु हर हालत में सत्य अच्छा ही है, ऐसा नहीं कहते। मकान बनानेवाला कारीगर जानता है कि दीवाल जमीन से ९० अंश के कोण पर ही खड़ी करनी चाहिए। जैसे उसे यह विश्वास हो गया है, वैसा मानव को अभी तक विश्वास नहीं हुआ है कि सत्य हमेशा अच्छा ही है। इसलिए अब तक धर्म नहीं बना है। विज्ञान धर्म की बुनियाद होगी और उस पर धर्म खड़ा होगा। आज के भौतिक क्षेत्र में धर्म की जो बातें चलती हैं, वे बिलकुल छोटी हैं। उनसे ऊपर उठने पर ही धर्म आयेगा। फिर विज्ञान और धर्म में कोई विरोध नहीं, बल्कि पूरा सामंजस्य होगा।

मेरा आजकल का चिन्तन

इन दिनों मेरा यही चिंतन चल रहा है। इसलिए तीन साल पहले मुझमें जितना पुरुषार्थ था, उतना आज नहीं दीख रहा है। जिसे हम 'निवृत्ति' कहते हैं—याने प्रवृत्ति-विरोधी निवृत्ति नहीं—वह तो एक वृत्ति ही है। 'क्रोध' का विरोध 'काम' करता है और 'काम' का विरोध 'क्रोध'। दोनों परस्पर-विरोधी वृत्तियाँ हैं। जाग्रति के बाद निद्रा आती है और निद्रा के बाद जाग्रति। दोनों वृत्तियाँ हैं। किन्तु इस भाषा में मैं नहीं बोल रहा हूँ, बल्कि दूसरी भाषा में निवृत्ति की ओर जा रहा हूँ। वह एक शक्ति की खोज है। उसे मैं सत्याग्रह-शक्ति की खोज मानता हूँ।

नाहक मन से टक्कर क्यों ?

राजस्थान के एक भाई ने सत्याग्रह की एक समस्या के बारे में मेरी

राय पूछी । वहाँ के एक गाँव में हरिजनों की ओर से उस भाई का आग्रह है कि उन्हें कुएँ पर पानी भरने दिया जाय । इसके लिए किसीने उपवास भी शुरू किया है । गाँववालों ने कहा कि "हरिजनों के लिए हम स्वतन्त्र कुआँ बनवा देंगे ।" उस भाई ने मुझसे पूछा कि "क्या इस सुझाव को मंजूर कर लिया जाय या उपवास जारी रखा जाय ।" इस सम्बन्ध में मैं यही समझता हूँ कि आज तक जो विचार-परम्परा चली आयी है, उसके अनुसार यही कहना होगा कि उपवास जारी रखा जाय, क्योंकि नया कुआँ बनाने से अपना हक सुरक्षित नहीं होता । किन्तु मैं ऐसी सलाह नहीं दूँगा । बल्कि उन्हें यही लिखनेवाला हूँ कि नया कुआँ बनाने का सुझाव मंजूर कर लें । जातिभेदों की हस्ती मानकर जो भी काम किये जायँगे, वे सभी जातिभेदों को और पक्का बनायेंगे । नये कुएँ पर हरिजन भी पानी भरेंगे और दूसरे भी । तब सब मिलकर एक जमात बनेगी और धीरे-धीरे प्रेमभाव बढ़ेगा । आज की परम्परा के अनुसार मेरी यह सलाह कमजोर मानी जायगी । किन्तु वास्तव में यह कमजोर नहीं, बल्कि मजबूत सलाह है; क्योंकि यह मन को ही खतम करती है । नाहक मन के साथ मन की टक्कर होने देने के बजाय मन से ऊपर उठकर सोचना उचित है । ऐसी स्थिति में यही उचित मालूम होगा कि नया कुआँ बनने दिया जाय और प्रेम बढ़ने दिया जाय ।

शोधक एक, उपयोक्ता अनेक

इस आध्यात्मिक ऐटम बम की खोज भी सभी नहीं, कुछ थोड़े-से ही व्यक्ति कर सकेंगे । जैसे अणु-शक्ति की खोज थोड़े लोगों द्वारा होने पर भी उसके फलस्वरूप बननेवाले औजारों को सभी इस्तेमाल करेंगे । बिजली की खोज करनेवाला एक ही व्यक्ति था । परन्तु अब सब लोग बिजली का इस्तेमाल करते हैं । वैसे ही आध्यात्मिक खोज करनेवाला भी एक विशेष व्यक्ति ही रहेगा, किन्तु खोज होने पर उसका इस्तेमाल सभी लोग करेंगे ।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सत्याग्रह का रूप

पूछा जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सत्याग्रह किस प्रकार किया जाय ? इस सम्बन्ध में मेरा यही मत है कि सत्याग्रह एक आध्यात्मिक शक्ति है। वह न भौतिक शक्ति है, न मानसिक। विज्ञान एक ऐसी शक्ति है, जो मानसशास्त्र को गौण बना देती है। इसलिए अब मन के स्तर के ऊपर उठकर अतिमानस की ओर आकर ही सत्याग्रह की खोज करनी होगी। अगर आप अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ सत्याग्रह के तरीके से याने जनमत और सरकारी शक्ति से अलग रहकर हल करना चाहते हैं, तो आपको अतिमानस स्तर पर जाना होगा। भूदान-यात्रा के सिलसिले में मेरा विभिन्न देशों के लोगों से जो सम्पर्क आया, उससे मेरा यह विश्वास दृढ़ हो गया कि मानस मूलतः एक है। वह विकास के समान स्तर पर ही है। इसलिए हमारे पास ऐसी शक्ति होनी चाहिए, जो एक व्यक्ति की आत्मा में प्रकट हो और सारे विश्व पर असर डाले। व्यक्ति जब अपने जीवन के क्षेत्र में मन की सीमा पार कर अतिमानस भूमिका पर जा सकेगा, तभी सारे विश्व पर असर डालनेवाली शक्ति पैदा होगी। (३२)

(५) दुनिया को बनानेवाली तीन ताकतें

साहित्य से मुझे हमेशा बहुत उत्साह होता है। साहित्य-देवता के लिए मेरे मन में बड़ी श्रद्धा है। एक पुरानी बात याद आ रही है। बचपन में करीब १० साल तक मेरा जीवन एक छोटे-से देहात में ही बीता। बाद के १० साल बड़ोदा जैसे बड़े शहर में बीते। जब मैं कोंकण के देहात में था, तब पिताजी कुछ अध्ययन और काम के लिए बड़ोदा रहते थे। दिवाली के दिनों में अक्सर घर पर आया करते थे। एक बार माँ ने कहा : "आज तेरे पिताजी आनेवाले हैं, तेरे लिए मेवा-मिटाई लायेंगे।" पिताजी आये। फौरन मैं उनके पास पहुँचा और उन्होंने अपना मेवा मेरे हाथ में थमा दिया। मेवे को हम कुछ गोल-गोल लड्डू ही समझते थे। लेकिन

यह मेवे का पैकेट गोल न होकर चिपटा-सा था। मुझे लगा कि कोई खास तरह की मिठाई होगी। खोलकर देखा, तो दो किताबें थीं। उन्हें लेकर मैं माँ के पास पहुँचा और उसके सामने धर दिया। माँ बोली : "बेटा ! तेरे पिताजी ने तुझे आज जो मिठाई दी है, उससे बढ़कर कोई मिठाई हो ही नहीं सकती।" वे किताबें रामायण और भागवत की कहानियों की थीं, यह मुझे याद है। आज तक वे किताबें मैंने कई बार पढ़ीं। माँ का यह वाक्य मैं कभी नहीं भूला कि "इससे बढ़कर कोई मिठाई हो ही नहीं सकती।" इस वाक्य ने मुझे इतना पकड़ रखा है कि आज भी कोई मिठाई मुझे इतनी मीठी मालूम नहीं होती, जितनी कोई सुन्दर विचार की पुस्तक !

साहित्य : कठोरतम साधना की सिद्धि

वैसे तो भगवान् की अनन्त शक्तियाँ हैं, पर साहित्य में उन शक्तियों की केवल एक ही कला प्रकट हुई है। भगवान् की शक्ति की यह कला कवियों और साहित्यिकों को प्रेरित करती है। कवि और साहित्यिक ही उस शक्ति को जानते हैं, दूसरों को उसका दर्शन नहीं हो पाता। मुहम्मद पैगम्बर के लिए कहा गया है कि वे समाधि में लीन होते, तो पसीना-पसीना हो जाते। उनके नजदीक के लोग एकदम घबरा उठते कि यह कितना घोर तप चल रहा है ! कितनी तकलीफ हो रही होगी ! लेकिन वह चीज 'वही' थी, जिसे अरबी में 'वह्‌ई' कहते हैं। वह्‌ई याने पुस्तक या किताब नहीं। 'वह्‌ई' उस चीज को कहते हैं, जो परमेश्वर का सन्देश मनुष्य के पास पहुँचाती है। जब वह परमेश्वर का सन्देश मनुष्य के हृदय पर सवार होता है, तब बहुत ही यन्त्रणा (टार्चर), तीव्र वेदना होती है, जिसकी उपमा प्रसूति-वेदना से दे सकते हैं। प्रसूति में बहनों को जो वेदना होती है, उससे यह वेदना बहुत ज्यादा है। यह तो मैं अपने अनुभव से ही कह सकता हूँ कि कुछ ऐसा महसूस होता है कि हम अपने को बिलकुल खो रहे हैं। कोई चीज हम पर हावी हो रही है। ऐसी कोई चीज, जिसे

हम टाल नहीं सकते, टालना चाहते हैं। लगता है कि टल तो अच्छा है। लेकिन वह टल नहीं पाती, टाली नहीं जा सकती। ऐसी वेदना के अन्त में जो दर्शन होता है, वही लोगों को चखने को मिलता है। वह वेदना लोगों को मालूम नहीं होती, उसे तो कवि और साहित्यिक ही जानते हैं।

कवि की व्याख्या

मेरे अर्थ में 'कवि' दो-चार कड़ियाँ, तुकवन्दियाँ जोड़ देनेवाला नहीं है। कवि क्रान्तदर्शी होता है। जिसे उस पार का दर्शन होता है, वही कवि है। इस पार देखनेवाली तो ये दो आँखें हैं। इनका हम पर वड़ा उपकार है ही। ये सजी-सजायी सारी दुनिया हमारे सामने पेश करती हैं, दुनिया की रौनक दिखाती हैं। सृष्टि का सौन्दर्य हम इन्हीं दो आँखों से ग्रहण करते हैं। लेकिन ये गुनहगार भी हैं। इन दो आँखों से परे एक तीसरी चीज भी है, जो इनकी बदौलत छिप जाती है। इस खूबसूरत दुनिया से और भी निहायत खूबसूरत एक दुनिया है, जिसे ये दो आँखें छिपा रखती हैं। इन आँखों की वहाँ पहुँच नहीं। इनके कारण मानव उस दुनिया की ओर आकृष्ट नहीं होता। लेकिन जब तीसरी आँख खुल जाती है, तो इस दुनिया का दर्शन होता है। दुनिया के सर्वसाधारण व्यवहारों के पीछे, उनके अन्दर और उनकी तह में जो ताकतें काम करती हैं, उनका दर्शन होता है। उसमें से काव्य-स्फूर्ति होती है, साहित्य की स्फूर्ति होती है। इसीलिए मेरी साहित्यिकों पर बहुत श्रद्धा है।

दुनिया को बनानेवाली ताकतें

मुझसे पूछा जाता है कि परमेश्वर के अलावा इस दुनिया को बनानेवाले और कौन-कौन हैं? कोई समझते हैं कि राजनैतिक पुरुषों ने दुनिया बनायी। बड़े-बड़े इतिहास लिखे जाते हैं कि बाबर आया और उसने फलाँ-फलाँ काम किया। क्लाइव आया, उसने यह किया, वह किया। इतिहास के नाम से ये कहानियाँ चल पड़ती हैं। स्कूलों में बच्चों से रटायी जाती हैं। लेकिन आज समाज-जीवन में बाबर का कोई पता, क्लाइव का कोई हिसाब

है ? ये दुनिया के बनानेवाले नहीं हो सकते । दुनिया को बनानेवाली तो तीन ताकतें हैं : विज्ञान, आत्मज्ञान और साहित्य !

विज्ञान की शक्ति

वैज्ञानिक दुनिया के जीवन को रूप देता है । आज मेरे सामने यह लाउडस्पीकर खड़ा है, इसलिए शान्ति से सब सुन रहे हैं । अगर यह न होता, तो मेरी आवाज इतने लोगों तक नहीं पहुँच पाती । मुझे दर्शन और प्रणाम कर लोगों को चला जाना पड़ता या मुझे ही छोटी जमात में बोलना पड़ता । आज तो इतनी ही जमात शान्ति से सुन रही है । लेकिन इससे दसगुनी होती, तो भी सुन सकती । इसकी कल्पना पहले के लोगों को हो ही नहीं सकती थी ।

विज्ञान से न केवल जीवन में स्थूल परिवर्तन होता है, बल्कि मानसिक परिवर्तन भी होता है । प्रिंटिंग प्रेस (छापाखाने) के कारण विज्ञान का कितनी आसानी से प्रचार हो सकता है, इसका कोई खयाल हमारे पूर्वजों को नहीं रहा होगा । उससे गलत बातों का भी प्रचार हो सकता है, यह अलग बात है । लेकिन जीवन को बदलनेवाली चीजें विज्ञान से पैदा होती हैं और वैज्ञानिकों ने जीवन को आकार दिया है, इसमें कोई शक नहीं । अग्नि की खोज के बाद सारे ऋषिगण भक्तिभाव से अग्नि के गीत गाने लगे । ये गीत वेदों में आते हैं । अब शायद अणुशक्ति के गीत गानेवाले ऋषिगण पैदा होंगे । आज तो वह संहार करने के लिए आयी है, संहारक के रूप में ही हमारे सामने खड़ी है । लेकिन उसका शिवरूप भी है, केवल रुद्ररूप ही नहीं । जब वह शिवरूप में प्रकट होगी, तब दुनिया का जीवन ही बदल देगी ।

आत्मज्ञान की सामर्थ्य

दूसरी ताकत जो जीवन को आकार देती है, वह है आत्मज्ञान । आत्मज्ञानी दुनिया में जहाँ-जहाँ पैदा हुए, उनकी बदौलत पूरा-का-पूरा जीवन बदल गया । ईसामसीह आये, गौतम बुद्ध आये, लाओत्से आये,

मुहम्मद पैगम्बर आये, नामदेव आये, तुलसीदास आये, माणिक्य वाचकर आये, जगह-जगह ऐसे महात्मा आये। ऐसे एक-एक शख्स के आगमन से लोगों के जीवन का स्वरूप बदल गया। लोगों के जीवन का स्वरूप बदलनेवाली यह दूसरी ताकत है।

साहित्य की शक्ति

दुनिया को बनानेवाली तीसरी ताकत है, साहित्य। वाल्मीकि आये। व्यास आये। दाँते आये। होमर आये। शेक्सपियर आये। रवीन्द्रनाथ आये। ऐसे लोग दुनिया में आये और दुनिया को ऐसी चीज दे गये, जो सदा के लिए जीवन को समृद्ध बना दे। दुनिया को उन्होंने ऐसी विचार-शक्ति दी, जिससे दुनिया का जीवन बदल गया। दुनिया को शान्ति की जरूरत हुई, तो शान्ति का विचार दिया। उत्साह की जरूरत हुई, उत्साह दिया। आशा की जरूरत हुई, आशा दी। जिस समय समाज को जिस चीज की जरूरत थी, वह चीज उन्होंने समाज को दी। दुनिया में जो बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ हुईं, उनके पीछे ऐसे विचारकों के विचार ही थे। ऐसे साहित्यिकों का साहित्य था, जिन्होंने पारदर्शन किया था।

वाणी : विज्ञान-आत्मज्ञान के बीच का पुल

इन तीन ताकतों ने आज तक दुनिया बनायी। इसके आगे भी जीवन के ढाँचे को स्वतन्त्र रूप देनेवाली ये ही तीन ताकतें हो सकती हैं : विज्ञान, आत्मज्ञान और साहित्य या वाक्शक्ति, जिसे 'वाणी' भी कहते हैं। विज्ञान से जीवन का स्थूल रूप बदलता है और वह मनुष्य के मन पर असर करनेवाली परिस्थितियाँ पैदा कर देता है। लेकिन वह सीधे मन पर असर नहीं करता। वाणी विज्ञान से आगे जाकर हृदय पर ही सीधा प्रहार करती है। वह हृदय तक पहुँच जाती है। फिर आत्मज्ञान अन्दर प्रकाश डालता है। विज्ञान बाहर से प्रकाश डालता है, तो आत्मज्ञान भीतर से प्रकाश करता है। इन दोनों के बीच वाणी पुल का काम करती है। वह दोनों

किनारों का संयोग कराती और दोनों तरफ रोशनी डालती है। तुलसी-दासजी कहते हैं :

"राम-नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिर हुँ जो चाहसि उजियार॥"

"अगर तू अन्दर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है, प्रकाश चाहता है, तो यह राम-नामरूपी मणिदीप जिह्वारूपी देहली-द्वार पर रख ले। इस द्वार पर दिया जलाते ही बाहर और भीतर दोनों तरफ प्रकाश फैल जाता है।" इतना अधिक उपकार वाणी करती है। मनुष्य को भगवान् की यह अप्रतिम देन है।

वाणी का सदुपयोग हो

वाणी की यह देन मनुष्य की बड़ी भारी शक्ति है। इस शक्ति का जहाँ दुरुपयोग होता है, वहाँ समाज गिरता है और जहाँ उसका सदुपयोग होता है, वहाँ समाज आगे बढ़ता है। ऋग्वेद में कहा गया है :

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।"

याने हम अनाज छानते हैं, तो उसमें से ठोस बीज ले लेते हैं और ऊपर का छिलका, कचरा फेंक देते हैं। वैसे ही जिस समाज में वाणी की छानबीन होती है, ज्ञानी पुरुष मननपूर्वक वाणी की छानबीन करते हैं और उत्तम, पावन, पवित्र, शुद्ध, निर्मल, स्वच्छ, खालिस शब्द ढूँढ़ निकालते हैं, उस शब्द का प्रयोग करते हैं, उस समाज में लक्ष्मी रहती है।

बहुतों का खयाल है कि सरस्वती और लक्ष्मी का विरोध है, लेकिन ऋग्वेद ने इससे बिलकुल उलटी बात कही है। यह कहना कितने अज्ञान की बात है कि लक्ष्मी और सरस्वती का वैर है। वाणी तो संयोजन-शक्ति है। वह तो अन्दर की दुनिया और बाहर की दुनिया को, आत्मज्ञान और विज्ञान को जोड़नेवाली कड़ी है। दुनिया में जितनी शक्तियाँ मौजूद हैं, उन सब शक्तियों को जोड़नेवाली अगर कोई कड़ी है, तो वह वाणी ही है। फिर उसका किसीके साथ वैर कैसे हो सकता है? वाणी सूक्ष्म-शक्ति

है। इसलिए उसके भीतर दूसरी शक्तियाँ छिपी रहती हैं। मेरा तो वाणी पर बहुत भरोसा है। निरन्तर बोलता ही रहता हूँ, सुनता भी जाता हूँ। इसीमें वाणी की महिमा है। श्रवण और कीर्तन दोनों मिलकर वाणी बनती है।

मैं 'प्रकाश' चाहता हूँ

आप साहित्यिकों से मैं अपने विचारों का प्रकाश चाहता हूँ। यह बिलकुल स्वतन्त्र शब्द है, हमारे हिन्दुस्तान का खास शब्द है। अंग्रेजी में एक शब्द है, 'प्रोपेगेंडा', जो बिलकुल ऊपर-ऊपर की चीज है। इसी तरह का दूसरा शब्द है, 'पब्लिसिटी'। लेकिन मैं न तो 'प्रोपेगेंडा' चाहता हूँ और न 'पब्लिसिटी' ही, मैं प्रकाश चाहता हूँ। मैं यह नहीं चाहता कि लोगों के सामने हमारे काम की बढ़ा-चढ़ाकर तारीफ की जाय। मैं यह भी नहीं चाहता कि हमारे काम की हर छोटी-बड़ी चीज बार-बार सर्वत्र बतलायी जाय। लेकिन इस कार्य के पीछे जो विचार हैं—जो बहुत ही मजबूत, गहरे और व्यापक हैं—उनका प्रकाश हम अपने व्यवहार और प्रयोगों से बढ़ायें। शुद्ध विचार लोगों को समझायें। इस वक्त हमें अधिक-से-अधिक गहरे, व्यापक और मजबूत विचार उपलब्ध हुए हैं। हमारे बाद जो लोग आयेंगे, उन्हें इससे भी अधिक मजबूत, गहरे और व्यापक विचार उपलब्ध हो सकेंगे। फिर भी हमें जो विचार उपलब्ध हुए हैं, वे विश्व-व्यापक विचार हैं। आत्मा की गहराई तक जानेवाले विचार हैं। आज तक के दार्शनिक और सन्त जितनी गहराई तक गये, उससे अधिक गहराई में हमें उतरना होगा। तभी सर्वोदय-विचार का यथार्थ दर्शन हो सकेगा।

साहित्यिक सर्वथा स्वतन्त्र

जो प्रामाणिक वैज्ञानिक और स्वतन्त्र साहित्यिक है, वह आत्मज्ञानी की तरह अत्यन्त स्वाधीन होता है। वह कभी अपने को बेच नहीं सकता। दुनिया चाहे उसकी माने या न माने, इसकी वह परवाह नहीं करता।

वह इस विषय में अत्यन्त सुरक्षित मनुष्य है। इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा है :

'स वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो'

यह वाग्विसर्ग—यह भागवत की भाषा है—जनता का अघविप्लव होगा। याने जो वाक्समूह जनता के पापों को धोनेवाला होगा, वही 'साहित्य' कहलायेगा। जनता के पापों को जो शब्द धोयेगा, वही सारस्वत होगा। बाकी सारा वाङ्मय ही रहेगा। साहित्य का अर्थ है, जीवन के सहित सतत ठहरनेवाली वस्तु। जिन्दगी का जो सम्बल है, वही साहित्य है। वह आपको निरन्तर अपने साथ रखने योग्य मालूम होगा। (३२)

(६) मनोमालिन्य कैसे मिटाया जाय ?

मन गौण : विज्ञान-आत्मज्ञान की दृष्टि में

बापू की आदत थी कि किन्हीं दो मनुष्यों के बीच झगड़ा होने पर दोनों को पास बुलाते और घण्टों उनके स्तर पर उतरकर बातें करते थे। इसमें कहीं वे सफल हुए और कहीं नहीं भी। वह भी एक तरीका है, पर वह समर्थ नहीं। वह व्यक्तिगत तरीका है और विज्ञान के युग के लिए ऐसा व्यक्तिगत तरीका समर्थ नहीं हो सकता। वह मानसिक युग का तरीका है। आगे विज्ञान का युग आ रहा है। उसमें 'आब्जेक्टिव' (सत्य) प्रधान है। किसके मन में क्या है, इसका कोई महत्त्व नहीं। विज्ञान सृष्टि के सामने मन को गौण समझता है और आत्मज्ञान भी उसे गौण ही मानता है। दोनों मन को गौण मानते हैं। आध्यात्मिकता कहती है कि मन का उन्मन बनना चाहिए। विज्ञान भी यही कहता है। ऐसी स्थिति में किसीमें मनोमालिन्य आ जाय, तो क्या करना चाहिए ? कहना होगा कि उस स्थिति में उपेक्षा से ही काम सधेगा। अभी हमने उपेक्षा की शक्ति पहचानी नहीं है। मन की भूमिका से ऊपर उठकर सोचेंगे, तभी काम होगा।

अरविन्द का अतिमानस-दर्शन

इसीलिए श्री अरविन्द 'सुप्रामेंटल' की बात करते थे । उनके मत से ऊपर जाकर परमेश्वर-दर्शन और परमेश्वर-स्पर्श के अमृतपान से परितुष्ट होकर मन उन्मन हो जाता है और उसके बाद वह नीचे आता है । इसी को अवतरण कहते हैं । मुक्ति हो गयी, तो समाप्ति हो गयी, ऐसा वे नहीं मानते । श्री अरविन्द कहते हैं—मुक्ति के बाद—मन उन्मन होने के बाद—फिर से कार्यक्रम शुरू होता है । वह भूमिका अतिमानस की भूमिका है । उसको वे 'अवतार' कहते हैं ।

अभी तक यही खयाल था कि मुक्त होने के बाद कोई शख्स नीचे उतरना चाहे, तो उतर सकता है और न उतरना चाहे, तो मुक्ति में लीन हो जायगा । किन्तु श्री अरविन्द का खयाल है कि वह गौण चीज है । शंकर आदि कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त कर लौट मत आओ । लेकिन श्री अरविन्द की दृष्टि से मुक्ति विश्व की सेवा करने का एक अवसर प्राप्त करना है । जब तक मुक्ति नहीं मिलती, तब तक विश्व की सेवा नहीं कर सकते । मुक्ति पाये बिना सेवा करने जायँगे, तो सम्भव है, सेवा न होकर और ही कुछ हो जाय ।

इसी तरह अगर हमें समाज-परिवर्तन करना है, हृदय-परिवर्तन करना है, तो अपने से पूछना होगा कि क्या हममें वह ताकत है ? वह ताकत प्राप्त करने के लिए पहले मुक्ति प्राप्त करनी होगी । पर उतने से ही बात खतम नहीं होती । परमेश्वर के पास जाकर वह 'सुप्रामेंटल' तक पहुँच जायगा । फिर उस स्थिति में आकर, इस दुनिया में अवतार लेकर सारे विश्व में अपनी इच्छित शक्तियों से विचार फैलायेगा और सबके जीवन में परिवर्तन लायेगा । क्योंकि हमें कुल समाज को दिव्य रूप देना है ।

मानसिक भूमिका से तो ऊपर उठिये !

यह तो एक विशाल दर्शन है । अभी हम ऊपर जाकर फिर अवतार लें, ऐसी आकांक्षा न रखें । अगर इतना बड़ा काम न कर सकेंगे,

तो भी हमें मानसिक भूमिका से तो ऊपर उठना ही चाहिए। नहीं तो समाज में से झगड़े मिटेंगे ही नहीं और उस घर्षण को कम करने के लिए सदैव तेल डालते रहना पड़ेगा। वास्तव में वह यन्त्र ही ऐसा हो जाना चाहिए कि उसमें घर्षण न हो, तेल की जरूरत न हो। इस शरीर में ढील नहीं है, तो भी हड्डी एक-दूसरे से टकराती नहीं। इनकी योजना ही ऐसी है कि घर्षण न हो। यह सारी व्यवस्था होती है। क्योंकि वहाँ प्रेमशक्ति काम करती है। पैर में तकलीफ होती है, तो हाथ तुरत सेवा करने लगता है। शरीर के अन्तर्गत जो प्रेमशक्ति है, उसीके कारण शरीर के अवयवों में घर्षण नहीं होता और उनसे अभीष्ट काम लिया जा सकता है। इसी तरह समाज की भी यन्त्र-रचना हो जाय, तो फिर तेल की डिब्बी की जरूरत नहीं रहेगी।

अभी मैंने अरविन्द के विचार रखे। ऐसे महान्-महान् लोगों के विचार जानने चाहिए। दुनिया के विचारकों के विषय में हम कुछ न जानें, यह ठीक नहीं है। विचारों में नवीनता क्या है, लोगों पर उनका क्या असर है, उनसे हम क्या ले सकते हैं—यह सब जानना चाहिए। (३४)

(७) सियासत + विज्ञान = सर्वनाश
रूहानियत + विज्ञान = सर्वोदय

यह विज्ञान का जमाना है। इस जमाने में अब सियासत में कोई ताकत नहीं रह गयी है। इन्सान के हाथों में नये-नये हथियार आ गये हैं। इसलिए अगर फूट और तफरके बढ़ानेवाली सियासत बढ़ेगी, तो इन्सान का खात्मा होनेवाला है। पार्टीवाले यह बात महसूस नहीं करते, यह उनकी जहालत है। असली बात तो यह है कि आज नये-नये हथियारों की ईजाद हो रही है और वे हथियार ऐसे खतरनाक हैं कि उनकी बदौलत एक दिन दुनिया का खात्मा होने की नौबत भी आ सकती है, अगर हमारे तफरके बढ़ें। इसलिए समझदार लोगों को चाहिए कि वे सियासत को दूर करें और रूहानियत से अपने मसले हल करें। मिली-जुली, जोड़नेवाली

सियासत चाहिए। आज तक जो सियासत रही, वह जोड़नेवाली नहीं, तोड़नेवाली ही रही। इसलिए मैं 'सियासत' लफ्ज ही छोड़ देना चाहता हूँ।

आखिर रूहानियत ही रास्ता

जब तक आप रूहानियत का रास्ता न लेकर सियासत का ही रास्ता लेंगे, तब तक आपके मसले हल होनेवाले नहीं हैं। अल्जीरिया, कोरिया, तिब्बत, ताइवान, हिन्दएशिया, कश्मीर—ऐसे कई मसले हैं! पुराने मसले कायम हैं और नये भी पैदा हो रहे हैं। इसलिए सियासत से आपके मसले हल होनेवाले नहीं हैं। मेरी बात पार्टीवालों में से कुछ लोग समझ रहे थे। वे रूहानियत का नाम लेते थे। रूहानियत का नाम सबको प्यारा है, उनको भी प्यारा था। इसलिए वे कबूल करते थे। लेकिन कबूल करके फिर से अपना टट्टू पुरानी राह पर ही लाते थे।

मैंने मजाक में कहा : "तुम मर जाओगे, तो तुम्हारे लड़के रूहानियत को उठा लेंगे!" वे कहने लगे : "हमने जो चीज चलायी, वही हमारे लड़के भी उठायेंगे।" मैंने कहा : "ठीक है, तुम्हारे लड़के नहीं उठायेंगे, लेकिन तुम्हारे लड़के के लड़के याने तीसरी पीढ़ी रूहानियत को उठा लेगी। सियासत से मसले हल नहीं होंगे, क्या यह बात चौथी पीढ़ी के खयाल में भी नहीं आयेगी?" इस तरह उनसे मैंने कहा, किन्तु अपनी बात मैं उनको पूरी तरह समझा नहीं सका। मैंने हार मान ली।

मैं पार्टीवाली सियासत के खिलाफ

आज सभी जगह पार्टीवाली बात चल रही है। नयी-नयी पार्टियाँ बन रही हैं, पुरानी पार्टियाँ मजबूत की जा रही हैं। लेकिन सियासी पार्टियों से काम नहीं बनेगा। इसलिए एक ऐसी स्वतन्त्र जमात चाहिए, जो गैरजानिबदार होकर अवाम की खिदमत करेगी। आपको मालूम है कि इस समय मैंने अपनी आवाज इस पार्टीवाली सियासत के खिलाफ उठायी है। इसके लिए गाँव-गाँव की मिली-जुली ताकत

खड़ी करनी होगी । हुकूमत विकेन्द्रित करनी होगी, अपनी सारी ताकत रूहानियत की राह पर लगानी होगी और जज्बा पैदा किये बिना चर्चा करके मसले हल करने होंगे । मैं यह एक नयी चीज समझा रहा हूँ ।

जयप्रकाश नारायण, केरल के केलप्पनजी, बिहार कांग्रेस के एक प्रमुख नेता वैद्यनाथ बाबू आदि अपनी-अपनी पार्टी छोड़कर इस काम में आये हैं । ऐसे कुछ नाम मेरे पास हैं, फिर भी कई नाम ऐसे भी हैं, जिन पर मैं असर नहीं डाल सका । लेकिन मुझे इस बात का ताज्जुब है कि इतने से लोग भी मेरी बात कैसे समझ रहे हैं ! मेरी बात कोई समझता नहीं, इसका मुझे अचरज नहीं होता । बल्कि मेरी बात थोड़े लोग भी क्यों न हों, पर समझते हैं, इसीका मुझे अचरज होता है । कुछ लोग ऐसे हैं, जो मेरी बात करीब-करीब समझते हैं । आज भी वे भाई मेरी बात करीब-करीब समझ रहे थे । लेकिन उनका अपना भी कोई खयाल है । समझाना मेरा काम है । उसका नतीजा क्या आता है, इसकी फिक्र मैं नहीं करता । फल को छोड़ना, उसका त्याग करना, यह बात मैं 'गीता' से सीखा हूँ । नतीजा भगवान् पर छोड़ देता हूँ । मैं उसकी फिक्र नहीं करता । कितने लोग मेरी बात समझते हैं और कितने नहीं समझते, यह देखना मेरा काम नहीं है । समझाना और लोगों की खिदमत करना मेरा फर्ज है और यही मैं करता हूँ ।

लोगों की ताकत बनायें

पार्टीवाले लोग भी अच्छी और सच्ची नीयत से खिदमत करना चाहते हैं, लेकिन वे कर नहीं पाते । एक पार्टी खिदमत करने जाती है, तो दूसरी पार्टी उसकी तरफ शक-शुबह की निगाह से देखती है । दूसरी पार्टी खिदमत करती है, तो पहली उसकी तरफ शक की निगाह से देखती है । इस तरह देखने का नतीजा यह होता है कि जिनकी खिदमत होनी चाहिए, उनकी खिदमत नहीं होती । सरकार से थोड़ी खिदमत होती है, पर उससे लोगों की ताकत नहीं बन पाती । लोगों की ताकत नहीं बनती,

यह बहुत बड़ी बात है । मगरिब (पश्चिम) से जो सियासत आयी, उसने हमें तोड़ा है । पहले से ही यहाँ तफरके, टुकड़े मौजूद थे, मगरीबी सियासत ने और बढ़ा दिये । मजहब के भेद, जबान के भेद, जाति के भेद—इस प्रकार से तरह-तरह के भेद मौजूद थे । वे उस सियासत के कारण और भी बढ़े । अलग-अलग पार्टियाँ बनीं । भेदों में इजाफा हुआ । एक-एक पार्टी में महत्त्वाकांक्षी लोग होते हैं । वे भी अपना-अपना गुट बनाते हैं । एक-एक मन्त्री का अपना एक-एक गुट रहता है । अनेक पार्टियाँ, फिर एक-एक पार्टी के अलग-अलग गुट, गुट के गुट ! नतीजा यह होता है कि देश की ताकत नहीं बनती ।

लश्कर सियासत पर हावी न हो

पाकिस्तान में अयूब आया । उसी वक्त एकदम सब पोलिटिकल पार्टियाँ खतम हो गयीं । उनके दफ्तरों पर ताले लग गये ! याने ताकत के सामने सियासत की कुछ नहीं चलेगी । 'मॉडर्न मैशिनाइज्ड आर्मी' जिनके हाथ में रहेगी, कुल सियासत उन्हींके हाथ में जायगी । उनके सामने वह खतम भी हो सकती है । जिनके हाथ में लश्कर की ताकत रहेगी, उन्हींके हाथों में ये सियासतदाँ भी रहेंगे । इससे आगे जो लोग रूहानियत की राह पर चलेंगे, वे उनकी तलवार छीन लेंगे । उनको तलवार छीनने के लिए इनको अपने हाथ में तलवार उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी । जिनके हाथों में आज तलवार है, उनके दिल और दिमाग में ये रूहानियत की राह पर चलनेवाले लोग बैठेंगे । नतीजा यह होगा कि जिन्होंने अपने हाथों में तलवार उठायी है, वे खुद-ब-खुद वह तलवार कारखानों में हल बनाने के लिए भेज देंगे ।

आनेवाला जमाना मेरा

अभी मैं लश्करवालों के सामने बोलकर आया हूँ । मेरी यह खुशकिस्मती है कि मुझे उनके सामने बोलने का मौका मिला । इसका कारण यह है कि मैं सियासत से अलग हूँ । सियासतवाला कोई हो, तो

वह लश्कर के सामने बोलने के लिए नहीं जा सकता। वहाँ भी मैंने अपनी रूहानियत के विचार उनके सामने रखे। रूहानियत की बात उनको भी जँचती है। मैं मायूस नहीं होता। इसलिए कि मैं जानता हूँ कि आनेवाला जमाना मेरा है, आपका नहीं, नेताओं का नहीं।

आज इन सियासतदाँ का बड़ा जोर है। लेकिन आप देखेंगे कि एक वक्त ऐसा आयेगा, जब जिन हाथों ने एटम बम बनाया, वे ही हाथ उन बमों को छोड़ेंगे और लोगों की खिदमत में लगेंगे। जितने लोग सियासत से अलग रहकर रूहानियत का आसरा लेंगे, पनाह लेंगे, वे लोग विज्ञान के जमाने में टिकेंगे नहीं। विज्ञान के जमाने में रूहानियत रास्ता दिखलायेगी और विज्ञान रफ्तार बढ़ायेगा। मोटर में एक यन्त्र राह दिखानेवाला और दूसरा रफ्तार बढ़ानेवाला होता है। विज्ञान आपकी जिन्दगी की रफ्तार बढ़ायेगा और रूहानियत जिन्दगी को दिशा दिखायेगी। इस तरह दोनों की मदद से आपकी जिन्दगी चलेगी। अगर सियासत बीच में आयेगी और जिन्दगी में दखल देगी, तो आपकी मोटर गड्ढे में जायगी।

सर्वनाश बनाम सर्वोदय!

रूहानियत और विज्ञान एक हो जायँ, तो दुनिया में बिहिश्त (स्वर्ग) उतरेगा, यह आप खूब समझ लीजिये। विज्ञान का फायदा उठाना है, उससे काम लेना है, तो उसके साथ रूहानियत को जोड़ना होगा। और अगर उसका फायदा न उठाना हो, उसके बदौलत मर मिटना हो, तो बीच में सियासत लानी चाहिए।

इन्सान इस तरह नाहक खतम होना नहीं चाहता। पर होता क्या है? अलग-अलग पार्टी के लोग एक-दूसरे से मिलते भी नहीं हैं! चुनाव आता है, तब एक पार्टी के लोग अवाम से कहते हैं कि तुम हमें चुनकर दो, तो हम तुम्हें जन्नत में ले जायँगे। दूसरी पार्टी को चुनकर दोगे, तो वह तुम्हें जहन्नुम में ले जायगी। ठीक इसी तरह दूसरी पार्टीवाले भी अवाम

से बोलते हैं। याने अवाम के सामने एक-दूसरे को गाली देना, नुक्ताचीनी करना ही उनका प्रोग्राम रहता है। फिर आपस में टकराते हैं। मेरा राज चला, तो वे मुझसे टकराते हैं, उनका राज चले, तो मैं उनसे टकराता हूँ—इस तरह होता है। तब बीच में अवाम तबाह हो जाती है। फिर देखते-देखते लश्कर-राज आ जाता है।

दिल और दिमाग नया बने

आप देख रहे हैं कि हर सूबे में निर्माण का बहुत बड़ा प्रयत्न हो रहा है। लेकिन क्या नया समाज बन रहा है ? क्या पुराने दिमागवाले पुराने इन्सान में कुछ फर्क पड़ रहा है ? क्या कुछ नयी कद्रें (वैल्यूज) बन रही हैं ? अगर इन सब सवालों का जवाब 'नहीं' है और आज भी अगर वे ही पुराने झगड़े, फिरकापरस्ती, संगदिली, छोटे-छोटे जज्बात हैं, तो फिर मकानात, खेती और सड़कों में फर्क होने से आखिर क्या होगा ? वैसे तो सैलाब आये या जलजला हो जाय, तब भी क्या फर्क नहीं पड़ेगा ? अस्सी फी सदी मकानात वगैरह ढह जायँगे, उन्हें नये सिरे से बसाना होगा। पर नया बसा लेने से हुआ क्या ? कुदरत, मकानात, कपड़े, पहनने का ढंग आदि सब बदला, लेकिन दिल और दिमाग में कोई बदल नहीं हुआ, तो इतना ही होगा कि पुराने जमाने में जो झगड़े छोटे पैमाने पर होते थे, वे अब विज्ञान की वजह से बड़े पैमाने पर होंगे। दिल और दिमाग में फर्क न पड़ने से इन्सान की जिन्दगी में इनकलाब नहीं आ सकता। रूस में कम्युनिज्म आया, तो क्या हुआ ? जार के हाथ में जो ताकत थी, उससे ख्रुश्चेव के हाथ में क्या कम है ? जार गया और स्टालिन आया। अब स्टालिन गया और ख्रुश्चेव आया। कुछ साल पहले यहाँ परबुल्गानिन और ख्रुश्चेव आये थे। यहाँ पर उनकी खूब पूजा-अर्चा हुई। उसके बाद उन दोनों में मुखालिफत हुई, तो अब बुल्गानिन का पता ही नहीं है ! पहले राजाओं के जमाने में जो होता था, वही इस जमाने में भी हुआ। इनकलाब तब होता है, जब प्यार से दिल बदलता है।

नया इन्सान बनाइये

आज सरकार कुछ काम करती है, लेकिन गाँव-गाँव के लोग क्या कहते हैं ? क्या वे मिल-जुलकर काम करने लगे हैं ? जमीन की मिल्कियत मिटाने लगे हैं ? अपना मन्सूबा बनाने लगे हैं ? अगर यह सब होता है, तो नया इन्सान बनेगा; नहीं तो नयी दुनिया बन जायगी, तब भी नया इन्सान नहीं बनेगा ! सरकार की तरफ से जो काम किया जाता है, उससे दुनिया बनती है, लेकिन नया इन्सान नहीं बनता । नया इन्सान बनाने का काम वे करते हैं, जो रूहानी ताकत को पहचानते हैं । माली हालत बदलने की बात बाहर की चीज है । अन्दर की चीज बदलनी हो, तो रूहानी ताकत चाहिए । नयी राह पर चलकर रूहानी ताकत बढ़ाने की हमारी यह एक छोटी-सी कोशिश हो रही है ।

हर इन्सान में ताकत पड़ी है । अगर हम ताकतों को जोड़ना चाहते हैं, तो जोड़नेवाली तरकीब चाहिए । जोड़नेवाली तरकीब सियासत या मजहब नहीं, रूहानियत ही हो सकती है । मैंने मजहब और रूहानियत में जो फर्क किया है, उसे समझने की जरूरत है । मजहब पचास हो सकते हैं, लेकिन रूहानियत एक ही है । मजहब, सियासत, जबानें चन्द लोगों को इकट्ठा करती हैं और चन्द लोगों को अलग करती हैं। लेकिन रूहानियत कुल इन्सानों को एक बनायेगी । इसलिए आप इस तहरीक की तरफ माली तबदीली लानेवाली तहरीक की निगाह से मत देखिये, बल्कि अखलाकी और रूहानी तरक्की की निगाह से देखिये । तभी इसकी असलियत आपको मालूम होगी और आपके दिल का रुझान उसकी तरफ होगा । (३५)

(८) विश्व का अद्भुततम जादू : विश्वास

इसके आगे हमारे लिए किसी प्रकार संकुचित बनना या बने रहना सुखकर नहीं होगा । आज विज्ञान की शक्ति मदद में आ गयी है और

आत्मज्ञान की शक्ति तो अपने देश में पहले से ही थी। आत्मज्ञान हमें व्यापकता तो सिखाता ही था, किन्तु अब विज्ञान उसकी भौतिक आवश्यकता भी बताता है।

विश्वास-शक्ति का महत्त्व

तीसरी भी एक शक्ति है और मुझे इन तीनों शक्तियों का दर्शन हो गया है। उस तीसरी शक्ति को मैं 'विश्वास-शक्ति' कहता हूँ। विज्ञान-युग में राजनैतिक, सामाजिक योजनाओं और समाज-शास्त्र में इसकी बहुत जरूरत है। हममें जितनी विश्वास-शक्ति होगी, उतने ही हम इस युग के अनुरूप बनेंगे। किन्तु इन दिनों बहुत ही अविश्वास दीखता है; खासकर राजनैतिक, धार्मिक और पांथिक क्षेत्र में। यह पुराना चला आ रहा है, फिर भी टिकनेवाला नहीं है। अगर हम टिकाना चाहें, तो भी न टिकेगा। राजनीति में अविश्वास को एक बल माना जाता है। उसे 'सावधानता' का लक्षण माना जाता है। लेकिन मैं मानता हूँ कि जिस क्षण मन में यत्किंचित् भी अविश्वास पैदा हो, वह क्षण हमारे लिए असावधानता का है। पूर्ण विश्वास के बिना राजनीति सुधर नहीं सकती। राष्ट्रों में झगड़े बढ़ेंगे, पांथिक झगड़े बढ़ेंगे और विज्ञान-युग में उसका परिणाम बहुत खतरनाक होगा।

इसलिए वेदान्त और विज्ञान के साथ मैंने विश्वास को भी जोड़ दिया है। मैं आजकल इन्हीं तीनों तत्त्वों की उपासना करता हूँ। मैंने संस्कृत में एक श्लोक बनाया है, जो इन दिनों मेरे जप का मन्त्र बन गया है। वह इस प्रकार है :

वेदान्तो विज्ञानं विश्वासश्चेति शक्तयस्तिस्रः।
येषां स्थैर्ये नित्यं शान्तिसमृद्धी भविष्यतो जगति ॥

याने वेदान्त, विज्ञान और विश्वास ये तीन शक्तियाँ हैं। इन तीनों के स्थैर्य से दुनिया में शान्ति और समृद्धि होगी। आज दुनिया को

शान्ति और समृद्धि की जरूरत है। वह वेदान्त, विज्ञान और विश्वास से ही हो सकेगी।

वेदान्त और विज्ञान का अर्थ

'वेदान्त' याने वेद का अन्त, वेद का खातमा। वेद याने सब प्रकार के काल्पनिक धर्म। दुनिया में जितने धर्म हैं, उन सबका अन्त ही वेदान्त है। इसलिए उसमें इस्लामान्त, जैनान्त, बौद्धान्त, सिखान्त, क्रिस्तान्त इन सबका अन्त आ जाता है। सत्य की खोज, सत्य की पहचान और सत्य को मानना ही वेदान्त है। 'विज्ञान' याने सृष्टि-तत्त्व की खोज। अगर हमारा शारीरिक जीवन उसके अनुकूल बने, तो सम्पूर्ण स्वास्थ्य की उपलब्धि होगी। आगामी युग का चित्र मैं अपने मन में यही रखता हूँ कि उस युग में बीमारी ही न होगी। उपाय उपलब्ध होने पर भी उनके उपयोग का अवसर ही उपलब्ध न होगा। आँखों के लिए उत्तम-से-उत्तम चश्मा उपलब्ध रहेगा, पर आँखों को उसकी किसी प्रकार की जरूरत ही नहीं रहेगी। हर गाँव में डॉक्टर हो, ऐसा एक आदर्श इन दिनों माना जाता है। लेकिन आगे की दुनिया में डॉक्टर का नाम ही नहीं रहेगा, सभी तन्दुरुस्त रहेंगे। बीमारियों के कारणों का निर्मूलन नहीं होता, इसीलिए उपायों के उपयोग करने का मौका मिलता है। जब तक यह नहीं होता, तब तक सृष्टि-विज्ञान-तत्त्व का चिन्तन कर उसके अनुसार हम अपना जीवन नहीं बना सकेंगे। इसलिए विज्ञान और परस्पर विश्वास होना चाहिए। (३६)

(१) भारत ही विज्ञान का एकमात्र अधिकारी

हमारा देश बहुत पुराना है और दुनिया में इसकी अपनी विशेषता है। दुनिया जानती है कि भारत द्वारा कभी भी दूसरे देशों पर आक्रमण नहीं हुआ। जिस वक्त भारत में सत्ताशाली राजा और सम्राट् थे, भारत विद्या और कला से सम्पन्न हो ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँचा हुआ था, तब भी उसके द्वारा दूसरे देशों पर आक्रमण होने का एक भी उदाहरण नहीं है। भारत कोई छोटा-मोटा नहीं, बहुत बड़ा लम्बा-चौड़ा विशाल देश है। फिर भी इतने बड़े देश के इतिहास में विदेशों पर आक्रमण करने की एक भी घटना नहीं घटी ! यहाँ से विद्या और धर्म का सन्देश लेकर जो भारतीय चीन, जापान, लंका, तिब्बत, ब्रह्मदेश और मध्य-एशिया गये, वे साथ में कोई शस्त्र लेकर नहीं गये और न कोई सत्ता लेकर ही गये। वे केवल ज्ञान-प्रचार के लिए गये और थोड़े-से व्यापारी व्यापार के लिए भी गये। लेकिन कभी भी, कहीं से यह शिकायत नहीं आयी कि भारत ने दूसरे पर विचार का भी हमला किया। भारत अपनी सत्ता दूसरे देश पर चलाना तो चाहता ही नहीं, परन्तु विचार का भी हमला उसने कभी नहीं किया। केवल विचार समझाकर ही सन्तोष रखा। यह भारत की एक बड़ी खूबी है। भारतीय इतिहास की यही खूबी हमारे लिए बहुत गौरव की बात है। आज वर्षों बाद—ठीक बोलना हो, तो कोई दो हजार साल बाद—भारत को यह मौका मिल रहा है कि सारे भारत में हम अपनी सभ्यता को और भी उज्ज्वल रूप में पेश करें और यह दिखा दें कि आज के विज्ञानयुग में, विज्ञान के लायक अगर कहीं का विचार है, तो भारत का ही विचार है।

सदैव मुक्त-चिन्तन का पक्षपाती

हिन्दुस्तान में हमने किसी एक पुरुष के नाम से धर्म नहीं चलाया। यह इस देश के लिए अभिमान की बात हो सकती है। अगर हम उनका नाम लेकर, उनके कार्य को आगे बढ़ाने की प्रतिज्ञा करते हैं, तो उनके नाम का गौरव हो सकता है। फिर भी हमने किसी भी महापुरुष के नाम के साथ अपने विचार को नहीं बाँधा, जैसे कि ईसा ने ईसाई-धर्म को 'क्राइस्ट' के साथ बाँध दिया है। हम ईसा का भी नाम बड़े गौरव के साथ लेते हैं, क्योंकि महापुरुषों में हम फर्क नहीं करते। फिर भी वे कितने भी बड़े हों, हम यह मानने को राजी नहीं कि किसी एक महापुरुष के जरिये ही हम भगवान् के पास पहुँच सकते हैं। हमारा और भगवान् का सीधा सम्बन्ध हो सकता है। हमारे बीच ऐसी किसी एजेन्सी की आवश्यकता नहीं। अतएव हम भारतीयों ने हमेशा मुक्त-चिन्तन किया है। हिन्दुस्तान के दर्शन ने विज्ञान के साथ कभी झगड़ा नहीं किया। शंकराचार्य ने तो यहाँ तक कह रखा है कि यदि साक्षात् श्रुति भी 'अग्नि ठंढी है' ऐसा कहे, तो हम उसे मानने के लिए बाध्य नहीं। अर्थात् विज्ञान की प्रत्यक्ष अनुभव की जो बात होगी, उसके विरुद्ध वेद भी नहीं बोलते और न बोलना चाहते हैं।

धर्म-विचार विज्ञान से अविरुद्ध

इतिहास के जानकारों को मालूम है कि यूरोप में धर्म और विज्ञान के बीच बाकायदा लड़ाई चली। विज्ञान ने कहा कि "पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द घूमती है", तो वहाँ के धार्मिकों ने उसका यह कहकर विरोध किया कि "यह बात हमारे धर्मशास्त्र के विरुद्ध है।" विज्ञान का जहाँ ज्यादा-से-ज्यादा विकास हुआ, वहीं उसका घोर विरोध भी हुआ। विज्ञान को धर्मवालों के खिलाफ खड़ा होना पड़ा और धर्मवालों ने भी विज्ञानवालों को खूब सताया। यहाँ तक कि कितनों को जेलों में डाला और मारा भी। ईसाई संस्थाओं और पोप की तरफ से उन्हें बहुत ज्यादा तकलीफें भोगनी पड़ीं।

गैलिलियो को इसलिए जेल में डाला गया कि वह यह कहे कि "पृथ्वी नहीं घूमती"। लेकिन वह समझता था और उसके प्रयोगों ने उसे दिखा दिया था कि पृथ्वी तो घूमती रहती है। आखिर उसे जब बहुत सताया गया, तो उसका दिल थोड़ा कमजोर होने लगा। लेकिन उसकी विवेक-बुद्धि जाग्रत हो गयी और उसने कहा: "नहीं, मैं चाहता हूँ कि पृथ्वी न घूमे। लेकिन वह घूमती" है, क्या करूँ? इसलिए मैं नहीं कह सकता कि पृथ्वी नहीं घूमती"—'It moves and moves and moves, not withstanding myself it moves.'

किन्तु हिन्दुस्तान में धर्म-विचार से विज्ञान के साथ ऐसा कोई विरोध नहीं आया। ज्ञान-शिरोमणि शंकराचार्य ने जाहिर कर दिया कि **'ज्ञानं न पुरुषतन्त्रम्, किन्तु वस्तुतन्त्रम्'** याने ज्ञान मनुष्य की मर्जी पर नहीं, वस्तु के स्वरूप पर निर्भर है। इसलिए वस्तु-स्वरूप के बारे में किसीकी आज्ञा नहीं चल सकती। वस्तु-स्वरूप के सामने सारी आज्ञाएँ कुण्ठित हो जाती हैं। वस्तु का स्वरूप वस्तु ही निश्चय करेगी, मनुष्य-बुद्धि नहीं। इसी तरह मनुष्य यह नहीं मान सकता कि "वर्तुल वर्तुल नहीं, त्रिकोण है और त्रिकोण वर्तुल है।" त्रिकोण का स्वरूप त्रिकोण पर निर्भर है, तो वर्तुल का स्वरूप वर्तुल पर। 'पृथ्वी' का स्वरूप पृथ्वी पर और सूर्य का स्वरूप सूर्य पर निर्भर है। मेरी मर्जी मेरे वाक्यों या मेरे अर्थों पर निर्भर नहीं। शंकराचार्य ने यह कहकर मानो विज्ञान के लिए 'मेग्नाचार्टा' ही दे दिया कि "विज्ञान! खुलकर सामने आओ, हमारे धर्म-विचार से तुम्हारा कोई विरोध नहीं।" इस तरह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान में धर्म-विचार से विज्ञान का कभी भी विरोध नहीं माना गया। अब भारत के सामने मौका है कि वह दिखा दे कि भारत का धर्म-विचार वैज्ञानिक है और हम विज्ञान का स्वागत करते हैं। हम चाहते हैं कि विज्ञान खूब आये। उससे भारत का विचार परिपुष्ट होनेवाला है। हमारे आत्मज्ञान या वेदान्त-दर्शन को, जिसका दर्शन इस भारत-भूमि में हुआ था, विज्ञान से बल मिलेगा। वह कुण्ठित नहीं होगा। विज्ञान से हमारा धर्म कुण्ठित होनेवाला नहीं है।

ईश्वर कर्म-सापेक्ष

यूरोप में यह धर्म-विचार चला कि "परमेश्वर एक सृष्टिकर्ता है और दुनिया के किसी एक घोंसले में बैठ, वहीं से सारी दुनिया पर राज्य करता है।" लेकिन हमारे दार्शनिकों का मत है कि परमेश्वर ऐसा सुलतान नहीं है। ईश्वर तो कर्म-सापेक्ष है। वह बारिश की माफिक बरसेगा, लेकिन खेती हम ही करेंगे। वह हमारे कर्तृत्व के खिलाफ नहीं जा सकता। वह तो कर्म का फल देकर मुक्त रहेगा, किसी पर कोई चीज नहीं लादेगा। शास्त्रकारों ने कह दिया कि हम किसी को भी दुनिया का पति, परमेश्वर या लार्ड नहीं मानते। ऐसे पति को मानना अधर्म है। ईश्वर एक घोंसले में नहीं, घट-घट में विराजमान है। वह अन्तर्यामी है, जो हमारे हृदय में रहता है, हमारी अन्तःप्रेरणा के अन्दर छिपा है। इस तरह हमारे आगे एक मैदान खुला पड़ा है। अगर विज्ञान पर किसीका अधिकार हो सकता है और विज्ञान का अत्यन्त निर्भयता के साथ कोई स्वागत कर सकता है, तो हिन्दुस्तान ही कर सकता है।

सह-अस्तित्व का आदर्श

हिन्दुस्तान आक्रमण में नहीं, प्रेम में विश्वास रखता है। भारत में शक, हूण, आर्य, यहूदी, पारसी, ईसाई, चीनी, जापानी सभी आये। हमने सबको कबूल किया, सबको बसाया, सब पर प्यार किया, सबको 'एडजस्ट' किया। हमने 'सह-अस्तित्व' की कल्पना हिन्दुस्तान में चलायी। आज हिन्दुस्तान के 'पंचशील' का नाम सारी दुनिया में बोला जा रहा है। पंचशील का अर्थ है, जीवन में विविधता को सहन करना। यही भारतीय संस्कृति है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अपने-अपने अलग जीवन हैं। किन्तु भारतीय संस्कृति बता रही है कि वैश्य या शूद्र को मुक्त होने के लिए ब्राह्मण बनने की जरूरत नहीं। निष्काम भावना से जो अपने-अपने कर्म में रत रहेंगे, वे उसी कर्मयोग से परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। **'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।'** अपने-अपने कर्म में तत्पर रहकर

निष्काम भावना से भगवत्-पूजा समझकर व्यापार करनेवाले व्यापारी भी मुक्त हो सकते हैं। हमारा धर्म बतलाता है कि व्यापारी अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए पैसा रखें और स्वयं उसके ट्रस्टी बनें। इस तरह यदि ट्रस्टी बनकर उसका उपयोग करते हों, तो व्यापार और धन-संग्रह करते हुए भी वे परमेश्वर के पास पहुँच सकते हैं, मोक्ष पा सकते हैं। यह बहुत बड़ी बात थी। यही सह-अस्तित्व (Co-existence) है। यानी यहाँ दुनिया-भर की भिन्न-भिन्न जमातें रह सकती हैं; अपना-अपना जीवन जी सकती हैं। अपने-अपने देवता की भक्ति कर सकती हैं, अपने-अपने धर्म-ग्रन्थों का पठन कर सकती हैं। एक-दूसरे के साथ टकराने का कोई कारण ही नहीं। इसी तरह सभी प्रेम और निष्काम भाव से समाज की सेवा करने लगें, तो सुख से जी सकते हैं। कोई कारण नहीं कि जीवन का एक ढाँचा दूसरों पर लादा जाय।

विचार लादने का प्रश्न ही नहीं

एक भाई ने हमसे पूछा : "आपका यह ग्रामदान तो दीखने में बड़ा उमदा दीखता है, लेकिन शायद लादा जा रहा है, यानी यदि आप 'जमीन समाज की' कहते हैं, तो मनुष्यों को अपने-अपने ढंग से जीने की सहूलियत रहेगी या नहीं ?"

हमें ऐसे प्रश्नों से खुशी होती है। हम चाहते हैं कि सद्-विचार में भी अगर कोई असद् अंश रह गया हो, तो उसे साफ कर लेना चाहिए। कितने भी बड़े सद्-विचार को हम जैसा-का-तैसा निगलने के लिए तैयार नहीं, विचार की छानबीन ही करना चाहते हैं। बहुत-से लोग ग्रामदान का नाम सुनकर खुश हो जाते और कहते हैं कि अब तो बाबा जमीन की मालकियत मिटाने की बात कहता है। अब जमीन सबकी हो जायगी। कुल जमीन इकट्ठा कर सहकारी खेती के बड़े-बड़े प्रयोग किये जायँगे। फिर बाबा से पूछा जाता है कि "क्या आप ऐसा करनेवाले हैं ?" मैं कहता हूँ : ऐसा कर भी सकते हैं और नहीं भी। ग्रामदान में हम 'भी-वादी' हैं,

'ही-वादी' नहीं। याने यह भी होगा और वह भी होगा। गाँववाले जिस तरह सोचेंगे, उस तरह होगा। ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य की घोषणा है। गाँव-वाले अपने-अपने गाँव में मिल-जुलकर जो व्यवस्था करेंगे, वही व्यवस्था चलेगी। उन पर बाहर से कोई व्यवस्था लादी नहीं जायगी। अगर वे अलग-अलग खेती करना चाहेंगे, तो अलग खेती कर सकेंगे और यदि दो-चार-दस इकट्ठा होना चाहें या सारे गाँव को इकट्ठा करना चाहें, तो वैसा भी कर सकेंगे। सबकी आवाज एकमत से काम करेगी। अगर भिन्न आवाज हुई, तो दोनों प्रकार के प्रयोग चलेंगे। लेकिन मालकियत गाँव की रहेगी और परिणामस्वरूप गाँव-गाँव में स्वराज्य आयेगा।

एक होने में ही विज्ञान की उपयोगिता

जब हम गाँव में ग्राम-स्वराज्य का संकल्प करते हैं, जमीन सबकी बनाते हैं, तो हरएक को थोड़ी-थोड़ी जमीन देते हैं। जिनको ज्यादा जमीन नहीं दे सकते, उन्हें ग्रामोद्योग देते हैं और गाँव की मुख्य जरूरतें गाँव में ही पूरी करने की योजनाएँ करते हैं। तभी हम अपने गाँव में पूरा अनाज पका सकते हैं और आवश्यक अनाज अपने पास रखकर बचा अनाज शहरों को दे सकते हैं। हम शहरों को भूखों मारना नहीं चाहते, क्योंकि हिन्दुस्तान में अनाज खूब पैदा हो सकता है। फसल खूब बढ़ सकती है। एक-एक व्यक्ति विज्ञान का उपयोग नहीं कर सकता। इसीलिए मैंने कहा कि "विज्ञान, भारत में आओ, तुम्हारा स्वागत है! तुमसे हमारे किसी धर्म-विचार और तत्त्वज्ञान में बाधा नहीं आती।" हम वैज्ञानिक बनना और विज्ञान का उपयोग भारत की खेती में करना चाहते हैं। किन्तु अगर सारे गाँववाले मिल-जुलकर काम करें, तो विज्ञान का उपयोग अच्छी तरह कर सकते हैं। फिर ये अनाज के भाव भी हमारे हाथ में आ सकते हैं। आज गाँववाले अपना अनाज बाजार की चीज समझ-कर उसे बाजार में ले आते हैं और उसका मूल्य कम हो जाता है। वे अनाज को अपने घर की चीज क्यों नहीं बनाते? गाँववालों को अपने घर का

अनाज बेचकर मौके पर बाहर से खरीदने की नौबत क्यों आये ? ये सारी बातें सम्पन्न करने के लिए ही 'ग्रामदान' है । ग्रामदान में किसीको मजबूर बनाने की बात हरगिज नहीं । अगर ग्रामदान में किसीको मजबूर बनाने का विचार होता, तो भारतीय संस्कृति को जाननेवाला मैं उसे हरगिज कबूल न करता ।

भारत को त्याग का विचार अतिप्रिय

भारतीयों से उनकी शक्ति के अनुरूप थोड़ा-बहुत त्याग करने की बात कही जाय, तो उन्हें वह विचार बहुत पसन्द पड़ता है । बाबा के व्याख्यानों के लिए हजारों की भीड़ उमड़ पड़ती है, इसका कारण और कुछ नहीं, उसका त्याग और प्रेम का सन्देश सुनाना ही है । वह भारतीय संस्कृति का सन्देश है, इसलिए उसे सुनने के लिए लोग उत्सुक रहते हैं और उमड़ पड़ते हैं । इस जमाने में त्याग कुछ कठिन है, जब कि देश में अत्यन्त दारिद्र्य है । फिर भी लोग त्याग कर ही रहे हैं । गत आठ-दस सालों में हमने यह मजा देखा । हिन्दुस्तान में ६ लाख दान-पत्रों के जरिये ४२ लाख एकड़ भूमि मिली है । जिसके सामने हाथ फैलाया, उसने दिया ही । ऐसा कोई शख्स नहीं मिला, जिसके सामने हाथ फैलाया और उसने न दिया हो । इस तरह प्रेम का यह सन्देश भारत का अपना सन्देश है । यदि यूरोपवाले इसे कबूल करें, तो विज्ञान पर उन्हें भी भारत जितना ही पूरा हक रहेगा ।

बड़े दुःख की बात है कि आज हिन्दुस्तान के पास ज्यादा विज्ञान नहीं है । उसे हमें पश्चिम के लोगों से सीखना है । उसे सीखने का हमें पूरा अधिकार है । अहिंसा के तरीके से विज्ञान का उपयोग कर हम दिखा दें कि "भारत की समस्याएँ प्रेम से हल की जा सकती हैं । भारत का गाँव-गाँव आजाद बन गया है और सभी प्रेम से कारोबार चला रहे हैं । हमने विज्ञान का पूरा उपयोग कर फसल बढ़ायी है । हम प्रेम से एक-दूसरे के साथ रहते हैं । भारत में आपस का कोई भी झगड़ा है ही नहीं ।" आज

यूरोप और अमेरिका के लोग चाहते हैं कि भारत इस दिशा में हमारा पथ-प्रदर्शन करे। (३७)

विज्ञान के युग में अगर हिन्दुस्तान को जीना है, तो क्या-क्या करना होगा ? एक तो यह कि मानव की समस्याएँ अहिंसा की शक्ति, नैतिक शक्ति से ही हल करने का निर्णय किया जाय। दूसरा यह कि विज्ञान का उपयोग सेवा के साधन में करें, संहारक साधन बनाने में नहीं। और तीसरा यह कि विज्ञान को बड़े यन्त्र वनाने की आज्ञा देनी है या छोटे की, यह परिस्थिति देखकर तय किया जाय। ये वातें हम ध्यान में रखते हैं, तो विज्ञान से वहुत लाभ होगा। (३८)

(२) गुण-दर्शन, गुण-ग्रहण और गुण-विकास

सर्वोदय-विचार इतना गहरा है कि हम उस पर अमल करने की कोशिश ही कर सकते हैं, पूरा अमल नहीं हो सकता। सर्वोदय के पूरे अमल के लिए परमेश्वर के दर्शन की जरूरत रहेगी। बापू कहते थे कि उनकी कुल जीवन-साधना, सत्याग्रह आदि काम परमेश्वर की खोज के लिए है। अक्सर ईश्वर की खोज करनेवाले एकान्त में ध्यान-धारणा आदि करने जाते हैं। बापू एकांत में नहीं गये थे, लोगों के बीच काम करते थे। यह ठीक है कि वे ध्यान, प्रार्थना के लिए पन्द्रह-बीस मिनट निकालते थे। लेकिन वे कहते थे :

"ध्यान तो हमारे काम में हर क्षण होना चाहिए। और एकांत तो जनता में काम करते-करते प्रतिक्षण मिलना चाहिए।" एकान्त में हम जाते हैं, तो हमारा मन घूमता है। वह कैसा एकांत हुआ ? सच्चा एकान्त तो वह होगा, जहाँ हम मन से अलग होंगे। वैसे दुनिया से थोड़े ही अलग होना है ! इसलिए मन से अलग होकर जन-सेवा में एकान्त का अनुभव वे हमेशा करते थे और कहते थे कि ईश्वर की खोज के लिए और दर्शन के लिए मेरा जीवन है।

गुण-ग्रहण से ईश्वर-दर्शन

ईश्वर-दर्शन क्या है, यह समझना चाहिए। हिन्दुस्तान में ईश्वर के लिए बहुत भक्तिभाव है, बल्कि चीनी लेखक लीन यु टांग ने लिखा है कि हिन्दुस्तान 'गॉड इन्टॉक्सिकेटेड लैंड'—ईश्वर से अभिभूत भूमि—है। बात सही है। लेकिन ईश्वर की खोज किस तरह होगी? ईश्वर गुणमय है—सत्य, प्रेम, करुणा आदि मंगल गुण जिसमें भरे हैं। इन सब गुणों की परिपूर्णता ही ईश्वर है। सामने जो-जो मनुष्य आते हैं, उनमें गुण-दर्शन होना चाहिए। अगर हमें किसीमें दोषों का दर्शन हुआ, तो हमें 'माया' का दर्शन हुआ, ईश्वर का नहीं। किसीमें गुण का और दोष का दर्शन हुआ, तो माया और ईश्वर दोनों का थोड़ा-थोड़ा दर्शन हुआ। वह स्वच्छ दर्शन नहीं गिना जायगा।

स्वच्छ दर्शन तो तब होगा, जब हम हरएक को देखकर गुण का ही दर्शन करेंगे। ईश्वर का एक-एक अंश एक-एक रूप में प्रकट हुआ है और दोष जो दीखते हैं, वह माया का, ऊपर का छिलका है—जैसे बीज के ऊपर छिलका होता है। उस माया के आवरण को भेद करके स्वच्छ, शुद्ध दर्शन होना चाहिए, अलग-अलग गुणों का दर्शन होना चाहिए। इस तरह ईश्वर का एक-एक अंश देखने को मिलेगा, तो उसके बाद ईश्वर का समग्र दर्शन होगा। अतः हमेशा गुण-ग्रहण, गुण-चर्चा और गुण-स्मरण करना चाहिए। दोष-ग्रहण, दोष-चर्चा और दोष-स्मरण कतई नहीं करना चाहिए। इसलिए हमने कहा कि 'अनिंदा' का व्रत होना चाहिए।

किसीका दोष हमें दीखता है, तो वह हमारा ही दोष है, यह मानना चाहिए। उसकी निन्दा करना दूसरा दोष होगा और उसके पीछे उस दोष की चर्चा या निन्दा करना, यह तीसरा दोष हो गया। इस तरह एक के बाद एक दोष का सम्पुट चढ़ेगा, तो गुण-दर्शन नहीं ही होगा; और गुण-दर्शन नहीं होगा, तो ईश्वर का दर्शन लोप होगा। इसलिए हमें अपने भी दोषों का दर्शन नहीं करना चाहिए। अपने गुणों

का ही दर्शन करना होगा। इस तरह सर्वत्र गुण-स्तवन, गुण-दर्शन, गुण-वर्धन होना चाहिए। इसीको भगवान् के गुणों का स्तवन कहते हैं। हम सत्य, प्रेम और करुणा कहते हैं। जहाँ-जहाँ हमें सत्य का अल्प दर्शन हुआ, वहाँ हमें ईश्वर का दर्शन हुआ। बालू के कण पड़े हैं, उसमें थोड़े शर्करा-कण पड़े हैं। चींटी उसमें से शर्करा-कण लेती है। उसी तरह सत्य का अल्प दर्शन ले लिया। कहीं प्रेम का दर्शन हुआ, वह ले लिया। कहीं करुणा का दर्शन हुआ, वह ले लिया। कहीं और कोई देखा, उसे ले लिया। इस तरह हरएक का गुण-ग्रहण करते करते हमारा हृदय गुण-भण्डार होगा, तब हमें भगवान् का परिपूर्ण दर्शन होगा।

बापू इसलिए कहते थे कि मैं कोशिश में हूँ कि भगवान् का परिपूर्ण दर्शन हो। माया-कवच, दोषों का दर्शन न हो। आज हालत यह है कि गुणों का दर्शन नहीं होता, दोषों का ही होता है। वे दोष ही सामने आते हैं। वे होते ही हैं, ऐसा नहीं। जब तक मनुष्य के हृदय में प्रवेश नहीं होता, तब तक बुराई ही दीखती है, क्योंकि हेतु का पता कहाँ लगता है? कानून में भी संशय का लाभ अपराधी को, गुनहगार को दिया जाता है, जिसे 'बेनिफिट ऑफ डाउट' कहते हैं। जब तक हेतु का दर्शन नहीं होता, तब तक उसे अपराधी नहीं कह सकते। इस तरह हम एक-एक मनुष्य के दोषों के परीक्षक होंगे, तो हमें दूसरा धन्धा ही नहीं रहेगा। वह काम हमसे नहीं होगा। वह तो ईश्वर का काम है। इसलिए हमें गुण-ग्रहण करना चाहिए। एक का दोष देखकर वह स्मरण में रह गया, दूसरे किसीका दोष देखकर वह स्मरण में रह गया, तीसरे का तीसरा दोष स्मरण में रह गया और ये सब दोष मेरे हृदय में बैठ, तो जैसे गाँव के हर घर का कचरा घूरे पर जमा होता है, वैसे हमारा हृदय सबके दोषों का संग्रह-स्थान होगा। उससे परमेश्वर का पूर्ण आच्छादन होता है, याने माया के आच्छादन के कारण परमेश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। भक्ति के बिना परमेश्वर की खोज, उसका दर्शन नहीं हो सकता और गुण-दर्शन के बिना, गुण-विकास के बिना भक्ति नहीं हो सकती।

गुण-ग्रहण से गुण-विकास

सामनेवाले में जो गुण है, उसका दर्शन होना चाहिए। उसे स्वीकार करके अपने हृदय में स्थान देना चाहिए। इसका नाम है गुण-ग्रहण। फिर उस गुण का विकास करना चाहिए। सामनेवाले का गुण हमारी हृदय-भूमि में हमने बोया। खेत में किसान एक बीज बोता है, तो वह चौगुना होता है, शतगुना होता है। वैसे हमारी मनोभूमि शुद्ध हो और उसमें सामनेवाले का गुण बो दिया, तो वह शतगुणित होगा। इसका नाम है गुण-विकास। प्रथम गुण-दर्शन, फिर गुण-ग्रहण और बाद में गुण-विकास; यह भक्ति की प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया से सर्वत्र छिपी परमेश्वर की हस्ती का दर्शन होगा।

हमारा दान का, सेवा का, त्याग का, सत्याग्रह का कार्यक्रम सबका सब भगवान् की छिपी शक्ति के दर्शन के लिए है। सत्याग्रह में हम क्या करते हैं? सुख-दुःख सहन करते हैं और उसमें जो अच्छा अंश है, वह बाहर निकालते हैं। सामने अच्छा अंश होना चाहिए न? अच्छा अंश न हो, तो वह कहाँ से लायेंगे? सत्याग्रह में यह श्रद्धा होती है कि सामने अच्छा अंश है। यही है गुण-दर्शन।

इस गुण-दर्शन के आधार पर ही सत्याग्रह है। सामने जो शख्स है, उसमें जो गुण है, वह प्रभावी हो, शक्तिशाली हो, ऐसी कोशिश करेंगे, तो दोष-निरसन होगा। उस गुण को प्रभावी करने के लिए जो दुःख सहन करना पड़ता है, वह सत्याग्रह ही करता है। सत्याग्रही में यही गुण है कि वह सामनेवाले में जो गुण है, उस पर श्रद्धा करता है। इसी श्रद्धा पर सत्याग्रह खड़ा है, इसी श्रद्धा पर दान का कार्यक्रम चलता है।

सर्वोदय : गुण-दर्शन का कार्यक्रम

इसीलिए कुल-का-कुल सर्वोदय-कार्यक्रम गुण-दर्शन पर आधारित है। यह गुण-दर्शन हो, तो ईश्वर का दर्शन होगा। उसका अंशमात्र दर्शन भी क्यों न हो, वह होगा। पूर्ण अंश का दर्शन एकदम तो नहीं

होगा। आज एक अंश का दर्शन होगा, कल दूसरे का। मान लीजिये, आज दान का कार्यक्रम हुआ। हमें एक अंश का दर्शन हुआ। लोगों के हृदय में जो उदारता है, उसका दर्शन हुआ। शान्ति-सेना का काम चला, लोग मर-मिटने के लिए राजी हो गये, दंगा मिटाने को तैयार हो गये, तो लोगों के हृदय की निर्भयता का दर्शन हुआ। भूदान के जरिये उदारता का दर्शन, शान्ति-सेना के कार्यक्रम द्वारा 'अभय' का दर्शन, खादी के द्वारा स्वावलम्बन-वृत्ति, आत्मोद्धार की वृत्ति का दर्शन होगा। 'स्वच्छ भारत' आन्दोलन चला, तो स्वच्छता का, शुचिता का, पावित्र्य का दर्शन होगा। इस तरह एक-एक व्यापक सामाजिक कार्यक्रम करते-करते एक-एक में गुण-दर्शन करते-करते हम आगे जायेंगे, तो हमें दर्शन होगा। यही परमेश्वर के समग्र दर्शन की प्रक्रिया है। यह एकदम नहीं होगा। जब तक शरीर है, तब तक कोशिश चलेगी। इस वास्ते बापू कहते थे कि हमारी खोज चल रही है। हमें अभी तक दर्शन नहीं हुआ है। इस खोज के लिए ही हमारा जीवन है। हमारे जीवन में ही खोज पूरी हो गयी, तो हम ही ईश्वर हो गये, ऐसा होगा। इस वास्ते हमने एक श्लोक बनाया है, जिसमें हमारा सर्वोदय का विचार रखा है :

"ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः जीवनं सत्यशोधनम्।"

ब्रह्म सत्य है और विश्व में भरा है। विश्व उसकी स्फूर्ति है। उस प्रकाश में, इस विश्व में, उस सत्य की खोज करना हमारे जीवन का कार्यक्रम है। (३९)

भूदान-यज्ञ की दृष्टि

इसी दृष्टि से भूदान-यज्ञ की ओर देखें, तो एक नया दर्शन होगा। भूदान-यज्ञ से हम भूमि-समस्या का हल करना चाहते हैं, जो एशिया-भर की मुख्य समस्या है। हम यह समस्या हिंसा से हल करते हैं, तो आपस-आपस में द्वेष-भाव बढ़ेगा। उसका परिणाम वैज्ञानिक युग में अच्छा नहीं होगा। लेकिन हम इतनी बड़ी समस्या अहिंसा, प्रेम और शान्ति

के तरीकों से हल करते हैं, तो परस्पर सहयोग और समाज की शक्ति बढ़ेगी तथा समाज सुखी होगा। लोग पूछते हैं कि "आप नाहक क्यों घूमते हैं ? भूदान के काम के लिए इतना प्रयास क्यों करते हैं ? कानून बनाकर काम कर डालें। बस, सब काम हो जायगा।" लेकिन कानून से काम कैसे होगा ? कानून बनाया कि "जमीन है छीनने के लिए।" इस पर किसान कहे कि "मैं नहीं देता", तो उसे जेल में डाला जायगा। बस, यही शक्ति है कानून में। कानून की ताकत उसके पीछे की दण्ड-शक्ति है, लश्कर है। इसलिए लोकमत तैयार करने के बाद जो कुछ बनेगा, उसके बाद प्रजा का काम होगा। अगर लोगों का सहयोग न होगा और कानून से कोई चीज लादी जायगी, तो कानून बेकार होगा और समाज में ख़ूनी विचार फैलेंगे, विद्वेष बढ़ेगा।

अहिंसा के साथ भी एक कानून हो सकता है। एक काम बहुत से व्यक्ति अगर कर देते हैं और उससे लोकमत तैयार हो जाय, तो बचा हुआ थोड़ा-सा काम कानून से हो सकता है। इस तरह अहिंसा में भी कानून का एक स्थान है। लेकिन वह स्थान आखिर में आता है। अहिंसा से भूमि-समस्या के हल की जो कोशिश चल रही है, वह विज्ञान के युग में एक बड़ी भारी शक्ति है।

विज्ञान और यन्त्र

एक बात लोगों की समझ में नहीं आती। वे कहते हैं कि आप छोटे-छोटे उद्योग करना चाहते हैं, इसीलिए विज्ञान का विरोध करते हैं। लोगों को लगता है कि बड़े-बड़े उद्योग खड़े करने का नाम ही विज्ञान है। छोटे-छोटे उद्योगों के साथ विज्ञान का सामंजस्य नहीं बैठता। लेकिन यन्त्रों के उपयोग का विज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। किस यन्त्र का कहाँ उपयोग करना और कहाँ नहीं, यह विज्ञान का विषय नहीं। अगर किसी समाज में लोक-संख्या बहुत ज्यादा है और उनके लिए काम कम है, तो उस समाज में बड़े यन्त्र नहीं चलेंगे। हिन्दुस्तान में मनुष्य बहुत हैं और

जमीन कम । जापान में भी जमीन कम और मनुष्य ज्यादा हैं । ऐसी हालत में वहाँ छोटे-छोटे पैमाने पर ही उद्योग चलेंगे । जहाँ मनुष्य-संख्या कम और जमीन बहुत ज्यादा हो (जैसे अमेरिका और रूस आदि), वहाँ बड़े-बड़े उद्योग चल सकते हैं ।

छोटे यन्त्र बनाना हो, तो विज्ञान उन्हें बना देता है और बड़े बनाना हो, तो उन्हें भी बना देता है । यह न समझें कि छोटे यन्त्र बनाने से विज्ञान की कुशलता कम हो जाती है और बड़े यन्त्रों से ज्यादा । यह छोटी-सी घड़ी है । क्या इसमें विज्ञान का उपयोग कम हुआ है ? छोटा-सा थर्मामीटर है । क्या उसमें विज्ञान का उपयोग कम हुआ है ? एक छोटी-सी सिंगर मशीन है, क्या उसमें विज्ञान का उपयोग कम हुआ है ? एक छोटा-सा कैमरा है, तो क्या उसमें विज्ञान का उपयोग कम हुआ है ? क्या कभी बिना विज्ञान के कैमरा बनेगा ? बिना विज्ञान के घड़ी बनेगी ? इसलिए क्या छोटे और क्या बड़े, सभी यन्त्र बनाने में विज्ञान का उपयोग होता है । अतः छोटे यन्त्र बनाना है कि बड़े यन्त्र, यह आप तय करेंगे । आप समाज-शास्त्र के अनुसार विज्ञान को हुक्म दीजिये, तो विज्ञान आपकी आज्ञा के अनुसार यन्त्र बना देगा । (४०)

(३) सर्वोदय का सांख्य याने सिद्धान्त

हमने 'गीता-प्रवचन' में सांख्य और योग ऐसे दो विभाग बताये हैं । ये दो विभाग मिलकर परिपूर्ण जीवन-शास्त्र बनता है । जीवन-शास्त्र का एक अंश है—सांख्य; और दूसरा है—योग । सर्वोदय के भी सांख्य व योग, ऐसे दो अंश हैं । दोनों मिलकर परिपूर्ण सर्वोदय-विचार बनता है । सर्वोदय का जो सांख्य याने थियरी है, वह मैं यहाँ कहूँगा ।

ग्रामोद्योग व यंत्रोद्योग का समन्वय

सर्वोदय का मूलभूत विचार है कि परस्पर हितों का विरोध न हो । मेरे हित में आपका हित है । आपके हित में मेरा हित है । दोनों के

हित में देश का हित है। देश के हित में मेरा व आपका हित है। देश-हित का विश्व के हित को विरोध नहीं। विश्व के हित का देश के हित को विरोध नहीं। इस तरह सर्वोदय अविरोधी है। यह है बुनियाद।

सर्वोदय-विचार में ग्रामोद्योग व यन्त्रोद्योग भी परस्पर अविरोध से एक साथ रह सकते हैं। उनका क्षेत्र विभाजित करना होगा। किस क्षेत्र में ग्रामोद्योग रखा जाय व किस क्षेत्र में यन्त्रोद्योग, ऐसा विभाजन हो जाय, तो एक ही देश में ग्रामोद्योग व यन्त्रोद्योग चल सकते हैं। ग्रामोद्योग व यंत्रोद्योग एक-दूसरे के विरोधी होने ही चाहिए, ऐसा नहीं। दोनों का समन्वय कर सकते हैं।

तीन प्रकार के यन्त्र

यन्त्र तीन प्रकार के हैं। एक संहारक यन्त्र, दूसरा समयसाधक यन्त्र व तीसरा उत्पादक यन्त्र। संहारक यन्त्र याने 'मशीनगन्स, तोपें', जिनका उपयोग मानव-संहार में ही होता है। जो शस्त्रास्त्र इत्यादि बनाते हैं, उसका नाम है संहारक यन्त्र। सर्वोदय में संहारक यन्त्रों के लिए अवकाश नहीं। संहारक यन्त्र का हम सर्वोदय-विचार के लोग विरोध करते हैं।

समय-साधक यन्त्र संहार भी नहीं करते व उत्पादन भी नहीं करते, समय बचाते हैं। जैसे मोटर, रेलवे, हवाई जहाज आदि। इन सबसे न तो उत्पादन होता है और न संहार। समय बचता है। हवाई जहाजों में इतनी गति है कि बम्बई से लन्दन बारह घण्टे में जाते हैं। ४०० साल पहले दो साल लगते थे। अब १२ घण्टे लगते हैं व समय बचता है। तो ये समय-साधक यन्त्र हैं। सर्वोदय में इसका विरोध नहीं। सर्वोदय को ये पसन्द हैं, मान्य हैं। नये यन्त्र हमको मान्य हैं। कल यहाँ से चन्द्रमा पर भी चलेंगे, इसलिए राकेट बनेंगे। राकेट भी सर्वोदय को मान्य हैं। संहारक यन्त्र सर्वथा अमान्य हैं, समय-साधक यन्त्र सर्वथा मान्य हैं।

उत्पादक यन्त्रों के दो प्रकार

अब उत्पादक यन्त्र रहे। उत्पादक यन्त्र भी निर्माण-कारक हैं। उत्पादक यन्त्र दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार मनुष्यों के श्रम की पूर्ति करते हैं। अपने हाथों के श्रम से हम जो काम नहीं कर सकते हैं, वह करने में सहायता देते हैं वे यन्त्र। 'पूरक' नाम है उनका। उत्पादक यन्त्र का एक प्रकार है पूरक यन्त्र। ये मनुष्य के श्रम की पूर्ति करनेवाले हैं। हम हाथ से सूत कातेंगे, तो हमारा काम पूरा नहीं होगा। तकली से थोड़ी मदद हुई, चरखों से ज्यादा मदद होगी, अम्बर चरखों से उससे भी ज्यादा मदद होगी। इस तरह श्रम की पूर्ति जो यन्त्र करते हैं, वे पूरक, उत्पादक यन्त्र हैं। जो यन्त्र उत्पादन करते हैं ज्यादा, लेकिन मजदूरों को कम करते हैं, वे हैं 'मारक' यन्त्र। उत्पादक यन्त्र के दो प्रकार—पूरक व मारक। लेकिन कौन-सा यन्त्र पूरक है व कौन-सा मारक, इसका निर्णय देश-काल की परिस्थिति के अनुसार बदलता रहेगा। अमेरिका में जो यन्त्र पूरक होगा, वह हिन्दुस्तान में मारक हो सकता है। आज जो यन्त्र मारक है, वह कल पूरक भी हो सकता है। इसका रूप कालमानानुरूप, स्थलमानानुरूप व परिस्थिति के अनुरूप बदलेगा। ट्रैक्टर अमेरिका में चल सकता है। अमेरिका में प्रति व्यक्ति बारह एकड़ जमीन है। हिन्दुस्तान में प्रति व्यक्ति एक एकड़ जमीन है। हिन्दुस्तान से बारह गुना जमीन अमेरिका में पड़ी है। वहाँ ट्रैक्टर चल सकता है। वहाँ भूमि अधिक व मनुष्य-संख्या कम है। इसलिए मनुष्य की मदद में, उसकी पूर्ति में ट्रैक्टर आता है। हिन्दुस्तान में मनुष्य ज्यादा व जमीन कम। यहाँ अगर ट्रैक्टर का उपयोग करेंगे, तो मनुष्यों को मजदूरी नहीं मिलेगी। मनुष्य बेकार बनेगा। इसलिए ट्रैक्टर यहाँ मारक होगा। अमेरिका में पूरक होगा। अमेरिका में ट्रैक्टर बनते हैं, हिन्दुस्तान में बनते नहीं। इसलिए भी हिन्दुस्तान में वह मारक बनेगा। अमेरिका में गाय का दूध पीते हैं, लेकिन बैलों को खाते हैं और खेती ट्रैक्टर से करते हैं। हिन्दुस्तान में गाय का दूध पीयेंगे।

बैलों को मारेंगे नहीं। भारतीय संस्कृति यह मान्य नहीं करती कि बैलों को खाया जाय। फिर ट्रैक्टर हमको बहुत महँगा होगा। हमको ट्रैक्टर को भी खिलाना पड़ेगा और बैलों को भी खिलाना पड़ेगा। यह अनइकॉनॉमिकल हो जायगा।

उन लोगों पर बैलों की रक्षा करने की जवाबदारी आती नहीं, इसलिए ट्रैक्टर उनके लिए 'इकॉनॉमिकल' होता है। हम ट्रैक्टर की भी रक्षा करेंगे व बैलों की भी रक्षा करेंगे, इसलिए ट्रैक्टर हिन्दुस्तान में मारक होंगे व अमेरिका में पूरक होंगे।

पड़ती जमीन को तोड़ने में ट्रैक्टर का उपयोग कर सकते हैं। उसमें कोई बाधा नहीं, विरोध नहीं; लेकिन खेती के काम में यहाँ उपयोग करेंगे ट्रैक्टर का, तो बैलों को मारना पड़ेगा। यह हम चाहते नहीं। बैल खाद देते हैं, ट्रैक्टर खाद नहीं देता। तो सिन्द्री का 'मॅन्यूअर' खरीदना पड़ेगा। हिन्दुस्तान की 'इकॉनॉमी' आज गाय और बैल पर खड़ी है।

यन्त्र एक स्थान पर पूरक हो सकते हैं व दूसरे देश में मारक हो सकते हैं। इसका कोई कायम नियम नहीं है। देश-काल की परिस्थिति के अनुसार कौन-सा यन्त्र मारक है व कौन-सा पूरक है, इसका निर्णय करना पड़ेगा। ये हमारे विचार हैं, जो यन्त्र और ग्रामोद्योग के बारे में सर्वोदय का विचार कहा जा सकता है।

साइन्स का उपयोग

सर्वोदय का एक बहुत बड़ा विचार है कि 'साइन्स' का हम पूर्ण उपयोग करना चाहते हैं। हमें 'इलेक्ट्रिसिटी' व 'आटोमिक एनर्जी' चाहिए। लेकिन 'साइन्स' का उपयोग कहाँ और कैसे किया जाय, इस विषय में सर्वोदय के अपने विचार हैं। साइन्स को अध्यात्मशास्त्र मार्गदर्शन करेगा। अग्नि का शोध हुआ। पुराने जमाने में वह नहीं थी। अब सब दूर अग्नि है। शोध होने के बाद अग्नि का उपयोग घर को आग लगाने में भी कर सकते हैं व रसोई पकाने में भी कर सकते हैं। तो अग्नि का उप-

योग घर जलाने में करना या पकाने में करना, यह मानव का अध्यात्मशास्त्र तय करेगा। ऐसे ही 'आटोमिक एनर्जी' कल आ जायगी, तो उसका उपयोग कैसे करना, इसका निर्णय हम करेंगे; परन्तु साइन्स से हमारा विरोध नहीं। साइन्स का आदर है, स्वीकार है। तो उसका अप्लीकेशन कहाँ करना, यह सोचना होगा और उसका नियमन, नियन्त्रण करना होगा। वह नियमन, नियन्त्रण परिस्थिति के अनुसार बदलेगा।

यह थोड़े में सर्वोदय के सांख्य का विवरण है। इसमें किसीके हित का विरोध नहीं, पूरा अविरोध है। यन्त्र-उद्योग व ग्रामोद्योग का विरोध नहीं। परिस्थिति को देखकर उनको 'एडजस्ट' कर सकते हैं। (४१)

(४) विज्ञान की बुनियाद अहिंसा हो

मुझसे पूछा गया है कि विज्ञान को अपनाने के लिए हमें ग्रामोद्योगी योजनाओं में प्रत्यक्ष क्या करना चाहिए ? इस सम्बन्ध में मेरा विचार यह है कि अहिंसा और विज्ञान के साथ समन्वय होने से ही 'सर्वोदय' होता है। अहिंसा के बिना शोषण-मुक्त समाज की रचना नहीं हो सकती। विज्ञान के अभाव में समस्त लोगों को रोजी मिले, यह लगभग असंभव है। विज्ञान रोजी बढ़ा सकता है, किन्तु उसमें शोषण घटाने की क्षमता नहीं है। शोषण घटाने की क्षमता मनुष्य की योजना पर निर्भर करती है। इसलिए योजना अहिंसा की हो और उसके साथ विज्ञान का मेल हो, तभी 'सर्वोदय' होगा।

अनुकूल औजार ग्राह्य

रोजी देने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए हम औजारों का इस्तेमाल करें। वे औजार ऐसे हों, जिनसे सबको काम तो मिले, किन्तु अधिक परिश्रम न पड़े। हर मनुष्य को दस घण्टे काम देने की योजना की जाय, तो वह असफल होगी। इतने घण्टे काम करना हर मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है और न उचित ही है। इसलिए मनुष्य का श्रम बचना चाहिए, उत्पादन बढ़ना चाहिए और कोई बेकार भी न होना चाहिए। हमारी

इस दृष्टि के अनुकूल जो भी औजार हों, हम उनका उपयोग करें। खेती के लिए आज अच्छे-से-अच्छे औजार हैं, उनका व्यवस्थित उपयोग किया जाय, तो जो उत्पादन अभी है, उससे चार-पाँच गुना उत्पादन सहज ही बढ़ सकता है।

रस्सी बटनी ही लीजिये ! वह हाथों से बटने के बजाय औजारों से बटी जाय, तो उतने ही समय में पाँच गुना बट सकते हैं। छह गुना भी बट सकते हैं। चार गुना तो स्वयं मैंने ही बटी है। इसी तरह सीने का काम भी है ! हाथ से सीने में जो कठिनाई होती है; उसका निराकरण 'सिंगर-मशीन' से किया जा सकता है। इसलिए वह मशीन उपयोग में अवश्य लायी जाय। कठिनाई दूर करने के बदले लोग काम से ही भागते हैं। आजकल सिलाई का काम बहनों से पुरुषों ने ले लिया है। ऐसा क्यों ? मशीन के माध्यम से सिलाई का काम बहनें आसानी से कर सकती हैं।

बुनाई का काम भी एक आवश्यक उद्योग है। हाथ से बुना जाय, तो ठीक ही है। अन्यथा क्षेत्रीय उपयोग के लिए 'पावर' का उपयोग किया जाय, तो भी हर्ज नहीं। मैं तो अणु-शक्ति की भी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अणु-शक्ति विकेन्द्रित हो सकती है। गाँव-गाँव में विकेन्द्रित अणु-शक्ति का उपयोग हो सकता है। अगर वैसा हो, तो मैं सहर्ष स्वागत करूँगा। अणु-शक्ति का उपयोग उत्पादन-वृद्धि कर दूसरे का शोषण करने में किया जाय, तो गलत है। इसलिए अणु-शक्ति प्राप्त कर दूसरे का शोषण न करें, तो मुझे उसके उपयोग में भी कोई विरोध नहीं।

बिजली के उपयोग की मर्यादा

आज परंधाम-आश्रम से लड़के आये थे। परंधाम में बिजली आयी है। मैंने उन लड़कों से कहा कि बिजली का पूरा उपयोग होना चाहिए। रात में प्रकाश के लिए मैं उसका उपयोग नहीं चाहता। उसका मुख्य उपयोग उद्योग के लिए होना चाहिए। पानी खींचने, प्रेस चलाने आदि कामों में बिजली का उपयोग कर सकते हैं। मैंने उनसे पूछा कि रसोई

में उपयोग कर सकते हो या नहीं ? वे कहने लगे, थोड़ा मुश्किल होता है, डबल रोटी बनाने में तथा सौ-दो सौ व्यक्तियों का भोजन बनाने में अच्छा उपयोग हो सकता है ।

हाथ से आटा पीसने की प्रवृत्ति तो अब लगभग समाप्त हो रही है । हाथ से आटा पीसा जाय, तो सर्वोत्तम है । यदि न पीस सकें, तो यन्त्र से पीसा जाय, तो उसमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं । सिर्फ उसकी गति कम कर दी जाय, ताकि उष्णता से अनाज को हानि न हो । आज आटा पीसनेवाली चक्कियों में इतनी गति होती है कि उससे अनाज की शक्ति क्षीण हो जाती है । एक दृष्टि से मैं इसे गुनाह मानता हूँ । किन्तु कम गतिवाले यंत्र हों, किसीका शोषण न होता हो और वे गाँव की सामूहिक चीज हों, तो मुझे ऐसे यंत्रों का कोई उज्र नहीं । इस तरह मेरा मन पहले से ही बना है ।

लुगदी यंत्र से बनायी जाय

बापू के साथ भी एक दफा इस तरह की चर्चा हुई थी । बहुत पुरानी बात है । मेरे पिताजी मगनवाड़ी में आये थे । वे वहाँ सात दिन रहे थे । उनको वहाँ बहुत अच्छा लगा । लेकिन उन्होंने कहा कि यह जो लुगदी बनायी जाती है, वह हाथों से बनाना गलत है, यन्त्रों से बननी चाहिए । मेरे पिताजी एक वैज्ञानिक थे, उनकी कुल जिन्दगी विज्ञान की खोज में गयी थी । बचपन में वे मुझे विज्ञान सिखाते थे । विज्ञान के बारे में पिताजी से मेरी रोज चर्चा चलती थी और माँ के साथ भक्ति की । इस तरह विज्ञान और भक्ति दोनों की चर्चा बचपन से मैं रोज सुनता आया हूँ । मेरे पिताजी ने मेरे हाथ से विज्ञान के कई प्रयोग करवाये । उन्होंने जो-जो बातें बतायीं, उन्हें बापू को सुना दिया । मेरे पिताजी को सब लोग 'बाबा' कहते थे । मैंने बापू से कहा कि "बाबा कह रहे थे कि कागज की लुगदी यन्त्र से बनाने में कोई दोष नहीं है ।" यह बात कहकर बाबा बड़ौदा चले गये । उस समय वे वहाँ रहते थे । वहाँ जाकर उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा ।

उसके अन्त में लिखा कि "यह पत्र जो मैंने लिखा है, इसका सभी कुछ मैंने बनाया है। कागज भी मैंने बनाया है, स्याही भी मैंने बनायी है और लेखनी, जिससे मैं पत्र लिख रहा हूँ, वह भी मैंने बनायी है। इस तरह कुल-का-कुल पत्र स्वावलम्बी है। इस कागज में थोड़ा-सा दूसरा रंग रह गया है, बिलकुल सफेद कागज नहीं है। उस रंग को उड़ाने के लिए मेहनत पड़ती है। इसलिए मैंने उसको रहने दिया है। इससे कोई खास क्षति नहीं होती।" इस तरह एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति की मदद लिये बिना पूरा-का-पूरा कागज हाथ से बनाया, उसमें जो लुगदी थी, वह हाथ से बनायी हुई थी, यन्त्र से बनायी हुई नहीं थी। उन दिनों बापू के साथ काफी चर्चा हुई थी कि लुगदी का क्या किया जाय? बाबा की मृत्यु के दो-चार साल बाद वही चर्चा फिर से निकली थी। अब तो शायद लुगदी यंत्र से ही बनती है।

यह भी खादी ही है!

चरखे की जगह जब अम्बर चरखा आया, तो उसका स्वागत किया जाय या नहीं, इस पर चर्चा चली। मैंने तो उसका पहले से ही स्वागत किया था। यद्यपि सर्व-सेवा-संघ के विचारकों ने उसे पहले ठीक नहीं समझा और वह ठीक भी था। एकदम नये विचार का स्वागत होता है, तो उसमें खतरे भी पैदा हो सकते हैं। मैंने कृष्णदास से कहा कि सर्व-सेवा-संघ में चर्चा चलती है, वह कुछ दिन चलेगी। परन्तु मेरी ओर से अम्बर चरखे का पूर्ण स्वागत है। फिर कृष्णदास ने जोर लगाया। अभी मैंने साबरमती में देखा कि उन्होंने बहुत अच्छी प्रगति की है। वे उस चरखे को गृहोद्योग के लिए उपयोगी साधन बनाना चाहते हैं। हुबली में एक गुजराती भाई हैं, उन्होंने अपने घर में 'मगन चरखे' को बिजली लगायी है। उस पर एक मनुष्य कातता है और अपने घर के लिए पर्याप्त कपड़ा बना लेता है। उन्होंने मुझसे पूछा कि "क्या यह खादी मानी जायगी?" मैंने कहा : "जी, हाँ। अगर आप इसे नहीं बेचते, तो यह जरूर खादी मानी

जायगी। आप स्वावलम्वन के लिए बिजली का उपयोग कर सकते हैं।" इस प्रकार यन्त्रों का और विज्ञान का उपयोग औजारों की दुरुस्ती और औजारों को पावर लगाने में हो सकता है। परन्तु उसमें भी मर्यादा आती है। एक तो यह कि उसमें आन्तर-बाह्य शोषण न हो। दूसरा, योजनापूर्वक सुधार हो। (४२)

(५) विज्ञान-युग की अहिंसा

महावीर स्वामी को ढाई हजार साल हो गये। लेकिन ऋषभदेव उनसे भी अधिक प्राचीन हैं। ऋषभदेव अहिंसा की बात बताते थे, जिसे लोग आज भी याद करते हैं। दूसरे को तकलीफ न देना ही अहिंसा का अर्थ नहीं। अहिंसा का मतलब है, जितना प्रेम हम खुद पर करते हैं, उतना ही प्रेम भगवान् की सारी सृष्टि पर करें। अपने पड़ोसी पर भी उतना ही प्यार करें। यह बात हिन्दुस्तान में सभी लोगों को प्रिय है। अनेक सन्तों ने इसे दुहराया और समझाया है कि अपने समान सबको देखना और मानना चाहिए। एक विचार के तौर पर इसे सब लोग मानते हैं। हिन्दुस्तान में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो इसे कबूल न करता हो। किन्तु कबूल करना एक बात है और उस पर अमल करना दूसरी बात।

पड़ोसी पर समान प्यार करें

अहिंसा के आचरण का सवाल उठते ही हम कहने लगते हैं कि बात तो ठीक है, पर इस पर हम अमल नहीं कर सकते। हम गृहस्थ हैं, संसारी हैं, बाल-बच्चेवाले हैं। हमारी आदतें बन चुकी हैं। इसलिए हम पड़ोसी पर इतना प्यार नहीं कर सकते, जितना अपने बाल-बच्चों पर और स्वयं अपने शरीर पर करते हैं। इतना प्यार करना इस जन्म में सम्भव नहीं। हमारे पूर्वजों ने भी तो यही कहा है कि "अपने तनय पर प्यार करो।" यह चीज हम पसन्द करते हैं और उनकी यह बात मान भी लेते

हैं। ऐसा कोई महापुरुष हमें मिल जाय, जिसके आचरण में यह बात हो, तो उसकी हम इज्जत करते, पूजा करते और उसके दर्शन से स्वयं को पवित्र भी मानते हैं। परन्तु यह चीज महापुरुषों के लिए, संन्यासियों के लिए, भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए, श्रमण-श्रमणियों के लिए है।

शास्त्रकारों के सामने सवाल आता है कि इस प्रकार किसी विचार का लोग आदर करें, किन्तु उस पर अमल न करें, तो लोगों को क्या लाभ होगा? इसलिए उन्होंने एक बीच की राह निकाली, ताकि लोगों को अपने समान आहिस्ता-आहिस्ता सब पर प्यार करने की तालीम मिल सके। एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ें, आरोहण करें, तो ऐसा एक रास्ता बन जायगा। राह खुल जायगी और लोग दूसरों पर प्यार करना सीखेंगे। हम सभी प्राणियों पर अपने जितना ही प्यार करेंगे, सारी सृष्टि पर अपने समान प्यार करेंगे। जैसे एक तारा नजर के सामने रखकर चलते हैं, वैसे ही ध्येय को देखकर चलना है। तारे पर पाँव नहीं, नजर रखते हैं और चलते हैं जमीन पर, वैसे ही उस दिशा में हम चलें, जो दिशा शास्त्रकारों ने बतायी है। उन्होंने कहा है कि अपने समान सारी सृष्टि को देखो और सबसे प्रेम करो। पहले अपने पड़ोसी पर अपने समान प्यार करो। अपने गाँव पर अपने समान प्यार करो। यह पड़ोसी अपना ही है, यह गाँव अपना ही है।

कुटुम्ब का विस्तार कीजिये

आज हम पास-पास रहते हैं, पर एक-दूसरे की भलाई नहीं सोचते। गाँव में कोई बीमार हुआ, जख्मी हुआ, तो उसे दुःख में सान्त्वना देनी चाहिए। गाँव की भलाई के साथ हमारा भी भला होगा। अगर गाँव की बुराई हुई, तो हमारी भी बुराई हो सकती है। गाँव में कोई बीमारी आयी, तो वह हमारे घर में भी आ सकती है। एक को दुःख हुआ, तो दूसरे को भी दुःख हो सकता है। गाँव में अच्छी बारिश हुई, तो सबकी फसल बढ़ सकती है। इस तरह गाँव में सबका भला और सबका

बुरा एक साथ हो सकता है । इसलिए गाँव को अपने कुटुम्ब का एक विस्तार समझें ।

जिसे हम शरीर कहते हैं, वह हमारा विस्तार है, हम नहीं । हम तो शरीर के अन्दर रहनेवाले हैं, अन्तरात्मा में रहनेवाले और इन्द्रियों से काम लेनेवाले हैं । जिसे संस्कृत में 'तनय' कहते हैं, वह हमारे शरीर का ही फैलाव है । हमारे शरीर का ही तनाव हमारा बच्चा है । इस तनु का विस्तार ही तनय है । उस लड़के का भी लड़का होता है याने उसका भी विस्तार होता है । इस तरह स्पष्ट है कि जैसे हम शरीर नहीं हैं—यह हमारा विस्तार है, वैसे ही लड़का भी हमारा विस्तार ही है । 'सन्तान' शब्द भी 'तनु' धातु से बना है । जैसे सन्तान तनु का विस्तार है, वैसे ही हमारा समाज भी हमारा ही विस्तार है, यह समझें और उस पर प्यार करना सीखें । क्या हम यह कर सकते हैं ? "अपनी शक्ति के अनुसार हम कर सकते हैं", यह इसका उत्तर नहीं है । इसका उत्तर देने का समय अब आया है । मेरे सामने बहुत-से माता-पिता बैठे हैं । अगर उनसे कहा जाय कि "तुम्हारे बालक तुम्हारा ही विस्तार हैं, इसलिए उन पर वैसा ही प्यार करें, जैसा अपने पर करते हैं । क्या यह कर सकते हैं ? यह काम कठिन है या आसान ?" तो माताएँ कहेंगी : "तुमने बहुत कम ही माँग की है । हम इससे ज्यादा कर सकती हैं । हम अपने बच्चों पर अपने से ज्यादा ही प्यार करती हैं । क्या इस तरह आप ऐसी सिखावन देना चाहते हैं कि हम उन पर कम प्यार करें ?" खैर, इस तरह ज्यादा प्यार करने की बात छोड़ दें । वह तो माताओं के नाम पुण्य लिखा जायगा । लेकिन जैसे वे बेटे पर प्यार करती हैं, वैसे पड़ोसी पर भी प्यार करें । हम अपने बच्चों पर जो प्यार करते हैं, उसका विस्तार करने की जरूरत है, वैसा ही प्यार सारे समाज पर करने की तालीम हमें मिल रही है । शास्त्रकारों ने जिसे अहिंसा कहा था, बीच की राह दिखाई थी, उस पर हम चलें, तो धीरे-धीरे सारी सृष्टि पर वैसा ही प्रेम कर सकते हैं ।

अहिंसा का क्या अर्थ है ? **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'**—सब भूतों पर

उतना ही प्यार करो, जितना अपने पर करते हो। घर के समान पड़ोसी को समझो और घर के समान ही ग्राम को समझो। यदि कोई यह कहे कि यह उपाय बहुत कठिन है, तो उससे मैं कहूँगा कि तुम्हारा कहना इस जमाने के लायक नहीं है। विज्ञान का जमाना है। विज्ञान के जमाने में दूर देशों के लोग भी नजदीक आते हैं और आये हैं। देशों के बीच के अन्तर टूट रहे हैं। आज ऐसे साधन हाथ में आ गये हैं कि २४ घण्टे में दुनिया के इस सिरे से उस सिरे तक जा सकते हैं। यह पृथ्वी २४ हजार मील के घेरेवाली है। ऐसे साधन, हवाई जहाज हाथ में आ गये हैं कि २४ घण्टे में कुल पृथ्वी की प्रदक्षिणा की जा सकती है। ऐसे विज्ञान के जमाने में "सारे गाँव को एक परिवार मानना कठिन है" यह कहनेवाले से यही कहा जायगा कि तुम इस जमाने के लायक नहीं। तुम इस युग में टिक न सकोगे।

यह परमार्थ नहीं, विज्ञान की बात है

यह बात पारमार्थिक नहीं है। सीधी-सी बात है। सारे गाँव को इकाई समझो, परिवार मानो और तदनुकूल आयोजन करो। अगर हम इतना भी न कर सके, तो इस जमाने में हम जीने लायक नहीं हैं। दुनिया के दूसरे देशों में क्या-क्या हो रहा है, वहाँ विज्ञान कितना आगे बढ़ा हुआ है, क्या-क्या हलचलें वहाँ चल रही हैं, यह सारा हम नहीं सोचते। परन्तु हमें सारा सोचना होगा। इसलिए फिलहाल हमारी कम-से-कम यही माँग है कि अपने पड़ोसी के साथ प्यार करो, गाँव को परिवार समझो। यह इस जमाने की बात है। आप कोई भी अखबार का पन्ना खोलकर देखिये, बड़े-बड़े अक्षरों में कौन-सी खबरें मिलेंगी? दुनिया की बड़ी-बड़ी खबरें—मंगल, शुक्र, चन्द्र पर कोई पहुँच सकता है, रॉकेट छोड़ा गया है, एक हजार मील ऊपर गया है, उसके और चन्द्र के बीच इतना-इतना अन्तर है, आदि-आदि। याने दुनिया छोटी बन रही है, पृथ्वी छोटी बन रही है। पृथ्वी की कुल खबरें पृथ्वी के कुल देश के लोग पढ़ते हैं और उन्हें जानने में उत्सुकता भी बताते हैं। ऐसे जमाने में आप गाँव को परिवार न समझें

और प्रेम का विस्तार न करें, तो मैं लिख देता हूँ कि आपका प्रलयकाल नजदीक आया है। आपकी हस्ती खतम होने आयी है।

मैं बहुत बड़ा आध्यात्मिक कदम उठाने के लिए नहीं कहता। इतना ही कहता हूँ कि प्रेम को आपने घर में बन्द रखा है, वह खोल दें, व्यापक बनायें, ताकि ग्राम-समाज बने। इतना तो बनना ही चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि गाँव में रसोड़ा एक हो। ऐसी फिजूल बातें नहीं करनी चाहिए। हम कोई कुटुम्ब-व्यवस्था खड़ी करना नहीं चाहते। जहाँ तक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का सवाल है, वहाँ तक गाँव एकरस हो और प्रेम का स्थान माना जाय। घर में क्या होता है? पुरुष एक रुपया कमाता है, स्त्री बारह आना, लड़का आठ आना और लड़की चार आना, तो वह सारी कमाई सारे घर की मानी जाती है। लड़की चार आना कमाती है, इसलिए चार आने का खायेगी और पुरुष एक रुपये का खायेगा—यह कानून हम घर में नहीं लागू करते। घर में प्रेम का कानून चलता है, जिसमें सारी कमाई सारे घर की मानी जाती है। उसमें तो जो नहीं कमा सकता, उसका भी हक है। इस तरह घर में हम बाँटकर खाते हैं। जैसी व्यवस्था घर में है, वैसी ही गाँव में करनी है, यही अहिंसा का सन्देश है। (४३)

यदि हमारे सामने बैठे सभी लोग एकरूप ही हैं, तो फिर ग्रामदान होना क्या मुश्किल है? जहाँ प्रबुद्ध समाज हो, वहाँ उसे शांत करने में क्या कष्ट है? लालटेन लाते ही अन्धकार खतम हो जाता है। ठीक ऐसे ही कहीं लोग बेवकूफ बनकर लड़ रहे हों, एक-दूसरे के सिर काट रहे हों, अगर वहाँ कोई आत्मज्ञानी पहुँच जाय, तो लड़ना खतम हो जाना चाहिए। यह हो भी सकता है, लेकिन अभी आत्मज्ञान का इतना विस्तार नहीं हो पाया है।

असम्भव कल्पना से उत्साह-वृद्धि

मानव को सामाजिक समाधि का अनुभव आये। रामकृष्ण परमहंस को सबसे पहले जिस स्थान पर समाधि लगी, वह स्थान बंगाल में है। वहाँ पहुँचने पर हमने अपने व्याख्यान में कहा कि "जो समाधि रामकृष्ण

परमहंस को व्यक्तिगत रूप में हासिल हुई, वह आपको सामाजिक समाधि के रूप में प्राप्त होनी चाहिए।" यह बिलकुल असम्भव कार्यक्रम है। लेकिन ऐसी असम्भव कल्पनाओं से हममें कितना अधिक उत्साह भर जाता है। हमारी रग-रग में यही वासना भरी है। (४४)

(६) अहिंसात्मक सहयोगी योजना का अर्थ

येलवाल में आयोजित ऐतिहासिक ग्रामदान-परिषद् में सारे भारत के विभिन्न विचारवादी आये और दो दिनों तक चर्चा करने के बाद उन्होंने देश को एक संहिता दी। उस संहिता में दो शब्द हैं, जो हमारे लिए द्विविध आशीर्वाद हैं। उसमें उन्होंने लिखा है: "विनोबा ने सामाजिक मसले हल करने के लिए जो अहिंसात्मक और सहयोगी पद्धति अपनायी है, वह हमें मान्य है।" इस तरह उन्होंने हमारे काम में दो चीजें देखीं। एक यह कि इसकी पद्धति अहिंसात्मक है, जो प्राचीन आशीर्वाद है और दूसरी यह कि यह सहयोगी पद्धति है, जो आधुनिक आशीर्वाद है।

सर्वोदय-विचार आध्यात्मिक और वैज्ञानिक

अहिंसात्मक और सहयोगी, ये दोनों पद्धतियाँ हमारे सर्वोदय के कार्य में जुट जाती हैं। अहिंसात्मक पद्धति आत्मा की एकता के अनुभव पर आधारित है। वह आध्यात्मिक विचार है; और सहयोगी पद्धति विज्ञान पर आधारित है। इस तरह आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों का योग सर्वोदय में हुआ है। इसीलिए यह नेताओं को मान्य हुआ। सर्वोदय का विचार आध्यात्मिक और वैज्ञानिक, दोनों दृष्टियाँ मिलकर बनता है। कुछ लोग समझते हैं कि 'सर्वोदय' का अर्थ दकियानूस है, किसी तरह के वैज्ञानिक शोधों की कीमत ही नहीं समझते, मिल की अपेक्षा चरखे को पसन्द करेंगे, चरखे की अपेक्षा तकली को पसन्द करेंगे, लोहे की तकली की अपेक्षा लकड़ी की तकली को पसन्द करेंगे। और अगर कोई उससे भी आगे बढ़कर हाथ से ही सूत काते, तो उसे वे सबसे अधिक

पसन्द करेंगे। सर्वोदय की आध्यात्मिकता के विषय में तो किसीको शक नहीं था; किन्तु इसकी वैज्ञानिकता के बारे में सन्देह अवश्य था। अब दोनों विषयों में निस्सन्दिग्धता हो गयी और हमें द्विविध आशीर्वाद मिले हैं।

लाओत्से की योजना : केवल अहिंसात्मक

वैज्ञानिकता के अभाव में अहिंसात्मक आध्यात्मिक योजना कैसे होगी, इसके लिए हम एक मिसाल देते हैं। चीन में लाओत्से नामक एक दार्शनिक हो गये हैं। उन्होंने आदर्श ग्राम की कल्पना बतायी है कि ऐसे ग्राम में कुल चीजों में स्वावलम्बन होता है, बाहर से कोई भी चीज लाने की जरूरत नहीं पड़ती। गाँववाले गाँव से सभी प्रकार से परितुष्ट रहते हैं। लेकिन रात में दूर से उन्हें कुत्तों की आवाज सुनाई देती है, इसलिए वे अनुमान करते हैं कि नजदीक में जरूर ही कोई गाँव होना चाहिए। यही है वैज्ञानिकता के अभाव में अहिंसात्मक योजना। इसमें कोई गाँव किसी गाँव की हिंसा नहीं करता। किसी गाँववाले दूसरे किसी गाँववालों से मिलने नहीं जाते। सम्पर्क की कोई जरूरत ही नहीं मानते। जब हम सर्वोदय की बात कहते थे, यहाँ के नेता समझते थे कि ये लोग बहुत करके लाओत्सेवाली योजना करना चाहते हैं।

स्टालिन की योजना : केवल सहयोगी

अब आध्यात्मिकता के अभाव में—अहिंसा के अभाव में—वैज्ञानिक योजना कैसी होती है, यह देखिये। उसके लिए रूस का उदाहरण लें। वहाँ सब खेती इकट्ठी कर दी गयी है। किसीसे पूछा तक नहीं जाता कि तुम इसके लिए राजी हो या नहीं? खेती के बारे में बैलों से कभी सलाह नहीं ली जाती। इसी तरह वहाँ साधारण जनता का योजना बनाने में कोई हाथ नहीं। योजना सरकार ही बनायेगी और तदनुसार सबको काम करना पड़ेगा। बैलों का धर्म है, पूरा काम करना और व्यवस्थापकों का काम है, बैलों को पेटभर खिलाना। इस योजना में खाना-कपड़ा

सबको मिलेगा। भौतिक आवश्यकताओं की कमी नहीं होगी। लेकिन कोई आपकी सलाह न लेगा, आपको अपने विचारों को आचार में उतारने की आजादी नहीं रहेगी।

सर्वोदय में दोनों का समन्वय

इस तरह लाओत्सेवाली योजना और स्टालिनवाली योजना ऐसी दो योजनाएँ आपके सामने रखी हैं। लाओत्से की योजना पर 'अहिंसात्मक' विशेषण लागू होता है, तो स्टालिन की पद्धति को 'सहयोगी' कह सकते हैं। लेकिन सर्वोदय में दोनों का समावेश हुआ है। यह 'अहिंसात्मक और सहयोगी' कही गयी है और इसीलिए इसे देश के सभी विभिन्न विचारकों का आशीर्वाद प्राप्त हो गया है। (४५)

(७) विश्वास पर ही व्यक्ति, समाज टिकेंगे

भारत की अपनी एक सभ्यता है। उसके पीछे हजारों वर्षों का इतिहास है। वेद, उपनिषद्, गीता, गुरु-वाणी आदि के जरिये यहाँ एक सद्विचार की अक्षुण्ण परंपरा चालू रही है। उसने यहाँ की हवा में एकता की भावना उत्पन्न की है। पाकिस्तान की घटना ने लोगों के दिल तोड़ दिये, फिर भी जिन विचारों की बुनियाद यहाँ पड़ी है, वह कहाँ जा सकती है? हम उन्हीं विचारों का सम्बल पाकर आज भी गाते हैं: **'ना कोई बैरी, नाहीं बिगाना, सकल संगी हमको बनि आई।'** यहाँ लोग चाहे झगड़ते रहें, लेकिन सबके दिलों में एकता की ख्वाहिश है। गुरु नानक ने यही बात कही है: **'आई पंथी सकल समाजी।'** आओ, इस पन्थ में आ जाओ। हम सब एक ही समाज के हैं।

इन्सानियत पर यकीन करनेवाला जादू

टूटे हुए दिलों को जोड़ने की प्रक्रिया हिन्दुस्तान में बराबर जारी है। हमने भूदान, ग्रामदान भी इसीलिए चलाया है कि लोगों के टूटे दिल जुड़ जायँ। दिल टूटने के कई कारण होते हैं। धार्मिक झगड़ों से दिल

टूटते हैं, भाषाई झगड़ों से दिल टूटते हैं और जमातों के झगड़ों से भी दिल टूटते हैं। आर्थिक संकट आने से भी जुड़े दिलों का सदा के लिए बिलगाव हो जाता है। इसलिए इन सारे कारणों को मिटाने के लिए हम चाहते हैं कि आज के गाँव ग्राम-स्वराज्य में परिवर्तित हो जायँ। मैं ग्राम-स्वराज्य का सन्देश लेकर ही आपके बीच आया हूँ। ग्राम-स्वराज्य दिल जोड़ने की एक तरकीब है।

दिल की बात दिल जानता है। मेरे मन में क्या है, इस बात का स्पर्श आपके दिलों को होता है। इसीलिए यहाँ के लोग आते हैं और मुझे कहते हैं कि मैं झगड़े मिटाने का काम करूँ। क्या मेरे पास कोई जादू है, जो मैं झगड़े मिटा दूँ ? हाँ, एक जादू है और वह यही कि मेरा इन्सानियत पर यकीन है। मैंने जाहिर किया है कि इन्सान के लिए जो ताकतें मददगार हो सकती हैं, उनमें सबसे बड़ी ताकत है : विश्वास। यदि आप चाहते हैं कि सर्वत्र शान्ति हो, सुख हो, समृद्धि हो, कहीं कोई कष्ट न पाये, कभी किसीको परेशान न होना पड़े, तो वेदान्त, विज्ञान और विश्वास, इन तीनों को अपनाने की जरूरत है।

दूसरों पर विश्वास : महान् शस्त्र

आज भाई-भाई में अविश्वास है, मित्र-मित्र में अविश्वास है। विभिन्न पक्षों, दलों और गुटों में अविश्वास है। किन्तु हम कहना चाहते हैं कि अविश्वास अब इस जमाने की चीज नहीं है। आज मानव के हाथों में इतने भयानक शस्त्रास्त्र आ गये हैं कि यदि एक-दूसरे पर अविश्वास करते रहेंगे, तो मानव-समुदाय मिट जायगा। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में किस तरह अविश्वास चलता है ! अविश्वास से बात बनती नहीं, बिगड़ जाती है। अगर हमारा दारोमदार केवल लाठी पर होता, तो अविश्वास के परिणामस्वरूप कुछ सिर-फुड़ौवल होकर ही रह जाती। लेकिन आज हमारे हाथों में हाइड्रोजन बम है। इसलिए अब अविश्वास के कारण सर्वनाश हुए बिना नहीं रहेगा।

इसलिए जैसे हम मित्रों पर विश्वास करते हैं, वैसे ही प्रतिपक्षी पर भी विश्वास करना सीखें। विश्वास रखने से हम कुछ खोयेंगे नहीं। खोयेगा वही, जो विश्वासघात करेगा। बाबा के पास यही जादू है कि वह सब पर विश्वास रखता है। आज की सभा आरंभ करते समय कुछ शोरगुल हो रहा था। तब मैंने कहा कि अभी मैं धीरे-धीरे बोलूँगा। लेकिन जैसे ही बोलना शुरू किया, शोर बन्द! अगर धीरे बोलने से काम न चलता, तो मैं मौन रहता। जैसे हिंसा में शस्त्र तीव्र से तीव्रतम हो जाते हैं, वैसे ही अहिंसा में सौम्य से सौम्यतम होते हैं। सर्वोदय की पद्धति में दूसरों पर विश्वास रखना ही बहुत बड़ा शस्त्र है।

विश्वास पर विश्वास करें

विश्वास इस संसार का सबसे अद्भुत जादू है। विश्वास पर ही यह सारा संसार खड़ा है। यदि विश्वास की शक्ति न रहे, तो मानव-जाति एक-दूसरे से लड़-लड़कर समाप्त हो जायगी। एक चोर को भी अपने साथी चोर पर विश्वास करना पड़ता है। यदि हम इस विश्वास पर विश्वास करके उसकी शक्ति को पहचान सकें और तदनुसार बरत सकें, तो दुनिया के झगड़े मिटने में देर न लगेगी। आज की दुनिया के झगड़ों का सबसे बड़ा कारण अविश्वास है। हमें यही अविश्वास मिटाना है।

मेरे पास भिन्न-भिन्न विचारों के लोग आते हैं। वे जो कुछ कहते हैं, मैं उन पर विश्वास रखता हूँ। क्या वे सारे मुझे ठगनेवाले हैं? नहीं, वे मुझे ठग नहीं सकते। जो सामनेवाले पर विश्वास रखता है, वह उसके हृदय में प्रवेश पाता है। फिर तो सामनेवाले के लिए भी यह लाजिमी हो जाता है कि वह ठीक-ठीक बातें बता दे। मैं किसी पर विश्वास रखता हूँ, तो उसके लिए भी मेरे पर विश्वास करना लाजिमी हो जाता है।

विश्वास से असज्जन भी सज्जन बनते हैं

यहाँ मैंने चन्द व्यक्तियों का एक सर्वोदय-मण्डल बना लिया है।

वे व्यक्ति दुनिया में सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसी बात नहीं। उनमें दोष हो सकते हैं। लेकिन मैंने विश्वास से यह मण्डल बनाया है। आप भी उन लोगों पर विश्वास रखिये। अगर मैं सर्वोदय-मण्डल में परखकर आदमियों को सम्मिलित करता, तो आप भी उन्हें परखते। लेकिन मैंने उन पर विश्वास रखा है। आप भी उन पर विश्वास रखिये। आपके विश्वास के बावजूद अगर वे निकम्मे साबित हुए, तो बाबा डूबेगा, आप डूबेंगे और वे भी डूबेंगे। डूबना है, तो साथ डूबेंगे और तैरना है, तो साथ ही तैरेंगे। इसीमें आनन्द है। आप विश्वास रखेंगे, तो वे निश्चय ही डूबने जैसा काम नहीं करेंगे। विश्वास से असज्जन सज्जन बन जाते हैं।

हम एक पत्थर लेते हैं और मन्त्र बोलकर उसे भगवान् बना देते हैं। भगवान् ने हमें बनाया, पर हम भावना से अभिषिक्त कर पत्थर को ही भगवान् बना देते हैं। इसी तरह हमने दस पत्थर इकट्ठे किये हैं। बच्चा माँ पर विश्वास रखता है, इसलिए माँ बच्चे का खून नहीं कर सकती। मैंने इन लोगों पर विश्वास रखा है, इसलिए ये भी गलत काम नहीं कर सकते। अगर कभी इनसे कोई गलत काम हो जाय, तो ये ही फिर से जाहिर करेंगे कि "हमने अमुक गलती की है, आप हमें क्षमा कीजिये।" जब तक जाहिर नहीं करते, तब तक यह मानना चाहिए कि ये ठीक काम करते हैं।

विश्वास इस जमाने की शक्ति है। लोग मेरे शब्दों पर विश्वास रखते हैं। नहीं तो उनके पास क्या सबूत है कि मैं झूठ नहीं बोलता। किन्तु लोगों का मुझ पर विश्वास है कि मैं झूठ नहीं बोलता और मैं भी उन पर विश्वास रखता हूँ। विश्वास ही मेरा जादू है। इसकी शक्ति महान् है। (४६)

(८) विज्ञान-युग और अध्यात्म की दिशा

पहले कन्याकुमारी में समुद्र के किनारे बैठकर हमने प्रतिज्ञा की थी कि "जब तक भारत में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना नहीं होगी, तब तक हम

घूमते ही रहेंगे ।" यही प्रतिज्ञा हमने 'पीरपंचाल' पर बर्फ पर ध्यानस्थ बैठ-कर दुहरायी थी । इस तरह वह विचार हवा में फैल गया है । हिन्दुस्तान को ग्राम-स्वराज्य की दिशा में जाना होगा और वह जायगा । राज्यों की तरफ से आज कोशिश हो रही है कि ग्रामों को अधिकार मिले । उन कोशिशों में बहुत ढील है । उसमें कई नुक्स हैं, फिर भी दिशा ठीक है । वह सारा विचार सुधारना होगा, फिर देश में एक हवा बन जायगी । फिर ग्रामदान, भूदान, सर्वोदय, ग्राम-स्वराज्य आदि का विचार गाँव-गाँव पहुँचाया जायगा और हिन्दुस्तान में ग्राम-स्वराज्य होगा, इसमें कोई शक नहीं है । इसमें हम अपना अधिक-से-अधिक पुरुषार्थ, जितना खर्च कर सकते हैं, करने की निरन्तर कोशिश करें ।

हृदय-प्रवेश की प्रक्रिया

इस समग्र कार्य की बुनियाद आध्यात्मिक और नैतिक है । आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की स्थापना किये बिना सर्वोदय-विचार प्रतिष्ठित नहीं होगा । वैसे उन मूल्यों का चिंतन करनेवाले पहले के ऋषि मानते थे, लेकिन समाज ने उनको नहीं माना । हम उन मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं, इसीलिए आगे की यात्रा में जरा गहराई में जायँगे और मूल संशोधन करेंगे । उसमें जितना हृदय-प्रवेश और हृदय-परिचय कर सकते हैं, करेंगे । हृदय-प्रवेश की एक प्रक्रिया होती है, जिसका हमें ज्ञान है । फिर भी वह कितनी सधेगी, हम नहीं कह सकते । प्रक्रिया यह है कि निज देह-बन्धन ढीला पड़े । हम देह के बन्धन में बँधे हुए हैं, वह ढीला पड़े बिना हृदय-प्रवेश नामुमकिन है । हमारी कोशिश यह रहेगी कि वह बन्धन, जिसमें इस शरीर के साथ जीवात्मा जकड़ा हुआ है, वह छूटे, ढीला पड़े । हम यह कोशिश करते रहेंगे, तो सहज ही बाहरी बहुत सारी चीजों को हम छोड़ देंगे । अब हम स्थूल विचार लोगों पर छोड़ेंगे और मूलभूत बुनियादी विचार ही रखते जायेंगे । बाकी जितना करना है, लोग ही करेंगे । हम सिर्फ समझा देंगे, उससे ज्यादा कुछ नहीं करेंगे । इसीसे देश की ताकत बनेगी ।

विचारों में शक्ति

अकसर हम देखते हैं कि लोग मार्गदर्शन करना चाहते हैं, राह दिखाना चाहते हैं, जिससे बहुत-सी पार्टियाँ बनती हैं। उनमें ऊपर से नीचे मार्ग-दर्शन दिया जाता है, 'डिसिप्लिन'—अनुशासन—लादा जाता है और संगठन को कसकर बनाया जाता है। हर जमात को यही फिक्र रहती है कि हमारा संगठन मजबूत बने। यह गठन बनाने की बात हमें कभी नहीं जँची। इस प्रकार के संगठनों से सत्कार्य नहीं बन सकता। जिसमें जनता की वासना तरंगित हो, वह अवश्य ही सत्कार्य है, ऐसा नहीं कह सकते हैं। यह जरूरी नहीं है कि जितना मजबूत संगठन बनेगा, उतना कार्य बनेगा। बहुतों का हमारी विचार-पद्धति पर यही आक्षेप है कि बाबा बहुत हवा पैदा करता है, लेकिन संगठन नहीं करता है। अगर कसकर संगठन बनाता, तो सब काम हो जाते। लेकिन हमें विचारों की जितनी कीमत महसूस होती है, और दूसरी किसी चीज की नहीं। हम समझते हैं कि विचारों में शक्ति होती है। हम नहीं मानते कि विचारों के अलावा दूसरी किसी चीज में शक्ति होती है। लेकिन लोग संगठन-शक्ति में ही विश्वास करते हैं।

मानव-जीवन की संकुचितता के कारण

मैं कहना चाहता हूँ कि ये सारे संगठन अपने ही वजन से गिरने-वाले हैं! वे जिस आधार पर खड़े हैं, वे आधार ही इस विज्ञान के जमाने में खतम होनेवाले हैं। अब तो इधर विश्व रहेगा और उधर मानव। बीच की सब कड़ियाँ ढीली होनेवाली हैं। एक ग्राम को समूह मानकर मानव उसमें अपना सब कुछ समर्पण करेगा, समाज को सारा दान देगा, लेकिन उसका अपना विचार स्वतन्त्र रहेगा। स्वतन्त्र मानव और विश्व, इन दोनों के बीच जकड़नेवाली कोई कड़ी विज्ञान सहन नहीं करेगा। आज तक जातियों ने, विधि-विधानों ने मानव को बहिष्कार आदि से जकड़ रखा था। अनेक धर्म-पन्थों ने मानव को नाना उपासनाओं में जकड़

रखा था। अनेक पुस्तकों ने अपना भार सिर पर डालकर मानव को जकड़ रखा था। मैं कहना चाहता हूँ कि मैं किसी पुस्तक का भार सिर पर नहीं उठाना चाहता। अगर हम मानें कि किसी पुस्तक में जो लिखा है, उसमें से हर वाक्य भगवत्-वाक्य है, उस पर सोचना नहीं है, तो मनुष्य की बुद्धि कुण्ठित हो जायगी, स्वतन्त्र बुद्धि नहीं रहेगी। अनेक लोगों ने राष्ट्र-भावना पैदा करके मनुष्यों की बुद्धि को संकुचित कर दिया है। इन सब कारणों से मनुष्य-जीवन संकुचित बना है।

अध्यात्म-विद्या और विज्ञान की एकवाक्यता

अध्यात्म-विद्या इन सबके खिलाफ पहले से ही खड़ी थी। लेकिन अब विज्ञान भी इनके खिलाफ बोल रहा है। जाति, धर्म, पन्थ, राष्ट्र— ये सारे काल्पनिक भेद छोड़ो, यह बात वेदान्त पहले से ही कहता आया है। चन्द लोग इसे सुनते थे और बहुत थोड़े लोगों के दिमाग में वह बात बैठती थी। अब ये विचार बहुत दूर के नहीं रहे हैं। इनके बिना हमारा चल जायगा, हमारे जीवन के लिए उनकी जरूरत नहीं है, ऐसी परिस्थिति अब नहीं रही। अब तक हम इन विचारों को ऊँचे ताक पर रखते थे और छोड़ देते थे। लेकिन अब जाति, पन्थ, राष्ट्र आदि भेदों को छोड़ने की वही बात विज्ञान बोल रहा है। इस तरह एक बाजू से विज्ञान और दूसरी बाजू से वेदान्त, ब्रह्म-विद्या, दोनों एक ही चीज कह रहे हैं और उन भेदों पर प्रहार कर रहे हैं। इसलिए समझना चाहिए कि सियासी और मजहबी लोगों ने अब तक अपने जो कुछ फिरके बनाये हैं, वे आखिरी साँस ले रहे हैं। इसके बाद उन्हें खतम होना है। यह बात मैंने कश्मीर में बीसों बार कही है। खुशी की बात है कि हमारे बड़े-बड़े राजनीतिक नेता उसूलन इसे मानते हैं। मैं कहता हूँ कि उसूलन मानते हो, यह तो अच्छी बात है। अब आप अपने व्यवहार को उससे कितना भी दूर रखो, तो भी आखिर वह चीज आप पर आ गिरेगी और आपको उसे कबूल करना होगा। एक बात को उसूलन मानने पर उसे कब तक टाल सकोगे और अपना पुराना रवैया कब तक चला सकोगे।

राजशक्ति सीमित हिंसा को लेकर काम करती है

इन दिनों वहुत-से लोग बड़ी-बड़ी बातें करते हैं और हिंसा के खिलाफ बोलते हैं। इसके मानी यह नहीं कि वे अहिंसा में निष्ठा रखते हैं। इन दिनों कई लोग 'न्यूक्लीयर वेपन्स' के खिलाफ खड़े हैं। वे कहते हैं कि दुनिया के हित के लिए उनका प्रयोग नहीं होना चाहिए। इस तरह जोर-शोर से कहनेवाले अहिंसक नहीं होते हैं। वे तो घबड़ाये हुए हैं। वे समझते हैं कि 'न्यूक्लीयर वेपन्स' आयेंगे, तो अपने 'कनवेन्शनल वेपन्स' नहीं चलेंगे, जिनको वे चलाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि अपना दबदबा बना रहे, ताकि दण्ड-शक्ति के आधार पर हम समाज को कसकर बाँध सकें और अपना राज चला सकें! उन्हें भय है कि इन नये अस्त्रों के कारण उनके पुराने शस्त्र टूट पड़ेंगे। वे लोग अहिंसा के हित में नहीं, बल्कि सीमित हिंसा के हित में बोल रहे हैं। राज-शक्ति सीमित हिंसा को लेकर काम करती है। उन लोगों को भय है कि उनकी दण्ड-शक्ति अब काम नहीं करेगी, इसलिए वे 'न्यूक्लीयर वेपन्स' के खिलाफ बोल रहे हैं।

जागतिक युद्ध अहिंसा के निकट है

हम भी 'न्यूक्लीयर वेपन्स' के खिलाफ हैं। लेकिन हमने कहा है कि हमें 'वर्ल्ड वार' (विश्व-युद्ध) का कोई डर नहीं है। हम 'वर्ल्ड वार' से कहते हैं कि तू आना चाहे तो जल्दी आ जा! मुझे तेरा डर नहीं है। मुझे तो डर इन छोटे-छोटे शस्त्रास्त्रों का है। लाठी, कृपाण, बन्दूक, तलवार—ये सारे भयानक शस्त्र हैं। ये खतम होने चाहिए। इन्हींके कारण दुनिया में अशान्ति और भय पैदा होता है। 'वर्ल्ड वार' मानव नहीं लाता है। वह तो 'डिवाइन' (दैवी) होती है। जब परमेश्वर चाहता है कि संहार हो, तब वह मानवों को प्रेरणा देता है। उस हालत में मेरे जैसे की क्या मजाल रहेगी कि मैं अहिंसा की बात करूँ! फिर तो मेरे हाथ में भी तलवार आयेगी। ईश्वर के खिलाफ कौन टिक सकता है? अगर ईश्वर चाहता है कि हमारा मानव-समाज साफ हो जाय और फिर

'क्लीन स्लेट'—कोरी पाटी—हो जाय और फिर से नयी दुनिया पैदा हो, तब वह यह सब कर सकता है । कल अगर भूकम्प हो जाय या सारी पृथ्वी जलमय हो जाय और अफ्रीका के वीरान जंगलों में जो थोड़े-से लोग रहते हैं, वे ही बच जायँ, तो फिर नये सिरे से 'सिविलाइजेशन'—सभ्यता—का आरम्भ होगा । फिर वे लोग याद करेंगे कि पहले हवाई जहाज भी थे । फिर वे रामायण जैसे महाकाव्य लिखेंगे । वे लोग यह भी लिखेंगे कि एक जमाने में ब्रह्मास्त्र चलता था, जिससे सब लोग मूर्छित हो जाते थे । मानव के विकास की नये सिरे से शुरुआत होगी । अगर ईश्वर यही चाहता है, तो उसे कौन रोकनेवाला है ? इसलिए उसकी मुझे कोई फिक्र नहीं । हम 'वर्ल्ड वार' से डरते नहीं हैं । हम समझते हैं कि 'वर्ल्ड वार' अहिंसा के बिलकुल नजदीक है । जैसे वर्तुल के दो सिरे बिलकुल नजदीक होते हैं, वैसे ही 'वर्ल्ड वार' और अहिंसा बिलकुल नजदीक हैं । यह समझने की जरूरत है । 'वर्ल्ड वार' खतम होने पर अहिंसा को ही जगह मिलनेवाली है । बीच में शस्त्रास्त्र आदि कुछ नहीं रहेंगे । इन दिनों अक्सर लोग 'वर्ल्ड वार' को टालने की कोशिश करते हैं और चाहते हैं कि 'न्यूक्लीयर वेपन्स' इस्तेमाल न किये जायँ, ताकि उनके 'कनवेन्शनल वेपन्स' जारी रहें और वे अपना राज चला सकें । इसीलिए जो लोग 'न्यूक्लीयर वेपन्स' का विरोध करते हैं, वे फाँसी की सजा का और जेल का विरोध नहीं करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि 'न्यूक्लीयर वेपन्स' के रहते उनकी फाँसी, जेल आदि सब खतम होनेवाला है । वे चाहते हैं कि फाँसी की सजा रहे, ताकि उनका राज चले ।

मनुष्य को अहिंसा की प्रेरणा कहाँ से होती है, हम कह नहीं सकते हैं । बहुत लोग समझते हैं कि आज का जो कानून बना है, वह ढोंग, ढकोसला है । राज चलानेवाले चाहते हैं कि उनका दबदबा बना रहे, लेकिन उनके दिन लद गये हैं । उनके दिन गिने हुए हैं । अब उनकी नहीं चलेगी । इस बात को तो वे भी जानते हैं, लेकिन फिर भी कोशिश करते हैं कि जब तक चले, चलाते रहो । कूटनीतिज्ञों का यही रवैया रहता

है। वे चाहते हैं कि समस्याओं को दूर ढकेला जाय, ताकि हमारे जीते-जी वह समस्या न पेश हो। फिर अपने बेटे के सामने आ जाय, तो हर्ज नहीं। वे चाहते हैं कि समस्याओं को दूर ढकेला जाय। वे उसका हल निकालना नहीं चाहते हैं। हमारी 'मिनिस्ट्री' के रहते समस्या दूर ढकेली जाय, तो ठीक है। फिर अगली 'मिनिस्ट्री' के सामने समस्या भले ही पेश हो, ऐसा वे सोचते हैं। इस तरह उनका बहुत तंगनजरिया होता है। वे बिलकुल नजदीक का देखते हैं, दूर का नहीं देखते हैं। **"परम् पश्यत माऽपरम् दीर्घम् पश्यत मा ह्रस्वम्।"** दूर का देखो, नजदीक का मत देखो, यह बात ऋषियों ने कही है। लेकिन राजनीतिज्ञ बिलकुल नजदीक का देखेंगे और उतना थोड़ा-सा सँभल गया, तो काम बन गया, ऐसा मानेंगे। (४७)

(९) विश्व-नागरिकता : जमाने का सही विचार

हिन्दुस्तान में आजादी के बाद जो कुछ हमने छोटा-बड़ा काम किया, उसका असर दुनिया पर कुछ-न-कुछ तो हुआ ही। हम किसी गुट में शामिल नहीं होते, अपनी स्वतन्त्र हस्ती और विचार रखते हैं—इसकी कद्र सारी दुनिया करती है। यूरोप, अमेरिका आदि देशों से लौट आनेवाले कहा करते हैं कि भारत के बारे में दुनिया के लोग बड़ी आशा रखते हैं। यहाँ की विदेश-नीति बड़ी अच्छी है। उससे दुनिया को शान्ति की राह मिलेगी।

भारत में जो भूदान-ग्रामदान का काम चला है, उससे भी दुनिया के लोगों को लगता है कि इस काम में कुछ ऐसी चीज है, जिससे आज की देश-देश की समस्याएँ हल करने का मार्ग खुल जायगा। इसीलिए हमारी यात्रा में बीच-बीच में यूरोप, अमेरिका, एशिया आदि मुल्कों के कई लोग आते हैं। वे हमारे साथ घूमते हैं, अपने-अपने देशों में जाकर ग्रन्थ तथा लेख लिखते और आशा रखते हैं कि दुनिया में शान्ति-स्थापना के लिए इसमें से कुछ तथ्य अवश्य निकलेगा।

विश्व-नागरिकता की ओर

बचपन में हमें स्कूल में अनेक विषयों का ज्ञान सिखाया जाता था, लेकिन हमारा चित्त इसीमें लगा रहता था, देश कैसे मुक्त हो और उसके लिए हम क्या करें ? बचपन से ही हमारा लक्ष्य भारत को आजाद बनाने का रहा है। किन्तु आज के लड़के तो स्वतन्त्र भारत के विद्यार्थी हैं। इसलिए वे विश्व-नागरिक बन सकते हैं। अब यदि हम अपने देश को ठीक ढंग से बनायें, शान्ति की ताकत कायम करें, तो अपना असर कुल दुनिया पर डाल सकते हैं। अब दुनिया और हमारे बीच कोई पर्दा नहीं रहा। यहाँ के अच्छे काम दुनिया में फैलेंगे और उसका दुनिया पर असर होगा। बुरे काम का भी दुनिया पर असर होगा। अब हमारे अच्छे-बुरे काम सीमित नहीं रह सकते, बल्कि दुनिया के बाजार में उपस्थित किये जायँगे। इसलिए हम कदम-कदम पर सोचें और ऐसा काम करें, जिससे औरों को भी यह मालूम पड़े कि भारत की ताकत एक काम में जुट गयी है। यहाँ की लगभग ३७ करोड़ लोगों की जमात अपने देश का वैभव बढ़ाने और कुल दुनिया की सेवा करने के लिए शान्ति और स्वतन्त्रता के स्थापनार्थ अग्रसर हो रही है।

आप दुनिया के केन्द्र में

महाराज अशोक के जमाने में धर्म-चक्र-प्रवर्तन का काम भगवान् बुद्ध ने शुरू किया था। वह कार्य संस्थाओं के जरिये भारत में फैला, किन्तु पिछले दो-ढाई हजार वर्षों में दूसरा ऐसा मौका नहीं मिला, जैसा आज मिल रहा है। फिर अशोक के जमाने में जो धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया गया, वह तो सीमित रहा; क्योंकि उस जमाने में विज्ञान नहीं था। लेकिन विज्ञान ने आज प्रचार का दरवाजा खोल दिया है। विचार का संचार फौरन दुनिया में हो जाता है। इसीलिए कहना पड़ता है कि अशोक के जमाने में भी जो मौका हिन्दुस्तान को नहीं मिला, वह आज मिला है। अतएव यह मत समझिये कि सीकर जिला हिन्दुस्तान के एक

कोने में है और दुनिया के साथ उसका सम्बन्ध ही नहीं है। बल्कि यही समझें कि इस समय आप दुनिया के मध्यस्थान में हैं और जो भी काम करते हैं, उसका प्रभाव सारे विश्व पर होता है। आप अगर झगड़ते हैं, तो इंग्लैण्ड के लोगों को उसकी जरूरत नहीं है। वह तो वहाँ भी चलता है—द्वेष चलता है, स्वार्थ चलता है। इसलिए अब आप कोई ऐसा ठोस कदम उठायें, जिससे दुनिया को मार्ग मिले।

हमने अंग्रेजी में एक भी लेख नहीं लिखा। फिर भी जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि में हमारे आन्दोलन की बातें फैल गयीं। कारण स्पष्ट है, दुनिया को उसकी प्यास है। कहीं भी हम कुआँ खोदें, तो प्यासे लोग समझते हैं कि इसकी जरूरत है। इसलिए आपके सामने सवाल यही है कि अपने गाँव में कौन-सा ऐसा काम कर रहे हैं, जिससे दुनिया के नागरिक के नाते आप दुनिया को कुछ दे सकें? आप भोजन करते हैं, खाना खाते हैं, सिनेमा देखते हैं और अन्य स्वार्थ भी साधते हैं; लेकिन ये सारी प्रवृत्तियाँ दुनिया के लिए मार्ग-दर्शन का काम नहीं कर सकतीं। विश्व-नागरिकता का विचार ही विज्ञान-युग का वास्तविक विचार है। (४८)

(१०) हमें विश्व-मानव बनाना है

हमारा प्रथम कर्तव्य क्या है? एक दिन पवनार में 'आजाद-हिन्द-सेना' के एक भाई हमसे मिलने आये थे। आते ही उन्होंने 'जय हिन्द' किया। हमने उत्तर दिया 'जय हिन्द, जय दुनिया, जय हरि।' इस तरह हमने यह सूचित किया कि 'जय हिन्द' में भी खतरा हो सकता है, इसलिए 'जय दुनिया' कहना चाहिए और आखिर में परमेश्वर का नाम तो होना ही चाहिए। हमें सोचना है कि हम सर्वप्रथम कौन हैं? क्या हम सर्व-प्रथम कन्नडिगा हैं, फिर भारतीय और उसके बाद मानव या सर्वप्रथम मानव, फिर भारतीय और उसके बाद कन्नडिगा? उसके पीछे परिवार-वाले और उसके पीछे देहगत? आखिर हम हैं क्या?

विश्व-नागरिकता : मूल्य-परिवर्तन का अमोघ मन्त्र

यह शिक्षण-शास्त्र का विषय है। पहले जब मैं आश्रम में शिक्षक का काम करता था, तो रहता वर्धा जिले में ही था। फिर भी बच्चों से वर्धा जिले की या महाराष्ट्र की ही बात न करता था। बल्कि यही कहता था कि हम इस जगत् के निवासी हैं, विश्व-नागरिक हैं। यह जगत् कितना लम्बा-चौड़ा है। आकाश के एक हिस्से में आकाश-गंगा है और दूसरा हिस्सा कोरा ही कोरा है। करोड़ों गोलकों के बीच एक सूर्य है। इतने बड़े गोलकों के सामने वह एक तिनका भी नहीं है। उस सूर्य के इर्द-गिर्द हमारी पृथ्वी घूमती है। उस पृथ्वी पर असंख्य (चतुर्विध) प्राणी हैं। वैज्ञानिक २०-२५ लाख प्रकार के प्राणी मानते हैं, तो हमारे पुराणों में उनकी ८४ लाख योनियाँ बतायी गयी हैं। जो भी हो, करोड़ों, लाखों की ही बात है, हजारों की भी नहीं। इतनी योनियाँ हैं कि उनमें व्यक्ति का कोई हिसाब ही नहीं। उनमें मानव एक छोटी-सी योनि है। उस मानव-समाज में भारत एक देश है। उसमें एक महाराष्ट्र प्रदेश है। उसके अन्दर वर्धा एक छोटा-सा जिला है। उसके अन्दर यह आश्रम है। उसमें दो खेत हैं और उसके अन्दर हम बिलकुल शून्य हैं। हमारी कोई हस्ती ही नहीं है।

वेदों में तीन मन्त्रों का एक अघमर्षण सूक्त है। उसे जपने से 'अघमर्षण' याने पाप-निरसन होता है। उस सूक्त में कहा है कि "प्रारम्भ में ऋत और सत्य था; उससे सूर्य, चन्द्र आदि सृष्टि हुई, नक्षत्र हुए—" बस, खतम हुआ सूक्त। पूछा जा सकता है कि आखिर इस सूक्त के जप का पाप-निवारण से क्या सम्बन्ध है। इसका तात्पर्य यही है कि इसको जपने से इतने विशाल ब्रह्माण्ड की कल्पना मनुष्य के सामने आती है और उसके समक्ष हम कितने छोटे हैं, इसका भान होता है; तो अहंकार मिटता है। फिर पाप की प्रेरणा ही नहीं होती।

दूसरी मिसाल देखिये। माँ बच्चे को रोटी खिलाना चाहती है। 'देख, कौआ!' पर वह कबूल नहीं करता, रोता ही रहता है। फिर

माँ कहती है, तो बच्चा कौए की ओर देखता है और उसका रोना खतम हो जाता है। आखिर बच्चे ने उस कौए में क्या देखा ? यही कि यह मेरा भाई है। उसे एकदम भान हुआ कि यह आत्मा है और मैं भी आत्मा हूँ। यह चेतन है और मैं भी चेतन हूँ। बस, वह एकदम उसके साथ एकरूप हो गया और अपना दुःख भूल गया। भारतीयार ने तमिल में एक सुन्दर काव्य लिखा है, जिसमें वह कहता है: "कोके करवै एगल जाती" याने कौए की और हमारी एक ही जाति है। इस तरह स्पष्ट है कि जब हमारे ध्यान में यह आ जायगा कि हम पहले मानव हैं, पीछे भारतीय और पीछे कन्नडिगा, तब मूल्य ही बदल जायगा। ये छोटे-छोटे राग-द्वेष और मान-अपमान मेरे तो ध्यान में भी नहीं रहते। हम अभी हैं और शायद दो घण्टे के बाद न रहेंगे, इस हालत में ये सब क्या चीजें हैं ?

ज्ञान के साथ हृदय भी विशाल हो

आज मनुष्य के हाथ में विशाल शक्ति आयी है। उसके साथ-साथ अगर उसका दिमाग छोटा रहा, तो मनुष्य के अन्तर में ऐसा विसंवाद पैदा होगा कि उसका व्यक्तित्व ही छिन्न-भिन्न हो जायगा। पहले के जमाने के बड़े-बड़े सम्राटों को भी दुनिया का भूगोल मालूम नहीं था। अकबर कितना बड़ा सम्राट् था, लेकिन उसका भूगोल का ज्ञान क्या था ? जब अंग्रेज यहाँ आये और उसके दरबार में पहुँचे, तब उसे मालूम हुआ कि 'इंग्लैण्ड' नाम का कोई देश है। किन्तु आज छोटे बच्चे को भी दुनिया के भूगोल का ज्ञान रहता है। इतने विशाल और व्यापक ज्ञान के साथ-साथ अगर चित्त में छोटे-छोटे राग-द्वेष रहें, तो हम टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। ज्ञान की इस विशालता के अनुकूल हृदय भी विशाल होना चाहिए। तभी मानव यहाँ स्वर्ग ला सकेगा।

आज जो छोटे-छोटे काम हो रहे हैं, वे अलग हैं और समाज-क्रान्ति, समाज के उत्थान का काम अलग है। थोड़े-से भूमि-सुधार कर दिये

या कहीं राहत या उत्पादन बढ़ाने का काम कर लिया, यह तो दुनियाभर में चलता ही है । अमेरिका में काफी उत्पादन होता है, दुनिया की आधी सम्पत्ति वहाँ है, लेकिन अन्त:समाधान नहीं है । शान्ति और निर्भयता नहीं है । वहाँ दूसरे देशों से कहीं अधिक आत्महत्याएँ होती हैं और तरह-तरह के पागल मिलते हैं । इसलिए इस बात में कोई मतभेद न होते हुए भी कि हमारे देश में उत्पादन बढ़ाने की जरूरत है, उसके साथ-साथ मानव-हृदय का उत्थान भी आवश्यक है । हमारा जीवन का स्तर तो बढ़ना ही चाहिए, क्योंकि आज वह गिरा हुआ है, लेकिन साथ ही चिन्तन का स्तर भी ऊँचा उठना चाहिए ।

ग्रामदान का आनन्द

ग्रामदान, भूदान आदि से जमीन का मसला हल होता है, यह तो छोटी बात है । बड़ी बात यह है कि इनसे चिन्तन का स्तर ऊपर उठता है । हमारा सारा गाँव एक परिवार बनेगा । वहाँ की हवा, पानी और जमीन—परमेश्वर की सारी देनें सबके लिए होंगी । हम परस्पर सहयोग से काम करेंगे । मैं अपने लिए नहीं, समाज के लिए काम करूँगा । सिर्फ अपनी नहीं, सारे समाज की चिन्ता करूँगा । ऐसी वृत्ति से सारा नैतिक स्तर बिलकुल ही बदल जाता है । इसलिए हमें इस आन्दोलन में उत्साह मालूम होता है । हमारी उम्र हो चुकी है, फिर भी थकान नहीं मालूम होती, क्योंकि अन्तर में एक अद्‌भुत आनन्द है । हम उसका शब्दों में वर्णन नहीं कर सकते । हम तो निरन्तर अमृत-पान कर रहे हैं और उसका थोड़ा-थोड़ा रस सबको पिलाना चाहते हैं ।

भूदान-ग्रामदान से नये विश्व का निर्माण

हमें नया मानव बनाना है । पुरानी चीजें खतम हो गयीं । अब तो देशों की हदें भी टिक नहीं पातीं । एक बार आस्ट्रेलिया के एक भाई हमसे मिलने आये थे । उन्होंने पूछा कि दुनिया के लिए भूदान का अर्थ क्या है ? मैंने कहा : "यही कि आस्ट्रेलिया में काफी जमीन पड़ी है

और जापान में कम है, इसलिए आपको जापानवालों को आमन्त्रण देना चाहिए।" सुनकर बेचारा देखता ही रह गया। उसने कहा : "हाँ, हमारे पास जमीन काफी है, लेकिन हम चाहते हैं कि हमारी संस्कृति की रक्षा हो। इसलिए हमारी संस्कृति से मिलते-जुलते यूरोप के लोग आयें, तो हम उन्हें लेने के लिए राजी हैं।" हमने कहा : "यही जहर है, जिसे खतम करने के लिए भूदान-यज्ञ चल रहा है।" जापान की सभ्यता अलग, आस्ट्रेलिया, यूरोप और हिन्दुस्तान की सभ्यता अलग, हिन्दुओं की सभ्यता अलग और मुसलमानों की सभ्यता अलग—ये सारी अभद्र बातें मिटाने के लिए ही भूदान-यज्ञ है। भूदान में हमारे सामने कोई छोटी चीज नहीं। हमें मानव-जीवन बदलना और नया विश्व निर्माण करना है।

यह आध्यात्मिक मूल्य-स्थापना का यत्न

ग्रामदान से भूमि-सुधार होता है, भूमि-समस्या हल होती है, यह सब तो ठीक है। किन्तु ये सब छोटे परिणाम हैं। दुनियाभर के लोग हमारी भूदान-यात्रा में शामिल होते हैं, तो वे यह देखने के लिए नहीं आते कि इससे भूमि-सुधार कैसे होते हैं। वे यहाँ देखने आते हैं कि किस तरह यहाँ आध्यात्मिक मूल्य स्थापित हो रहे हैं। इस वक्त दुनिया हिंसा से बिलकुल बेजार और हैरान है। सैनिक शक्ति से मसले हल नहीं हो सकते, यह निश्चित हो चुका है; फिर भी पुराना रवैया ही चल रहा है। हम आध्यात्मिक मूल्य स्थापित करने की बातें करते हैं, लेकिन न सेना कम करते हैं और न पुलिस का कार्य ही सीमित करते हैं। आज की हालत में तो हमारा बोलना, बोलना ही रह जायगा। इसलिए हिन्दुस्तान में जनता की ओर से यह प्रयत्न होना चाहिए कि हम नैतिक तरीके चाहें। इसीके लिए शान्ति-सेना और ग्रामदान है। हम चाहते हैं कि आप लोग इस दृष्टि से इसका अध्ययन करें। हमारा एक ही जप है कि हमें विश्व-मानव बनाना है। (४९)

(११) आन्दोलन के विविध दर्शन

मुझसे पूछा गया है कि "यह विज्ञान का युग है। इस युग में हम सारे विश्व के साथ अहिंसा की भूमिका पर किस प्रकार जुड़ सकेंगे ?"

अहिंसा की भूमिका पर विश्व से सम्बन्ध

प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक है। इसका उत्तर समझने से पहले हमें यह मान लेना चाहिए कि बुद्धि और मन के बीच ऐक्य नहीं है। इसी तरह का दूसरा सवाल हिंसा और अहिंसा के बीच भी है। हिंसा द्वारा काम जल्दी कर लेने की इच्छा निरी वासना है। अतः हिंसा में पड़ने का हम मोह न करें। फिर भले ही दूसरे मार्ग से अधिक समय लगे।

यह भूमिका समझ लेने के बाद मैं मूल प्रश्न पर आता हूँ। कुछ उदाहरणों से आपका प्रश्न ठीक तरह हल हो सकेगा। गोवा की ही बात लीजिये। यदि आज विज्ञान का युग न होता, तो वह प्रश्न कभी का हल हो जाता, दुनिया को पता ही न चलता। किन्तु आज वह छोटा-सा प्रश्न भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। इसी तरह आपके यहाँ गुजरात में एक जगह तेल निकला है। लेकिन वह केवल गुजरात का नहीं, बल्कि पूरे भारत का माना जाता है। आगे चलकर वही तेल अखिल विश्व का माना जायगा। फिर उससे सम्बद्ध निर्णय दिल्ली में न होकर विश्व के किसी केन्द्र में होंगे, ताकि समस्त राष्ट्र उस तेल से लाभान्वित हो सकें। इसी तरह आगे चलकर हर प्रश्न व्यापक होते जायँगे। उनका निर्णय 'विश्व-केन्द्र' में होगा। जो प्रश्न व्यापक न होंगे, वे स्थानीय होंगे। स्थानीय निर्णय विकेन्द्रित होंगे। स्थानीय निपटारे के लिए 'रिफरेन्स' के तौर पर उन्हीं लोगों से पूछा जायगा, जो विशिष्ट योग्यता-वाले राग-द्वेषरहित पुरुष हों। इससे तत्काल सारे प्रश्नों का समाधान हो जाया करेगा।

आज तो महागुजरात का प्रश्न ही देखिये। कितना लम्बा हो रहा है ? लेकिन विज्ञान-युग में ऐसे प्रश्नों के निपटारे के लिए अमेरिका,

रूस, जापान आदि के वे लोग भी होंगे, जो निर्णायक बुद्धिवाले माने जाते हैं। वैसे सभी लोग सम्मिलित रूप से निर्णय देंगे, यह मान लिया जायगा।

उपकरण बढ़ेंगे, वासनाएँ घटेंगी

पूछा गया है कि विज्ञान के कारण भौतिक सुख-सुविधाओं का प्राचुर्य हो रहा है। क्या यह ठीक है? विज्ञान-युग में उपकरण उत्तम और विपुल रहेंगे। आँखों के लिए अच्छे-से-अच्छे चश्मे चाहिए, तो वे सुलभ होंगे। किन्तु उसके साथ ही ऐसे भी लोग होंगे, जिन्हें चश्मों की जरूरत ही न रहेगी। इसी तरह हर रोग के लिए अच्छी-से-अच्छी औषधि सुलभ होगी। एक ही डॉक्टर से दवा लेने की परतन्त्रता न रहेगी। किन्तु ऐसे भी लोग रहेंगे, जिन्हें दवा की कोई जरूरत ही न पड़े। गाँव-गाँव में मोटरें सुलभ रहेंगी; लेकिन कहीं पास में व्याख्यान सुनने जाना हो, तो लोग पैदल ही जायँगे। उनमें इतनी क्षमता बनी रहेगी। इतना ही नहीं, आगे चलकर मेरे जैसे व्यक्ति का व्याख्यान सुनने और देखने के लिए हवाई जहाज पर बैठकर कहीं जाने की आवश्यकता ही न रह जायगी। घर बैठे ही मेरा व्याख्यान सुन सकें और मुझे देख सकें, वैसी सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। इस तरह विज्ञान-युग में भोग-वासना कम-से-कम होगी और भोग के साधन प्रचुर रहेंगे।

क्या सचमुच भोग-वासनाएँ घटेंगी ?

इस पर पूछा जा सकता है कि विज्ञान-युग में भोग-वासना घट ही जायगी, यह कैसे सम्भव है? किन्तु यह कोई बात नहीं। विज्ञान-युग में लोग भलीभाँति समझ जायँगे कि भोगों से इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं। इसीसे भोग मर्यादा में आ जायँगे। लोग अधिक भोग से विरत होंगे। फिर कहीं भी लोग रात-रात तक जागकर सिनेमा न देखेंगे, निःस्वप्न नींद का महत्त्व समझेंगे। आज इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि में सप्ताहान्त के अवसर पर कुछ लोग खेतों में जाकर खुली हवा और खुले

आकाश का आनन्द लेते हैं। किन्तु फिर कहीं कोई इस मुक्तानन्द से वंचित न रहेगा। उस समय अभी के ये दस-दस, बारह-बारह मंजिले मकान खाली ही पड़े रहेंगे। जो लोग आज गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से नीचे ही नहीं उतरते, वे भी समझ जायँगे कि खुले आकाश में कितना आनन्द आता है ? विज्ञान-युग में बीड़ी पीकर लोग व्यर्थ में अपना कलेजा न जलायेंगे। जैसे-जैसे विज्ञान की परिपूर्णता होगी, वैसे-वैसे मानव का भी पूर्ण विकास होगा। कल अगर व्यक्तिगत मालकियत मिट जाय, तो तत्काल समझ में आ जायगा कि काम, क्रोध आदि से शारीरिक शक्ति का कितना दुरुपयोग होता है। जब पूरी समझ होगी, पूरा ज्ञान होगा, विज्ञान होगा, तभी आप यह अनुभव कर सकेंगे। अभी पूरा विज्ञान-युग आया नहीं है। मैं जो बात कह रहा हूँ, वह आगे की है।

क्षोभ के रहते सवालों का हल कहाँ ?

यह भी पूछा जाता है कि "आपके मतानुसार मन से ऊपर उठकर बुद्धि की भूमिका पर जाना चाहिए। किन्तु आक्रमण, अकाल, अति-वृष्टि आदि अवसरों पर बुद्धि के स्तर पर निर्णय कैसे किये जा सकते हैं ?" इस सम्बन्ध में हमारा यह निश्चित मत है कि जब तक मन में क्षोभ रहेगा, तब तक सवालों का हल हो ही नहीं सकता। आज तो लड़ाइयों में भी क्षोभ के लिए अवकाश नहीं है। पहले की लड़ाइयों में मनःक्षोभ की गुञ्जाइश हुआ करती थी। हाथ में तलवार उठाकर दूसरे को मारने के लिए जाते समय क्षोभ पैदा हो सकता था, लेकिन आज की लड़ाइयाँ गणित की तरह चलती हैं। दस कदम आगे रहें, तो आगे रहना पड़ेगा और पीछे रहें, तो पीछे रहना होगा। यानी आज के युद्ध में डरने से काम नहीं चलेगा। ठीक-ठीक वैज्ञानिक और गणित की दृष्टि से लड़ना होगा। इसमें मनःक्षोभ के लिए गुंजाइश नहीं है। मनःक्षोभ के कारण कुछ क्षण व्यर्थ ही जाते हैं। इसलिए उससे काम जल्दी होता है, यह मानना गलत है। (५०)

●

परिशिष्ट : १

अध्यात्म के स्रोत गतिशील हों

अर्वाचीन दशकों ने वैज्ञानिक ज्ञान में अद्भुत उन्नति और तकनीकी उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, जो मानव-समाज के लिए अतिशय लाभदायी सिद्ध हुई हैं : जैसे—शीघ्रगामी यातायात के साधन, अच्छा स्वास्थ्य, भौतिक आवश्यकताओं की आसानी से पूर्ति, जीवन के उच्च ध्येयों की प्राप्ति के लिए अधिक अवकाश आदि । साथ ही साथ विज्ञान और तकनीकी ज्ञान से उत्पन्न शक्ति के सदुपयोग या दुरुपयोग की समस्या ने भयंकर रूप ले लिया है । इतिहास में पहली बार मानवता के समक्ष अणु-युद्ध द्वारा उसके पूर्ण विनाश की सम्भावना सामने आयी है । मनुष्य की इस अवस्था का कारण उसके आन्तरिक विकास की उपेक्षा है, जिससे वह अपने मनोवेगों का दास बन गया है ।

वर्तमान काल में यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि विज्ञान और आत्मज्ञान का समन्वय ही इस संकट से मुक्त होने का साधन है । यह परिसंवाद अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ और विश्व-संघ के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित किया गया था, जिसका उद्देश्य इस समन्वय के व्यावहारिक पहलुओं की जाँच-पड़ताल करने और वर्तमान चुनौती का सामना करने के हेतु विज्ञान तथा आत्मज्ञान के स्रोतों को एकत्रित लाने तथा गतिशील बनाने का शोध करना था । यद्यपि साधारणतया विज्ञान बाह्य जगत् की जानकारी से सम्बद्ध है और आत्मज्ञान मानव की अन्तरात्मा के ज्ञान से सम्बद्ध है; परन्तु इस परिसंवाद का निश्चित मत है कि ज्ञान अखण्ड है और एक है । विज्ञान को उसके मौलिक अर्थ 'ज्ञान' के रूप में समझना चाहिए—जिसके अन्तर्गत बाह्य जगत् का ज्ञान और मानव-

स्वभाव का ज्ञान दोनों का समावेश है। सत्य की परिधि से एक ओर तो इन्द्रियजन्य जगत् है, जो अब तक वैज्ञानिकों का मुख्य विषय रहा है और दूसरी ओर आत्मा का क्षेत्र है। इस परिसंवाद का अभिमत है कि इस अर्थ में विज्ञान की अडिग गवेषणा और वैज्ञानिक वृत्ति या वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास ही, जिसमें मानव-प्रकृति का अध्ययन भी शामिल है, वर्तमान समय में मानवता पर छाये हुए महान् व्याधि के लिए संजीवनी का काम दे सकता है।

प्रयोग और निरीक्षण की, व्यवस्थापन और अनुमान आदि की वैज्ञानिक पद्धतियाँ आज यद्यपि बाह्य जगत् के अनुसंधान में अत्यन्त सफल सिद्ध हुई हैं, फिर भी उन्हें मानव-प्रकृति के अनुसन्धान के काम में अभी पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त नहीं किया गया है। मनुष्य के मन और चेतना के सम्बन्ध में जो कुछ वैज्ञानिक खोज आज तक हुई है, वह प्राचीन सन्तों और योगियों द्वारा जीवन की एकता और परस्परानुबन्धिता के सम्बन्ध में अपनी अन्तर्दृष्टि से कही हुई बातों का समर्थन करती है। यह परिसंवाद विश्वास करता है कि इन अनुसंधानों का बड़े पैमाने पर प्रयोग हो। इस बात की पूर्ण आशा है कि आज मनुष्य स्वयं में रहे हुए तत्त्वों की जो अधिकाधिक जानकारी प्राप्त हुई है, उसके द्वारा मानव अपने में प्रेम और प्रज्ञा भी विकसित करने में समर्थ होगा, जिससे भय और असुरक्षितता को, जो कि बाह्य और अन्तर्जगत् की वास्तविक शान्ति के मार्ग में बाधक हैं, मिटाया जा सके।

यह परिसंवाद विश्वभर के सभी वैयक्तिक तथा संस्थागत प्रयत्नों का स्वागत करता है, जो वर्तमान भयानक परिस्थिति का मुकाबला करने और भविष्य का मार्ग प्रशस्त तथा उज्ज्वल बनाने की दिशा में मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति-स्रोतों को चालना देने में उद्यत हैं। परिसंवाद उन सबको इस बात में अपने साथ सम्मिलित होने का आमंत्रण देता है कि मनुष्य को अपनी प्रकृति को अधिकाधिक स्वयं समझने और विशेषतः दूसरे लोगों और राष्ट्रों की भावनाओं तथा विचारों को अधिक सहानुभूति

के साथ समझने योग्य'बनाया जा सके। इन लक्ष्यों को सिद्ध करने की एक पद्धति यह हो सकती है कि इस क्षेत्र में हो रहे न केवल वैयक्तिक, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी सृजनात्मक कार्यों का व्यवस्थित अध्ययन और संकलन किया जाय। यह परिसंवाद यह भी सिफारिश करता है कि इस विषय के वैज्ञानिक अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए नयी संस्था स्थापित करने और उन्हें अवलम्ब देने की दिशा में आवश्यक सभी कदम शीघ्र ही उठाये जायँ। अन्ततः परिसंवाद अपनी आशा व्यक्त करता है कि अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ और विश्व-संघ दोनों मिलकर इस विषय में व्यावहारिक कार्यक्रमों पर विचार करने के लिए विभिन्न संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करके इसी प्रकार के परिसंवादों का आयोजन समय-समय पर करें।

—पटना में दिसम्बर '६२ में हुए आत्म-ज्ञान और विज्ञान-सम्बन्धी परिसंवाद में स्वीकृत निवेदन।

परिशिष्ट : २

अध्यात्म की वैज्ञानिक खोज हो

यह हमारे लिए महत्त्व का विषय है कि विनोबाजी ने कहा कि "आत्मज्ञान और विज्ञान के ऐक्य के लिए सर्व-सेवा-संघ और विश्व-संघ का पारस्परिक सहयोग मेरे ख्याल से अच्छा है" और स्वर्गीय डॉ० राजेन्द्र-प्रसाद ने आशा व्यक्त की कि "आत्मज्ञान और विज्ञान को एक-दूसरे से मिलाने की दिशा में ये दोनों संस्थाएँ अपना प्रयत्न सतत जारी रखेंगी, ताकि मानव को सर्वनाश से बचाया जा सके ।"

हम स्वीकार करते हैं कि यह कार्य केवल बौद्धिक चर्चा का नहीं है, वल्कि एक व्यावहारिक और गतिशील आन्दोलन है। इसलिए सर्व-सेवा-संघ और विश्व-संघ के संयुक्त तत्त्वावधान में पटना में आयोजित परिसंवाद के अन्त में सर्वसम्मति से स्वीकृत इस निवेदन से हम सहमत हैं कि "यह सेमिनार विश्वभर के सभी वैयक्तिक तथा संस्थागत प्रयत्नों का स्वागत करता है, जो वर्तमान भयानक परिस्थिति का मुकावला करने और भविष्य का मार्ग प्रशस्त तथा उज्ज्वल बनाने की दिशा में मनुष्य की आध्यात्मिक स्रोतों को चालना देने में उद्यत हैं । परिसंवाद उन सबको इस बात में अपने साथ सम्मिलित होने का आमन्त्रण देता है कि मनुष्य को अपनी प्रकृति को अधिकाधिक स्वयं समझने और विशेषतः दूसरे लोगों और राष्ट्रों की भावनाओं तथा विचारों को अधिक सहानुभूति के साथ समझने योग्य बनाया जा सके । ······अन्ततः परिसंवाद अपनी आशा व्यक्त करता है कि अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ और विश्व-संघ दोनों मिलकर इस विषय में व्यावहारिक कार्यक्रमों पर विचार करने के लिए विभिन्न संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करके इसी प्रकार के परिसंवादों का आयोजन समय-समय पर करें ।"

इसलिए विश्व-संघ के इस सुझाव का कि भारत की तथा विश्व की आध्यात्मिक, नैतिक और मानवीय शक्तियों को चालना देने का सबसे पहले गैर-सरकारी स्तरों में प्रयत्न किया जाय, एक व्यावहारिक कार्यक्रम के तौर पर हम स्वागत करते हैं । मनुष्य में उसके आन्तरिक विकास की जो असीम क्षमताएँ हैं, जो कि उसके सामाजिक प्रगति की पूर्वशर्त है, वे ही शान्ति और समृद्धि के लिए एकमात्र विश्वसनीय आधार हैं ।

हम अपने कार्यकर्ताओं और साथी नागरिकों को उनकी अपनी आध्यात्मिक और नैतिक जाग्रति तथा वृद्धि के लिए व्यक्तिगत रूप से इन सुझावों पर अमल करने की सिफारिश करते हैं और शान्ति-समृद्धि के वैज्ञानिक और आध्यात्मिक स्रोतों को चालना देने के महान् और समान लक्ष्य की सिद्धि के लिए विभिन्न संस्थाओं और आन्दोलनों से सक्रिय सहयोग की अपेक्षा रखते हैं । और हम यह मानकर चलते हैं कि इस आन्दोलन की सभी अवस्थाओं में इसमें भाग लेनेवाले प्रत्येक व्यक्ति तथा संस्था की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता के सिद्धान्त का पूरा समादर किया जायगा ।

हम निम्न सुझाव प्रस्तुत करते हैं :

१. व्यक्ति के आन्तरिक विकास पर अनिवार्य रूप से सतत बल दिया जाय, ताकि वह समाज की शान्ति-समृद्धि की शक्ति बन सके ।

२. इस आन्दोलन का स्वरूप चूँकि पक्षहीन और पन्थरहित बनाये रखना है और उसके उत्कृष्ट ध्येय के प्रति उसकी प्रामाणिकता कायम रखना आवश्यक है, इसलिए किसी भी पक्ष को इस आन्दोलन का उपयोग अपने पक्षीय या निजी हेतु सिद्ध करने में करने नहीं दिया जाय ।

३. प्रत्येक समस्या के प्रति इस आन्दोलन को पक्षातीत और विधायक रुख रखना होगा ।

४. सभी लोगों में शुभ वृत्ति और एक-दूसरे को समझने की प्रवृत्ति निर्माण की जाय ।

विश्व-शान्ति की समस्या की आज की त्वरा को तथा भारत के सामने आज तीव्र रूप से उपस्थित चुनौती को ध्यान में रखते हुए हम अपने कार्य-

कर्ताओं और साथियों से अनुरोध करते हैं कि वे आध्यात्मिक और नैतिक स्रोतों को चालना देने के इस आन्दोलन में स्वेच्छा से और व्यक्तिगत रूप से सक्रिय भाग लें। सर्व-सेवा संघ के सामने भी हमारा सुझाव है कि वह इस विषय पर रायपुर के आगामी सर्वोदय सम्मेलन में पर्याप्त विचार करे।

सर्व-सेवा-संघ की सभी इकाइयों से तथा लोगों से हमारा निवेदन है कि वे अपनी ओर से इस दिशा में पूरी लगन से प्रयत्न करें। सर्व-सेवा-संघ के अध्यक्ष से हमारा अनुरोध है कि इस विषय पर विचार करने के लिए अगले महीनों में एक समिति का गठन करें।

× × ×

इसके अनुसार जो समिति गठित की गयी है, वह निम्न प्रकार है :

१. श्री जयप्रकाश नारायण (पटना)
२. श्री उ० न० ढेबर (बंबई)
३. डॉ० जे० एच० स्मिथ (पांडीचेरी)
४. श्री पी० वी० आठवले शास्त्री (बंबई)
५. श्री कृष्णकान्त (दिल्ली)
६. श्री ओंप्रकाश त्रिखा (पट्टीकल्याणा)
७. डॉ० टी० आर० अनन्तरमण (वाराणसी)
८. श्री कृष्णराज मेहता (संयोजक) (वाराणसी)

—आध्यात्मिक और नैतिक स्रोतों को चालना देने के विषय पर सर्व-सेवा-संघ की प्रबन्ध-समिति की तारीख ८ से १० अगस्त '६२ की सेवाग्राम-बैठक में स्वीकृत निवेदन।

परिशिष्ट : ३

खोज की दिशा

विज्ञान बाहर से काम करता है और आत्मज्ञान अन्दर से, और दोनों का सहयोग मानवों में होता है । दोनों ह्यूमन हैं, क्योंकि मनुष्य ने दोनों माने हैं । इसलिए अभी जयप्रकाशजी ने बताया कि कोई साधन मिलना चाहिए, जिसका वर्तमान ग्रामदान-आन्दोलन के साथ मेल बैठे । लोगों से बिलकुल अलग रहकर चिन्तन नहीं हो सकेगा । काका ने कहा कि योग की साधना व्यक्तिगत थी, क्योंकि वह जनता से अलग रहकर की जाती थी । यानी जीवन से ही अलग रहकर की जाती थी । इसलिए मैं सोचता हूँ कि सन् १९६५ का जो अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का वर्ष माना गया है, उसके बीच में एक साल है, तो इस देश में हम ऐसा वातावरण तैयार करें कि जनता (मासेज) और वर्ग (क्लासेज) का भेद ही खतम हो जाय । मैं आशा नहीं करता कि इतनी जल्दी वह भेद मिट जायगा, लेकिन वह सहन नहीं होना चाहिए । आज वह सहन होता है । इतनी तीव्रता से मैं ग्रामदान के बारे में सोचता हूँ । हमने जो आश्रम बनाये हैं, उनमें किसी एक स्थान को चुना जाय या और भी कोई स्थान हो, जो अनुकूल पड़ता हो, उसको चुना जाय, जहाँ ग्रामदान के काम का चिन्तन चलता हो, अध्ययन चलता हो और मूल्यांकन होता हो; वह गलत दिशा में न जाय, इसके बारे में वहाँ से मार्ग-दर्शन मिले; इतना अगर हम भारत में कर सके, तो मेरा ख्याल है कि अगले साल के लिए और आगे भी दो-चार साल के लिए यानी गांधीजी की शत-संवत्सरी तक इतना काम पर्याप्त होगा । दुनिया में इस प्रकार सोचनेवाले लोग और भी हैं । उनके साथ सम्पर्क हो, तो ऐसे स्थान में विचार का आदान-प्रदान होता रहेगा । और जिस प्रकार यहाँ ग्रामदान-आन्दोलन चल रहा है, उस प्रकार का आन्दोलन भी थोड़ा-बहुत दुनिया में भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में चलता रहे, उसके साथ भी अनुबन्ध रहे ।

अभी जो मैत्री-यात्रा चली है, उसकी एक कसौटी-सी परिषद् होनेवाली है। ऐसी अपेक्षा है, उसमें भी सोचा जाय कि मैत्री-यात्रा के अनुभवों के आधार पर हम आगे क्या कर सकते हैं। मैं तो वहाँ नहीं आ सकूँगा, फिर भी उस दिशा में सोचने में मदद कर सकता हूँ।

आध्यात्मिकता की कसौटी

और एक बात समझने की है। जिसको आप सायकिक रिसर्च (चित्त-संशोधन) कहते हैं, उसको मैं आध्यात्मिक नहीं मानता हूँ। वह साइन्स ही है। माइण्ड (चित्त) भी मैटर (द्रव्य) के अन्तर्गत है और उन दोनों से हम अलग हैं। साइकिक रिसर्च (चैतसिक खोज) किया जाय, लेकिन वह विज्ञान और आत्मज्ञान का जोड़ नहीं होगा। वह विज्ञान के अन्तर्गत ही है। अध्यात्म में भी जिसको आजकल प्रेतविद्या (स्पिरिटिज्म) कहते हैं, उसका समावेश नहीं होना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि इसमें कुछ सार या तथ्य नहीं है। हो सकता है कि कोई सार हो, लेकिन अध्यात्म (स्पिरिच्युआलिटी) अलग बात है। इसकी एक पहचान है कि अध्यात्म का कभी दुरुपयोग नहीं हो सकता। जिस चीज का भला-बुरा उपयोग हो सकता हो, वह अध्यात्म नहीं है। वह भौतिक विश्व का एक हिस्सा है। चैतसिक शक्ति (साइकिक पावर) का दुरुपयोग भी हो सकता है। भौतिक शक्ति (फिजिकल पावर) का सदुपयोग, दुरुपयोग दोनों हो सकता है। जिसमें ये दोनों संभावनाएँ हैं, वह अध्यात्म (स्पिरिच्युआलिटी) नहीं है। यह मैंने अध्यात्म (स्पिरिच्युआलिटी) की व्याख्या (डेफिनिशन) बना ली है कि जिसका अच्छा ही उपयोग हो, वही अध्यात्म (स्पिरिच्युआलिटी) है। यह अपना विचार मैंने आपके सामने रख दिया।

—आत्मज्ञान और विज्ञान-सम्बन्धी रायपुर-परिषद् (२६-१२-'६३) की समाप्ति पर विनोबाजी का वक्तव्य।

परिशिष्ट : ४

वैज्ञानिक भौतिकवाद और धार्मिक श्रद्धा

यहाँ मुझसे पूछा गया कि "आज वैज्ञानिक भौतिकवाद तथा यन्त्रवाद के अन्धाधुन्ध प्रचार के कारण मानव की धार्मिक श्रद्धा मिटती जा रही है। जीवन की मान्यताएँ अस्थिर हो रही हैं। उन्हें पुनः स्थापित करने का क्या उपाय है ?" किन्तु प्रस्तुत प्रश्न में वैज्ञानिक भौतिकवाद के बारे में जो अभिप्राय प्रकट किया गया है, वह पूरी तरह से सही नहीं है। 'वैज्ञानिक भौतिकवाद धर्म के प्रति श्रद्धालु नहीं है', ऐसा फैसला देना ठीक नहीं। हमने वैज्ञानिक भौतिकवाद का अर्थ ही ठीक तरह से नहीं समझा। भौतिकवाद एक ज्ञान है और वैज्ञानिक भौतिकवाद उससे कुछ अलग चीज है। भौतिक जीवन का स्वरूप यह है कि मनुष्य खाना-पीना, भौतिक उन्नति करना आदि के बारे में ही सोचता रहे—केवल अपनी ही चिन्ता करता रहे। वह समाज को खाना-पीना मिले, समाज की भौतिक समृद्धि हो, यह नहीं सोचता। लेकिन वैज्ञानिक भौतिकवाद कहता है कि हमारा मन और दुनिया, ये जो दो अङ्ग एक-दूसरे से सम्बन्ध रखनेवाले हैं, इसमें से कौन प्रधान और कौन गौण है, यह समझ लिया जाय।

सृष्टि और मन का आधार

विज्ञान कहेगा कि मन गौण है और विश्व प्रधान है। मन दुनिया का प्रतिबिम्ब है, उस पर दुनिया का असर होता है। मन से दुनिया नहीं, दुनिया से मन बना है। मन मूलतः भौतिक है। याने सामने जो भूत-सृष्टि पड़ी है, उसका परिणाम है।

एक विचार यह भी कहता है कि सारी सृष्टि मेरे मन की कल्पना है। मैं मरता हूँ, तो सृष्टि समाप्त हो जाती है। मैं आँख बन्द करके

अन्धा हो जाता हूँ, तो यह विविध रूपोंवाली सृष्टि भी समाप्त हो जाती है। मैं बहरा हो जाऊँ, तो मेरे लिए यह सारी नाद-सृष्टि खतम हो जायगी। इसलिए दुनिया मानसिक सृष्टि की प्रतिमा है, यह माननेवाला एक पक्ष है। दूसरा पक्ष कहता है कि हमारा मन सृष्टि का बना है। हम सृष्टि में परिवर्तन ला सकते हैं, तो मन में भी परिवर्तन ला सकते हैं। मानसिक परिवर्तन स्वयं स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। उस पर दुनिया का असर होता है।

दुनिया का स्वरूप क्या है, इसका निर्णय अभी तक नहीं हुआ है। यह जो माना गया है कि वैज्ञानिक भौतिकवाद जड़वाद है, यह सही नहीं है। विज्ञान का भी अभी तक निर्णय नहीं हुआ है कि सारी सृष्टि जड़मय है या चेतनमय। लेनिन ने कहा था कि जड़वाद और ब्रह्मवाद में से कौन-सा सही है, इसका फैसला हम विज्ञान पर छोड़ना चाहते हैं। लेकिन विज्ञान अभी तक उसका फैसला नहीं कर पाया है। अगर यह भी सिद्ध हो कि सृष्टि जड़मय है या चेतनमय, तब भी उसके असर में हमारा मन है, यह वैज्ञानिकवाद का कहना है। जब लेनिन लिख रहा था, तब विज्ञान जड़वाद की ओर झुका था। लेकिन अब वह ब्रह्मवाद की ओर अधिक झुका है। जैसे बच्चे या जवानों के पास थोड़ा-सा ज्ञान होता है, तो उसे वे पक्कापन मान लेते हैं, अपनी धारणाएँ बना लेते हैं और कहने लगते हैं कि आपके साथ हमारा मौलिक और प्रामाणिक मतभेद है। ऐसी ही हालत सौ साल पहले विज्ञान की भी थी। विज्ञान अनादिकाल से चला आ रहा है, लेकिन सौ साल पहले जब उसकी प्रगति होने लगी, तब थोड़े ज्ञान से सृष्टि जड़ है, ऐसा मानने की तरफ विज्ञान का पूरा झुकाव था। लेकिन जब ज्ञान का विस्तार होने लगा, तो शंका होने लगी कि शायद सृष्टि जड़ भी हो। इस तरह 'शायदवाली' बात आ गयी। धीरे-धीरे वैज्ञानिक कहने लगे कि "शायद यह जड़वाद ही ब्रह्मवाद निकले।" अभी भी शायदवाली बात है ही। पक्का निर्णय नहीं हुआ है। पहले तो पक्का जड़वाद था, किन्तु बाद में कुछ

संशयवाद आ गया । आज भी संशयवाद ही है, लेकिन उसका झुकाव ब्रह्मवाद की तरफ है । विज्ञान की यह खूबी है कि वह नम्र होता है । जहाँ नम्रता न हो, वहाँ मनुष्य का मन खुला नहीं हो सकता और जहाँ मनुष्य का मन खुला न हो, वहाँ अवैज्ञानिक दृष्टिकोण आ जाता है । यह बात हमें ठीक तरह से समझ लेनी चाहिए ।

सृष्टि का स्वरूप और विज्ञान

सृष्टि का स्वरूप क्या है, यह सवाल विज्ञान पर छोड़ा गया है । अगर सृष्टि का स्वरूप ब्रह्ममय निकले, तो एक क्षण में वैज्ञानिक भौतिक-वाद का शांकर अद्वैत के रूप में परिवर्तन हो जायगा । अद्वैत मानता है कि मन सृष्टि का प्रतिबिम्ब है । हमारे यहाँ द्वैतवादी या अद्वैतवादी किसीने भी यह नहीं माना कि मन ने दुनिया बनायी है । दुनिया तो पहले से ही थी, मन बाद में आया । इसलिए मन ने दुनिया बनायी, ऐसा अगर हम आस्तिक लोग मानते, तो ईश्वर को सृष्टि बनाने की तकलीफ क्यों देते ? है ही हमारा मन, जो सृष्टि बनायेगा ! लेकिन हम मानते हैं कि ईश्वर सृष्टि को बनाता है । फिर एक यही सवाल रहता है कि ईश्वर को मानें या न मानें ।

इस बात से यह सिद्ध हो जाता है कि अगर सृष्टि में ब्रह्मतत्त्व भरा है, तो वह ब्रह्मतत्त्व मेरे मन में भी भरा हुआ है । यह सिद्ध होने पर परिणाम-स्वरूप जो सिद्धान्त सामने आयेगा, वह अद्वैतवाद ही बनेगा । वैज्ञानिक भौतिकवाद अद्वैतवाद के बहुत ही नजदीक आ पहुँचा है । केरल के एक कम्युनिस्ट मंत्री ने अपने भाषण में कहा था कि "मैं यद्यपि ईश्वर को नहीं मानता, लेकिन जिस प्रकार का ईश्वर शङ्कराचार्य मानते थे, वैसा ईश्वर मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी ।"

शंकराचार्य ने जो अद्वैत का विचार हमारे सामने पेश किया, वह एक वैज्ञानिक विचार है । सृष्टि और मन के बीच किसीका किसी पर भी असर हो, लेकिन जैसी सृष्टि है, वैसा ही मन है । दोनों का रूप

समान है, यह मानी हुई बात है। पहचानने की दो प्रक्रियाएँ हैं। पिंड का परीक्षण करना और सृष्टि का परीक्षण करना। वैज्ञानिक लोग सृष्टि का परीक्षण करते हैं। अब वे सृष्टि का ब्रह्मस्वरूप तय करेंगे, तो उन्हें मन को भी ब्रह्मरूप समझना ही पड़ेगा। दूसरी प्रक्रिया यह है कि मन सृष्टि का प्रतिबिम्ब है। इसलिए पहले प्रतिविम्ब देखा जाय और उसका विश्लेषण कर सृष्टि का परीक्षण किया जाय। अन्तर्मन में अनुभव करने के बाद शङ्कराचार्य जैसे अद्वैतवादियों ने यह निर्णय दिया कि सृष्टि ब्रह्मरूप है। इसके विपरीत विज्ञान अणु से ब्रह्माण्ड की तरफ जाने के बजाय ब्रह्माण्ड से अणु की तरफ आता है। इसीलिए ब्रह्मवाद की तरफ जाने में विज्ञान को देर हो रही है।

आज वैज्ञानिक भौतिकवाद अद्वैतवाद और अध्यात्मवाद के वहुत ही निकट आ पहुँचा है। वर्तुल के दो सिरों के बीच का फासला एक वाजू से देखें, तो ज्यादा-से-ज्यादा होगा और दूसरी तरफ से देखें, तो कम-से-कम है। इसी तरह वैज्ञानिक भौतिकवाद का जिस प्रकार विकास हो रहा है, उससे पता चलता है कि वह ब्रह्मवाद के वहुत ही निकट आ रहा है। मैं उन दोनों को इतना नजदीक पाता हूँ, जैसा कि शुक्ल चतुर्दशी और पूर्णिमा का चन्द्रमा।

वैज्ञानिक भौतिकवाद और श्रद्धा

श्रद्धा का अर्थ क्या है? वैज्ञानिक भौतिकवाद धर्म की श्रद्धा को तोड़ता है या जोड़ता है? कुछ लोग कहते हैं कि फलाना आदमी श्रद्धाशील है और फलाना आदमी बुद्धिशील। याने एक श्रद्धावादी हुआ और दूसरा बुद्धिवादी। इस तरह की भेद-रेखा खींचना बहुत ही गलत है। वास्तव में श्रद्धा और बुद्धि परिपूर्णतः एक जगह रह सकती हैं। बुद्धि और श्रद्धा में कोई विरोध नहीं है। एक बुद्धिहीन मनुष्य भी श्रद्धावान् हो सकता है और अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति भी श्रद्धाहीन। बुद्धि और श्रद्धा दोनों के विरोध की कल्पना बिलकुल गलत है। क्योंकि दोनों

के विषय अलग-अलग हैं, जैसे कान और आँख के विषय। सुन्दर संगीत सुनाई दे रहा हो, तो कान उसके बारे में अपना निर्णय तुरन्त दे देगा, लेकिन आँख चुप रहेगी। क्योंकि संगीत के बारे में अनुकूल या प्रतिकूल राय प्रकट करना आँख का विषय नहीं। लेकिन कान और आँख में विरोध है, ऐसा नहीं माना जायगा। इसी तरह श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भी अलग-अलग हैं।

बुद्धि और श्रद्धा

श्रद्धा से कर्मशक्ति पैदा होती है और बुद्धि से ज्ञानशक्ति। जैसे मोटर में दो यन्त्र होते हैं : एक दिशासूचक और दूसरा गतिवर्धक। उन दोनों में कोई विरोध नहीं है, बल्कि दोनों मिलकर ही मोटर को चलाते हैं। दिशासूचक यन्त्र के अभाव में मोटर कहीं भी टकरा सकती है और गतिवर्धक यन्त्र के अभाव में मोटर चलेगी ही नहीं। इसी तरह श्रद्धा के बिना कर्मशक्ति नहीं आ सकती, पर बुद्धि के बिना यह मालूम ही नहीं होता कि किस चीज पर अमल करना है। बुद्धि दिशा बताती है और श्रद्धा से उस पर अमल होता है। अमल करने की अधिकारिणी श्रद्धा है और जहाँ विचार बनते हैं, उसकी प्रमुख है, बुद्धि। दोनों की मदद से जीवन की पूर्ति हो जाती है।

कितनों के मन में यह गलत खयाल बैठ गया है कि जिस बात में बुद्धि चलती हो, वहाँ बुद्धि न चलाना, इसीका नाम श्रद्धा है। जहाँ सामने धुआँ दीखता हो, वहाँ श्रद्धा क्या कहेगी ? वह तो बुद्धि की बात है। बिना अग्नि के धुआँ नहीं हो सकता। इसलिए वहाँ अग्नि जरूर है, यह फैसला बुद्धि देती है। वहाँ श्रद्धा का क्या सवाल है ? बुद्धि इतनी स्वाभाविक बात है कि रास्ते पर मोटर आयी, तो जिसे मोटर देखने की आदत है, जिसमें गधापन कम है, ऐसा गधा भी रास्ता छोड़कर पाँच कदम दूर खड़ा हो जाता है। जिन गधों ने कभी मोटर देखी ही नहीं, वे मोटर देखकर भाग जाते हैं। लेकिन जिस गधे को मोटर का पूर्वदर्शन है, वह

जानता है कि मोटर बने-बनाये रास्ते पर ही चलती है। उसने यह फैसला श्रद्धा से नहीं, बुद्धि से किया। हमने हाथ ऊँचा किया, तो कुत्ते भी जानते हैं कि इसका हाथ हम तक नहीं पहुँच सकता, इसलिए वे भागते नहीं। लेकिन हमने पत्थर उठाया, तो वे भाग जाते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि पत्थर हाथ से छूट सकता है और उनके पास पहुँच सकता है। यह सारी बौद्धिक प्रक्रिया कुत्ते को भी मालूम है। भगवान् ने सबको थोड़ी-थोड़ी बुद्धि तकसीम कर दी है। सारी बुद्धि को अपने पास केन्द्रित नहीं कर रखा। इसलिए हरएक के पास बुद्धि है। इसी तरह हरएक को श्रद्धा भी उपलब्ध है। बच्चा पैदा होता है और उसके बाद उसका माता के स्तन के साथ सम्पर्क होता है। उस समय वह यह विचार नहीं करता कि वह खाने की चीज है या नहीं, मेरे लिए मुफीद है या नहीं? वह तत्काल दूध पीना आरम्भ कर देता है। यह काम श्रद्धा के बिना नहीं हो सकता। बच्चे के पास अल्प ही सही, बुद्धि विकसित रहती है। आरम्भ में बच्चा माता पर भरोसा न रखता या श्रद्धा न करता, तो वह कैसे जी सकता? माता पर उसका पूरा भरोसा होता है, इसीलिए जब माँ आसमान की ओर ताककर कहती है कि देखो, सामने आसमान में चाँद है, तो वह तत्काल मान लेता है कि वह चाँद है। तात्पर्य यह कि क्रियारम्भ के लिए, कर्म को गति देने के लिए श्रद्धा जरूरी है और उसे दिशा देने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है।

धर्म में बुद्धि का प्रयोग

बुद्धि का प्रयोग करने से यदि कोई धर्म टूटता है, तो उसे टूटने ही देना चाहिए। बुद्धि की कैंची से जो धर्म टूटता है, वह नालायक है। जो बुद्धि की कसौटी सहन कर सकता हो, वही असली धर्म है। बुद्धि और धर्म के क्षेत्र अलग-अलग हैं। बुद्धि खुद समझती है कि मेरी हद कहाँ तक है। लेकिन जो सोचने का अङ्ग है, उसमें धर्मवाले यह कहें कि बुद्धि चलाने से धर्म टूटता है, तो समझना चाहिए कि वह धर्म टूटने ही लायक है। बचपन में हमसे कहा गया कि चोटी खुली रखने से ब्रह्महत्या का पाप

लगता है । पहले हमने इस बात को सुन लिया, क्योंकि उस वक्त हम नहीं जानते थे कि ब्रह्महत्या क्या है ? फिर एक दिन हमने उसकी गम्भीरता को समझा और पूछा कि चोटी को गाँठ न देने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है, तो साक्षात् ब्रह्महत्या करने से किसका पाप लगेगा ? बस, इसका कोई जवाब नहीं था । टूट गयी श्रद्धा ! इस प्रकार की अमंगल बातों से बुद्धि का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

श्रद्धा अन्धी न हो

दीपक बुझता है, तो कोई रिश्तेदार मर जाता है, ऐसे गलत संस्कार भी डालने का रिवाज रहा है । बचपन में यह बात मेरी समझ में नहीं आती थी, इसलिए एक दिन मैंने एक दीपक को नीचे फेंककर तोड़ डाला । फिर माँ से कहा कि अब दस-पन्द्रह दिन में कोई-न-कोई रिश्तेदार मरा, ऐसी खबर आनेवाली है । मेरी माँ चतुर थी । उसने कहा : "इस तरह गिराने से कोई नहीं मरता । दीपक अपने-आप गिरता है, तभी कोई मरता है ।" इस तरह चातुर्य से वह बची, लेकिन श्रद्धा से नहीं ।

मेरे सिख भाई नाराज न हों, तो मैं एक बात कह दूँ । अभी मेरे पास गुरु-ग्रन्थसाहब का नया संस्करण आया है । वह दो भागों में बँटा हुआ है । दो भाग करने के कारणों का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि गुरु-ग्रन्थसाहब का पाठ आदि करने के लिए स्नान करके आदरपूर्वक बैठना चाहिए । लेकिन यह किताब छप रही है, इससे आदर की सम्भावना कम हो जाती है । दूसरों के हाथों में जाने से इसकी एक मामूली किताब की हैसियत हो जाती है । इस स्थिति से बचाव करने के लिए तथा गुरु-ग्रन्थसाहब के प्रति अपने आदर-भावों को सुदृढ़ रखने के लिए उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया । अब लोग जैसा चाहें, वैसे इसका उपयोग कर सकते हैं ।

मैं कहना चाहता हूँ कि इसी प्रकार गुरु-ग्रन्थसाहब के प्रति एक प्रकार की भावना अभिव्यक्त होती है । लेकिन ऐसा क्यों होना चाहिए ?

इस प्रकार की श्रद्धा बुद्धि के सामने नहीं टिक सकती । अगर आपको गुरु-ग्रन्थसाहब के प्रति आदर रखना है, तो दोनों विभागों को एक जैसा मानना चाहिए और अगर उसका आदर नहीं करना है तथा उसे ज्ञान की किताब मात्र समझकर पढ़ना है, तो उसे आप एक खंड में भी छाप सकते हैं । इस प्रकार दो खण्ड करने से क्या लाभ है ? केवल श्रद्धा बनाये रखने के लिए हम रास्ते निकालें, यह उचित नहीं है ।

एक बार न्यायमूर्ति रानडे के पास एक मिशनरी पहुँचे । उन्होंने देखा कि उनके पास जितनी पुस्तकें रखी हुई हैं, उनमें सबसे ऊपर बाइबिल है । इससे वे बड़े प्रसन्न हुए और रानडे से कहने लगे : "बड़ी खुशी की बात है कि आपने सबसे ऊपर बाइबिल रखी ।" रानडे उनके आशय को समझ गये और जवाब देते हुए बोले : "हाँ, ऊपर तो बाइबिल है, उसके नीचे दूसरे ग्रन्थ हैं, लेकिन उन सभी का अधिष्ठान गीता है ।"

खण्डित होनेवाला धर्म 'धर्म' नहीं

सभी धर्मों में धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की अन्ध-श्रद्धाएँ आ गयी हैं । इसलिए अगर वे बुद्धि-प्रयोग करने से खंडित होती हैं, तो उन्हें खंडित होने देना चाहिए । उसमें धर्म का खण्डन समझने की बात नहीं है । मान लो, कोई उसे धर्म का खण्डन समझता है, तो हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि असल में धर्म कभी खण्डित होनेवाला नहीं है । जो खण्डित होनेवाला है, वह धर्म ही नहीं है । इसलिए उसके विषय में दुःख करने का कोई कारण नहीं है ।

"वैज्ञानिक भौतिकवाद ब्रह्म की तरफ बढ़ेगा, तो धर्म के बारे में श्रद्धा कम हो जायगी", यह सवाल बहुत बार पेश किया गया है । क्योंकि जो वेदान्ती ब्रह्मवादी थे, वे किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं मानते थे । इसलिए उन पर ऐसे आक्षेप लगाये जाते थे । श्री शंकराचार्य पर भी दो आक्षेप लगाये गये : १. 'शंकरो वर्णसंकरः'—शंकर वर्णसंकर है ।

और २. 'प्रच्छन्नबौद्धः'—जो बात बुद्ध ने खुल्लमखुल्ला कही, वही बात शङ्कर ने आवरण डालकर कही है, इसलिए वह प्रच्छन्नबौद्ध है।

अभी जो धर्म चलते हैं, उनमें असलियत क्या है, यही देखना ब्रह्मवाद है। जो तान्त्रिक धर्म होते हैं, वे ब्रह्मवाद में नहीं टिक सकते। तान्त्रिक धर्म मानसिक अवस्थाओं के लिए आवश्यक हो सकते हैं, लेकिन ब्रह्मवाद के लिए बिलकुल अनावश्यक हैं। निर्गुणवाद में सगुणवाद नहीं टिकता। ऊँचे ज्ञान का नीचे के ज्ञान पर प्रहार होता ही है।

ज्ञान देने का सही रास्ता

ब्रह्मविद्या के लिए अधिकार चाहिए, ज्ञान-प्राप्ति में भी अधिकार-वाद की बात आती है। फिर उसमें क्रम की जरूरत होती है। कौन-सा ज्ञान कब प्राप्त हो, इसका एक क्रम होता है। कोई बच्चा मेरे पास आये और मैं आरम्भ में ही उसे सिखाऊँ कि "तुम शरीर की परवाह मत करो, हम शरीर नहीं हैं, शरीर से भिन्न हैं", तो मैं गलती करूँगा। उस बच्चे को तो मुझे इस प्रकार समझाना होगा कि "तुम्हें शरीर मजबूत बनाना चाहिए।" जब वह यह बात समझ जाय, तब फिर मुझे उसे यह बता देना चाहिए कि "शरीर ही सब कुछ नहीं है। मौके पर इसे भी फेंक देना पड़ता है।" इसी तरह वैज्ञानिक भौतिकवाद या ब्रह्मवाद का किसी जरूरी चीज पर हमला होता है, तो फिर कुछ देर तक उस ज्ञान को दूर रखना होगा। ज्ञान-प्राप्ति में जल्दी करने की हवस नहीं होनी चाहिए। वह क्रमिक विकास का कार्यक्रम है। जैसे स्कूल का ज्ञान प्राप्त करने पर कॉलेज में दाखिल हो सकते हैं, वैसे ही आत्मज्ञान के विषय में भी समझना चाहिए। सृष्टि के मूल में जो तर्कशास्त्र है, उससे आरम्भ नहीं करना चाहिए। वह तो आखिर में आयेगा। समाज में पहले आचार-धर्म स्थिर हो जाय, फिर वेदान्त या वैज्ञानिक भौतिकवाद आये, तो ठीक है।

धर्म-रक्षण के तीन उपाय

अब सवाल आता है कि धर्म का रक्षण कैसे हो? इसके लिए तीन

बातें करनी होंगी : १. धर्म में जो गैर-जरूरी तत्त्व दाखिल हो गये हैं, उन्हें हटाया जाय और स्पष्ट कहा जाय कि वे जरूरी नहीं हैं । २. भिन्न-भिन्न धर्मवाले सूक्ष्म बातों में जो एक-दूसरे का विरोध करते हैं और विरोध को संघर्ष का रूप देते हैं, उसके बदले में सर्वमान्य नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जाय और उसके अनुसार जीवन बिताने की कोशिश की जाय । सूक्ष्म चीजें बाद में ली जायँ । ३. धर्म-विचार क्रम के अनुसार लोगों के सामने रखा जाय । ऐसा करने से ही लोगों में धर्म तथा श्रद्धा स्थिर होगी और विज्ञान भी प्रगति कर सकेगा । (५१)

विचार के आधार पर ही धर्म टिकेगा

अभी हमने पुरन्दरदास का एक भजन सुना है। उसमें वे कहते हैं : "धर्म की जय है।" हिन्दुस्तान के लोग धर्म का नाम खूब लेते हैं। उस पर बहुत श्रद्धा भी रखते हैं, लेकिन जय कहीं नहीं दीखती। बीच में थोड़ा धर्म प्रकट हुआ, तो स्वराज्य प्राप्त हुआ और जय हुई। जितना धर्म का उदय होगा, उतनी ही जय होगी। फिर भी अभी भारत में दुःख, गरीबी, आपत्तियाँ मौजूद हैं। ये जय के लक्षण नहीं कहे जा सकते। यह स्थिति इसलिए है कि जिसे हम सच्चा धर्म कहते हैं, उसे हमने अभी समझा ही नहीं है।

धर्म की पुरानी बुनियाद : श्रद्धा

आज हममें धर्म के प्रति श्रद्धा तो है, लेकिन वह कैसी है ? किसी देवता की पूजा कर ली, आरती उतार ली, फल-फूल चढ़ा दिये—इसी प्रकार की कुछ-न-कुछ श्रद्धा है। इसीलिए गरीब मनुष्य भी कुछ-न-कुछ आधार महसूस कर रहा है। अगर इतनी श्रद्धा भी न होती, तो देश अत्यन्त दुःखी दिखाई देता। आज दारिद्रय होने के बावजूद इसी श्रद्धा के कारण लोगों के चेहरों पर रौनक है। यहाँ दुःखी भी हँसते हैं। यदि परमेश्वर में मौलिक श्रद्धा न होती, तो न जाने हमारी क्या हालत हो जाती ?

इस तरह स्पष्ट है कि यह तो केवल बुनियाद ही है। अभी धर्म का मकान बनाना बाकी है। बुनियाद बना लें और मकान ही न बनायें, तो क्या रहने के लिए वह बुनियाद काम आयेगी ? उसके ऊपर मकान बनेगा, तभी हम रह सकेंगे। इसी तरह हमारी ईश्वर पर श्रद्धा है, हम उसकी

आरती-पूजा करते हैं, हरि-नाम लेते हैं—यह धर्म की बुनियाद है। इतने से धर्म का मकान नहीं बनता। जब धर्म का मकान बनेगा, तभी हम सुख से, प्रेम से रह सकेंगे।

अब तक के यत्न विफल

धर्म क्या है? हमें मानव-धर्म का मकान बनाना है। हिन्दू, ईसाई, मुसलमान सबके लिए मानव-धर्म एक ही है। इस तरह के मानव-धर्म का मकान बनाने की कोशिश पहले हुई नहीं, सो बात नहीं। कोशिशें जरूर हुईं, पर मकान पूरा नहीं बन पाया। वह पक्का न बन पाने से प्रहारों की बारिश होते ही उसकी ईंटें गिर गयीं, मिट्टी बह गयी और वह उजड़ गया—लोग उसे छोड़कर चले गये।

यहाँ मैसूर में बसवण्णा वीरशैवों के गुरु थे। ईश्वर-श्रद्धा की बुनियाद पर धर्म का मकान बनाने की उन्होंने शुरुआत की। "स्त्री-पुरुष का समान अधिकार होना चाहिए, जातिभेद, ऊँच-नीच भाव नहीं होना चाहिए, सबको शरीर-श्रम करना चाहिए" यह उन्होंने उपदेश दिया। लेकिन आज वह आचरण में नहीं रहा। बसवण्णा ही नहीं, और भी कितनों ने धर्म का मकान बनाने की कोशिशें कीं, लेकिन वह गिर गया। फिर भी ईश्वर की कृपा से श्रद्धा की बुनियाद कायम है। इसीलिए हम उस पर फिर से मकान बनाने का काम शुरू कर रहे हैं।

धर्म-मन्दिर की नयी नींव : विचार

लोग कहते हैं: "जिन-जिन लोगों ने यह काम उठाया, वे असफल रहे। उनके बनाये मकान गिर गये। तुम्हारा भी गिर जायगा।" हाँ, हमारा भी गिर सकता है। लेकिन आशा करेंगे कि नहीं गिरेगा। सम्भव है, हम बनाने की कोशिश करें, पर बने नहीं; लेकिन अगर बनेगा, तो गिरेगा नहीं। पहले हिन्दुस्तान में कुल लोग खादी पहनते थे। उस समय मिलें नहीं थीं। नंगे नहीं रह सकते, इसलिए जैसी-तैसी खादी पहनते थे। लेकिन मिलें आ गयीं और खादी चली गयी। यदि फिर से खादी शुरू

करेंगे, तो क्या होगा ? सामने मिलें खड़ी हैं। फिर भी विचारपूर्वक खादी पहनेंगे, तो क्या यह खादी चली जायगी ? नहीं, कभी नहीं जायगी। कारण पहले लाचारी की खादी थी, लेकिन यह विचार की खादी है। यह मिल के सामने जमकर टक्कर लेगी।

इसी तरह पहले का जमाना विज्ञान का नहीं था, इसलिए तब जिन्होंने धर्म का मकान बनाया, वह श्रद्धा के आधार पर। दूसरी ओर श्रद्धा पर आघात होते ही वह गिर गया। लेकिन अब धर्म का मकान भोलापन और श्रद्धा के आधार पर नहीं, विचार के आधार पर बनेगा।

पुरंदरदास का एक भजन है। उसमें वे जिक्र करते हैं : "देखो, तुम लोग माता-पिता की आज्ञा न मानोगे, तो तुम्हारी चमड़ी खींच ली जायगी।" लेकिन कब ? 'मरने के बाद।' क्या इस आधार पर धर्म टिक सकेगा ? लोग कहेंगे कि हम स्वर्ग-नरक नहीं मानते। फिर ऐसी स्वर्ग-नरक की धमकियों के आधार पर धर्म का मकान कैसे बनेगा ? बनेगा भी तो क्या पक्का बनेगा ? वह बारिश और तूफान में किस तरह टिकेगा ?

धर्म वैज्ञानिक आधार पर कायम करें

यह विज्ञान की बारिश है। विज्ञान प्रयोग और प्रत्यक्ष परीक्षा चाहता है। इसलिए उसने प्रयोग कर स्वर्ग और नरक को नहीं माना होगा। अब हमें धर्म को वैज्ञानिक आधार पर कायम करना होगा। माता-पिता की आज्ञा न मानोगे, तो क्या होगा ? हम बच्चों को समझायेंगे : "देखो बच्चो ! तुम बच्चे हो। अभी स्वतन्त्र बुद्धि नहीं आयी है। यदि माता-पिता की बात न मानोगे, तो उनके अनुभव का लाभ तुम्हें न मिल सकेगा। मूर्ख के मूर्ख ही रह जाओगे। तुम्हारी उन्नति नहीं होगी। इसलिए माता-पिता की आज्ञा में रहना चाहिए।" इस तरह समझायें, तो उनकी समझ में आ जायगा कि माता-पिता की आज्ञा न मानेंगे, तो क्या होगा ? इसी तरह हम उन्हें समझायेंगे : "तुमने माता-पिता का प्रेम पाया है। तुम उनसे प्रेम न करोगे, तो कौन उनसे प्रेम करेगा ?

क्या फिर तुम्हारे बच्चे तुमसे प्रेम करेंगे ? इसलिए ठीक होगा कि माता-पिता से प्रेम करो ।"

वैज्ञानिक जमाने के लड़के हमसे पूछेंगे कि "माता-पिता की सेवा करनी चाहिए, यह तो हम कबूल करते हैं । लेकिन स्वतन्त्र बुद्धि आने के बाद माता-पिता हमसे कोई गलत काम करने के लिए कहें, तो क्या हमें उसे भी मानना चाहिए ?" उन्हें हम यह जवाब देंगे : "स्वतन्त्र बुद्धि आने पर माता-पिता की आज्ञा मानने की जिम्मेदारी तुम पर नहीं रहेगी । लेकिन सेवा करने की जिम्मेदारी है ही । तभी माता-पिता की बात मानो" यह धर्म पक्का होगा । तुलसीदास ने भी कहा है :

को जानै, को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को ।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग, जीवन राम गुलाम को ॥

स्वर्ग में कौन जायगा और यमपुरी में कौन जायगा, यह कौन जानता है ? इसलिए इसी जीवन में राम का दास होकर रहना तुलसीदास को पसन्द है ।

प्रत्यक्ष से मेल बैठायें

हमारी कृति का परलोक में फल मिलेगा, इस आधार पर वैज्ञानिक युग में धर्म टिक नहीं सकता । हमें उसका नकद फल बताना होगा । "गुड़ खाओगे, तो मरने के बाद मीठा लगेगा" यह कहने से नहीं चलेगा । "अभी गुड़ खाओ, तो अभी मीठा लगेगा ।" इसी तरह धर्म का परिणाम इसी लोक में प्रत्यक्ष दिखायें, तभी धर्म टिकेगा । विज्ञान के साथ उसका मेल बैठना चाहिए । "सबसे प्रेम करोगे, तो सबका प्रेम और सहयोग मिलेगा और वैर करोगे, तो वैर बढ़ेगा । प्रेम से सभी आनन्द से रहेंगे । गरीबी दूर होगी, सुख से जीवन बीतेगा । प्रेम न करोगे, हिंसा करोगे, तो अणुबम गिरेंगे और नष्ट हो जाओगे !" "आप ग्रामदान देंगे, तो स्वर्ग में कुबेर के महल में स्थान मिलेगा" ऐसा हम नहीं कहते । बल्कि यही कहते हैं कि "ग्रामदान देंगे, तो इसी गाँव में और इसी जन्म में आप लोगों को आनन्द का अनुभव होगा ।" (५२)

परिशिष्ट : ६

मानव-धर्म की स्थापना कैसे हो ?

अपने देश में और शायद दुनिया में भी धर्म के लिए बुनियाद तो बनी हुई है। धर्म की बुनियाद परमेश्वर पर श्रद्धा है और विभिन्न समाजों में वह किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। फिर भी अभी उस पर मकान नहीं बना है। हमें उस पर धर्म का मकान बनाना है, जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों को आश्रय मिले।

धर्म अभी बना नहीं

सवाल उठता है कि इतने सारे धर्म तो बन गये हैं, फिर भी धर्म बनना बाकी ही है ? लेकिन पचासों धर्म तो हो नहीं सकते। मानव के लिए एक ही धर्म हो सकता है, और वह है मानव-धर्म। वह अभी बना नहीं है। बनाने की कोशिश की गयी और थोड़ा बना भी, लेकिन एकदम गिर गया। फिर भी खैर है कि बुनियाद अभी पक्की, कायम है—हृदय में श्रद्धा है।

यह बेचारा कायिक धर्म !

एक उदाहरण लें। बसवण्णा स्वामी ने कायिक धर्म बताया : "शरीर-परिश्रम हरएक मनुष्य को करना चाहिए। चाहे वह बड़ा हो, चाहे छोटा।" फिर भी वह बन नहीं पाया। क्यों नहीं बना ? आज भी करोड़ों लोग श्रम करते ही हैं और उस जमाने में भी करते थे। फिर यह कायिक धर्म बनाने की जरूरत ही क्या थी ? लेकिन ऐसी बात नहीं। लोग जो श्रम करते थे या करते हैं, लाचारी से करते हैं, शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा महसूस नहीं करते। फिर, जो शरीर-श्रम नहीं करते, वे तो उसकी प्रतिष्ठा मानते ही नहीं। शरीर-श्रम करनेवाला भी उसे नहीं चाहता।

किसान रोज श्रम करता है; लेकिन वह चाहता है कि अपने बच्चों को ऐसी तालीम मिले, जिससे वे श्रम से बच जायँ। उन्हें खेती करने की जरूरत न पड़े। वह भी यही समझकर श्रम करता है कि उसे दूसरा कोई चारा नहीं है। इस प्रकार कायिक श्रम रोज चलता है, लेकिन लाचारी से। अगर उसे दूसरा कोई उपाय मिल जाय, तो वह श्रम करने को राजी न होगा।

सब चाहते हैं कि कायिक श्रम धर्म-विचार हो, लेकिन वह कैसे बने ? क्या यह कहने से यह धर्म चलेगा कि हम कायिक धर्म का पालन करें—इस लोक में लाभ हो या न हो, इसकी परवाह न करें, परलोक में अच्छा फल मिलेगा ? इस तरह यह कभी नहीं चलेगा। फिर शरीर-श्रम धर्म कब बनेगा ? स्पष्ट है कि जब शरीर-श्रम को भी उतना ही आर्थिक मूल्य मिलेगा, जितना कि दूसरे कामों को मिलता है। इसके पीछे सामाजिक ताकत लगनी चाहिए, इसके अनुकूल समाज बनाना चाहिए। इसका शुभ फल इसी लोक में मिले, इसकी योजना होनी चाहिए। तभी यह कायिक धर्म चल पायेगा।

आज एक प्रोफेसर को ५०० रुपये तनख्वाह मिलती है। १२ महीनों में ६ महीने छुट्टी रहती है और ६ महीने काम। फिर वह रोज ३ घंटे से ज्यादा काम भी नहीं करता, लेकिन उसके काम की कीमत ५०० रुपये है; याने ६००० रुपये सालाना। ६ महीनों में रोज ३ घंटे के हिसाब से ६०० घण्टे काम और ६००० रुपये दाम निकलता है। याने १ घण्टे के लिए १० रुपये प्रोफेसर को मिलते हैं। बावजूद इसके किसी मजदूर को जो कायिक श्रम करेगा, बहुत हुआ तो एक घण्टे का २ आना मिलेगा। कॉलेज का प्रोफेसर २५-३० साल नौकरी कर ले, तो उसे पेन्शन मिलेगी, पर इस कायिक श्रम करनेवाले बसव के शिष्य को कुछ भी नहीं मिलेगा। तब धर्म कैसे चलेगा ? इसीलिए हम कहते हैं कि धर्म अभी नहीं बना है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, सिख, जैन, बौद्ध—ये सारी श्रद्धाएँ मौजूद हैं; लेकिन मानव-धर्म नहीं बना है।

धर्म के तीन अनिवार्य उपादान

दूसरी मिसाल लें। 'चोरी करना गलत है' यह भी एक धर्म-विचार है। अगर संग्रह पाप नहीं है, तो चोरी को पाप कैसे कह सकते हैं? इस प्रकार लोग एकांगी धर्म रूढ़ करना चाहते हैं, इसीलिए वह चल नहीं पाता। जो संग्रह करता है, उसकी आज प्रतिष्ठा है ही। भले ही वह मरने के वाद नरक में जाय। लेकिन वह गरीब कायिक! उसे इस जन्म में प्रतिष्ठा नहीं, भले ही मरने के बाद परलोक में इन्द्रासन मिल जाय। परलोक के आधार पर धर्म नहीं बनता, उसे तो इसी लोक का आधार चाहिए। धर्म एकांगी नहीं, पूर्ण होता है—चोरी पाप है, तो संग्रह भी पाप है। दोनों विचार मिलकर धर्म बनेगा।

व्यक्ति के लिए एक धर्म हो, लेकिन सारे समाज में भी उसकी प्रतिष्ठा होनी चाहिए। समाज की तदनुसार रचना करनी चाहिए। धर्म किसी एक को नहीं, बल्कि सबको लागू होता है। वह एक पक्ष पर लागू हो और दूसरे पर नहीं, ऐसा नहीं होता। पत्नी मस्तक पर कुंकुम लगाये और गले में मंगलसूत्र धारण कर यह बताये कि हम पतिव्रता हैं—यह पत्नी की जिम्मेदारी मानी जाती है। लेकिन क्या पुरुष पर पत्नीव्रत की कोई जिम्मेदारी नहीं है? आखिर उसके मस्तक पर ऐसी कोई निशानी क्यों नहीं? हमें तो पता नहीं चलता कि कौन-कौन पत्नीव्रती हैं, लेकिन स्त्रियों का पता चल जाता है कि कौन-कौन पतिव्रताएँ हैं। फिर पुरुष भी क्यों न अपने गले में पत्नीव्रत का कोई चिह्न डाल लें? एक ही पक्ष की यह जिम्मेवारी क्यों? इस तरह धर्म नहीं टिकता।

इस तरह हमने धर्म के लिए तीन बातें बतायीं: (१) परलोक के आधार पर धर्म नहीं टिक सकता, (२) धर्म परिपूर्ण होना चाहिए, वह एकांगी नहीं हो सकता और (३) धर्म व्यक्ति के लिए ही पर्याप्त नहीं, तदनुसार समाज भी बनाना होगा, तभी सारे समाज में उसकी प्रतिष्ठा होगी। ये तीन बातें होंगी, तभी धर्म का मकान बनेगा। कई बार महापुरुषों ने इसके लिए कोशिशें कीं, लेकिन अभी ये तीनों बातें

बनीं नहीं । हमें इन्हें बनाना है, विज्ञान के जमाने में हम यह कर सकते हैं । ध्यान रहे कि अब यदि धर्म न टिकेगा, तो हम भी नहीं टिकेंगे ।

विज्ञान हाथ लग जाने से आज मानव की बुद्धि तो विशाल हो गयी, लेकिन हृदय अब भी छोटा ही है । किसान सोचता है—मेरा खेत, मेरा घर ! पड़ोसी जरा गाफिल है, तो इस साल अपनी हद उसके खेत तक जरा बढ़ा दें, मेरा खेत एक हाथ बढ़ जायगा । आखिर यह क्या है ? एक ओर तो चन्द्र पर जाने की बात चल रही है और दूसरी तरफ दूसरे की एक फुट जमीन कैसे मिले, यह सोचते हैं ! क्या इस तरह मनुष्य जिन्दा रहेगा ? इससे तो लड़ाई होगी, क्योंकि परस्पर द्वेष बढ़ेगा, झगड़े होंगे। इसलिए हम कहते हैं कि भारत के गाँव-गाँव में ऐक्य रखें, समाज-धर्म की स्थापना करें, मानव-धर्म की प्रतिष्ठा करें । 'हम सब एक परमेश्वर की संतान हैं' यह एक बड़ी मजबूत बुनियाद मिली है । अब हम मानवता के आधार पर मानव-धर्म की स्थापना करें ।

विज्ञान की मदद और धमकी भी

लोग पूछते हैं कि पुराने जमाने के लोगों से जो न सध पाया, क्या वह आपसे सधेगा ? मैं कहता हूँ, हाँ, अवश्य सधेगा । पुराने लोगों की मदद में विज्ञान नहीं था, लेकिन इस जमाने में विज्ञान हमारी सहायता के लिए खड़ा है । वह हमें केवल मदद ही नहीं, धमकी भी देता है : "यदि आप कलह-झगड़े करेंगे, तो मानव-जाति का खातमा हो जायगा और यदि मिल-जुलकर रहेंगे, तो इसी पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयेगा ।"

पुराने लोग मरने के बाद स्वर्ग-नरक की बातें करते थे । "अच्छा-अच्छा काम करोगे, मिल-जुलकर रहोगे, तो मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा । स्वार्थ देखोगे, तो नरक में जाओगे"—ऐसा कहते थे । लेकिन आज विज्ञान कहता है कि "यदि प्रेम से रहोगे, पुण्य-कार्य करोगे, मिल-जुलकर रहोगे, तो यहीं इसी लोक में स्वर्ग मिलेगा । स्वार्थ देखोगे, झगड़े करोगे, तो यहीं नरक मिलेगा, यहीं मारे जाओगे ।" इस तरह विज्ञान प्रत्यक्ष फल दिखाता है ।

दस साल पहले हिरोशिमा पर बम गिराया गया था, जिसमें हजारों लोग मरे, करोड़ों जख्मी हुए। किसीका पाँव टूटा, तो किसीका हाथ टूटा। सभी अस्पताल में पड़े रहे। यह नरक नहीं, तो क्या है? इसी जन्म में, मरने के बाद नहीं।

अब धर्म की रचना ऐसी होगी, जिसमें पाप-पुण्य का फल प्रत्यक्ष सामने होगा। इस प्रकार हमें नये सिरे से धर्म का मकान बनाना है। आत्मज्ञान की मदद है, सन्तों की तपश्चर्या की मदद है और सबसे बड़ी बात विज्ञान अनुकूल है। अभी तक जो धर्म-विचार नहीं बना, वह अब बना सकते हैं। उसके लिए थोड़ा-सा त्याग करना होगा, ज्यादा नहीं। (५३)

परिशिष्ट : ७

सन्दर्भ-सूची

इस पुस्तक में जगह-जगह कोष्ठक (   ) में जो अंक दिये गये हैं, उनका सन्दर्भ निम्न प्रकार है :

१. डॉ० जानसन आदि के साथ हुई चर्चा की मूल अंग्रेजी रिपोर्ट से अनूदित ।
२. ईशावास्य-वृत्ति (मंत्र ६) का अंश ।
३. प्रवचन – २६-७-६३ ललाट, मेदिनीपुर, प० बंगाल
४. प्रवचन – ८-११-५७ अरसीकेरे, मैसूर
५. प्रवचन – ८-६-५९ जम्मू-कश्मीर
६. आश्रम-दिग्दर्शन– पृष्ठ ४ से ६ और ५६
७. प्रवचन – २-४-५८ दानोली, रत्नागिरी, महाराष्ट्र
८. प्रवचन – २३-५-६३ काकद्वीप, २४ परगना, प० बंगाल
९. आश्रम प्रज्ञोपनिषद्–पृष्ठ २
१०. ,, ,, ,, ३७––३९
११. ,, ,, ,, ४५
१२. ,, ,, ,, ४७
१३. आश्रम-दिग्दर्शन पृष्ठ ३२—३९
१४. प्रवचन २१-१२-५८ सिद्धपुर, मैसूर
१५. ,, ४-१-५९ नवावास, बनासकाण्ठा, गुजरात
१६. ,, ३१-१-५८ धारवाड़, मैसूर
१७. ,, २९-५-५७ पंढरपुर, महाराष्ट्र
१८. ,, १८-४-६३ कामारपुखुर, हुगली, प० बंगाल
१९. ,, २५-७-६२ कामरूप, असम

२०. ईशावास्यवृत्ति—मंत्र ६ का अंश
२१. प्रवचन २५-७-६३ कामरूप, असम
२२. स्थितप्रज्ञ दर्शन पृष्ठ २
२३. प्रवचन ३१-१-५८ धारवाड़, मैसूर
२४. ,, १-३-५५ पट्टामुण्डाई, उत्कल
२५. ,, १८-५-६३ हट्टगंज, २४ परगना, प० बंगाल
२६. ,, २-१२-६२ बँसवटी, मुर्शिदाबाद, प० बंगाल
२७. ,, ८-११-५७ अरसीकेरे, मैसूर
२८. ,, १-३-५५ पट्टामुण्डाई, उत्कल
२९. ,, २०-२-६३ चित्रशाली, नदिया, प० बंगाल
३०. ,, २८-६-६३ कलकत्ता
३१. ,, १८-५-५८ मांजर्डे, द० सतारा, महाराष्ट्र
३२. ,, १२-६-५८ बड़गाँव, उस्मानाबाद, महाराष्ट्र
३३. ,, ३०-५-५७ पंढरपुर, महाराष्ट्र
३४. ,, ३०-९-५७ पाण्डवपुर, मैसूर
३५. ,, २०-८-५९ कुकरनाग, कश्मीर
३६. ,, २८-२-५९ सर्वोदयनगर, अजमेर, राजस्थान
३७. ,, १२-२-५९ भीलवाड़ा, राजस्थान
३८. ,, १-३-५५ पट्टामुण्डाई, उत्कल
३९. ,, १२-२-६१ रामगंज, प० बंगाल
४०. ,, १-३-५५ पट्टामुण्डाई, उत्कल
४१. ,, २८-१२-६० कुद्रा, बिहार
४२. ,, ३-२-५९ फतेहनगर, राजस्थान
४३. ,, २७-१-५९ ऋषभदेव, राजस्थान
४४. ,, ८-११-५७ अरसीकेरे, मैसूर
४५. ,, २५-९-५७ मैसूर
४६. ,, ७-५-५९ बलाचौरा, पंजाब

४७.	प्रवचन	३१-८-६०	कस्तूरबाग्राम, इन्दौर, मध्यप्रदेश
४८.	,,	२०-१-५६	रामगढ़, राजस्थान
४६.	,,	१८-१-५७	बँगलोर, मैसूर
५०.	,,	२६-१२-५८	सिद्धपुर, मैसूर
५१.	,,	२१-५-५६	पठानकोट, पंजाब
५२.	,,	६-११-५७	माइसन्द्रा, मैसूर
५३.	,,	४-११-५७	तुरुवेकेरे, मैसूर



नोट : पृष्ठ-संख्या ७० तथा ७२ में भागवत का जो श्लोक उद्धृत हुआ है, उसका ४था चरण निम्नलिखित है :

नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ।

विनोबा-साहित्य

धर्म

गीता-प्रवचन
(हिन्दी) १.६०, २.५०
गीता-प्रवचनानि
(संस्कृत) ३.००, ४.००
कुरान-सार (हिन्दी) २.५०
धम्मपदम् २.००
नामघोषा-सार १.५०
जपुजी (स-व्याख्या) १.००

अध्यात्म-विज्ञान

आत्मज्ञान और विज्ञान १.५०
आश्रम-दिग्दर्शन १.००
आश्रम-प्रज्ञोपनिषद् १.००
ज्ञानदेव-चिन्तनिका १.००
मैत्री-आश्रम ०.५०
शुचिता से आत्मदर्शन ०.४०
साम्यसूत्र ०.३७
राम-नाम : एक चिन्तन ०.३०

शिक्षा और साहित्य

शिक्षण-विचार २.५०
साहित्यिकों से १.००
साहित्य का धर्म ०.५०
त्रिवेणी ०.५०
कार्यकर्ता-पाथेय ०.५०

भूदान-ग्रामदान

मोहब्बत का पैगाम २.५०
भूदान-गंगा (आठ भाग)
प्रत्येक १.५०
ग्रामदान १.००
दानधारा १.००
सर्वोदय-यात्रा १.००
अभिनव ग्रामदान ०.७५
सर्वोदय-पात्र ०.४०
सर्वोदय के आधार ०.२५

लोकनीति

लोकनीति (संशोधित) २.००
सर्वोदय-विचार व स्वराज्य-
शास्त्र १.२५
ग्राम-पंचायत ०.७५
शांति-सेना ०.७५
अहिंसक शक्ति की खोज ०.७५
अशोभनीय पोस्टर्स ०.६०
जय जगत् ०.५०
चीन-भारत सीमा-संघर्ष ०.५०
कश्मीर के बारे में ०.५०
भाषा का प्रश्न ०.२५

समाज-रचना

नगर-अभियान २.००
विनोबा के पत्र २.००
क्रान्त दर्शन १.२५
प्रेरणा-प्रवाह १.२५
जीवन-दृष्टि १.२५
मधुकर १.००
स्त्री-शक्ति १.००
सप्त शक्तियाँ ०.५०
एक बनो, नेक बनो ०.२५
गाँव के लिए आरोग्य-योजना ०.१३

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी

विनोबाजी की
कुछ प्रेरक रचनाएँ

गीता प्रवचन	१.६०
ज्ञानदेव चिन्तनिका	१.००
आश्रम दिग्दर्शन	१.००
आश्रम प्रज्ञोपनिषद्	१.००
प्रेरणा प्रवाह	१.२५
नामघोषासार	१.५०
जपुजी	१.००
शुचिता से आत्म-दर्शन	०.४०
साम्यसूत्र	०.३७
मैत्री आश्रम	०.५०

आदि-आदि

रु० १.५० न. पै.

